Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद का गद्य साहित्य

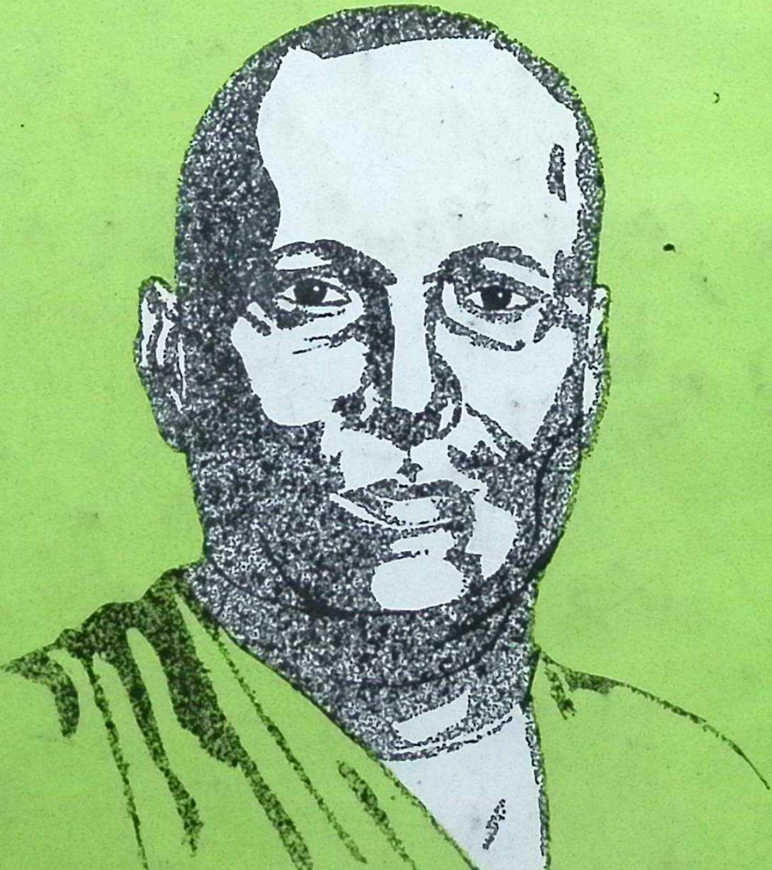

राज मणि शर्मा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

6

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद का गद्य-साहित्य

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद का गद्य-साहित्य

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

डा० राजमणि शर्मा
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली - लखनऊ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकाशक :
आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

शाखा :
17, अशोक मार्ग, लखनऊ

© 1982, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-110006

मूल्य : पचास रुपये

डा. डिल्ली
स्मारक
पुस्तकालय

संस्करण : 1982

मुद्रक :
मनराल प्रिंटिंग प्रेस
धर्मपुरा, गांधीनगर, दिल्ली-31

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सुवाक्

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और उनके मण्डल के रचनाकारों ने खड़ी बोली तथा हिन्दी साहित्य का बहुविध विकास किया। उन्होंने उसकी सभी संभावित दिशाओं का निर्देश किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तक हिन्दी साहित्य भाषा की दृष्टि से संपन्न अवश्य हुआ पर उसे वह अर्थवत्ता नहीं मिल पायी जो परवर्ती रचनाकारों ने उसे प्रदान की। प्रेमचन्द और प्रसाद समसामयिक रचनाकार थे। पर दोनों अलग-अलग पथ के पथिक थे। प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थ से हिन्दी साहित्य को संपृक्त किया तो प्रसाद ने उसे भाव-शबल बनाया। साहित्य में यथार्थ की अभिव्यक्ति के महत्व से 'प्रसाद' जी भी अनभिज्ञ न थे। इसलिए भाव-प्रधानता के साथ-साथ उन्होंने अपनी रचना की धारा को यथार्थ से भी जोड़ा। 'कंकाल', 'बेड़ी' आदि इसके उदाहरण हैं।

प्रसाद मूलत: कवि हैं, गद्य रचनाकार बाद में। उनकी समस्त रचनाओं का संचालक-सूत्र अनुभूति और संवेदना है। उनकी यह अनुभूति और संवेदना वर्तमान के साथ-साथ अतीत से अनुप्राणित है। अतीत के प्रति उनका यह विशेष अनुराग वर्तमान से पलायन नहीं है। अपितु तिमिराच्छन्न वर्तमान की समस्याओं का समाधान स्वर्णिम अतीत में खोजने का प्रयास है। साहित्येतिहास इस बात का साक्षी है कि रचनाकार अतीत के पृष्ठों से वर्तमान को प्रेरणा देता है, जीवनी-शक्ति प्रदान करता है और संघर्ष का पथ दिखाता है। 'तुलसी' द्वारा 'राम' का पुनराख्यान इस बात का प्रमाण है।

'प्रसाद' का लक्ष्य अपने साहित्य द्वारा भारतीय जन-मानस का उद्वेलन था। उन्हें यह ज्ञात था कि जन-साधारण की भाषा वाल्मीकि, सूर, केशव की भाषा नहीं हो सकती। इसीलिए उन्होंने नवीन विषय-वस्तु के चयन के साथ-साथ उसी के अनुरूप ऐसी भाषा का निर्माण किया जिसमें संप्रेषण क्षमता थी और अर्थवत्ता भी। 'प्रसाद' के नाटक, उपन्यास, कहानी और निबंध इस बात के प्रमाण हैं।

'प्रसाद का गद्य-साहित्य' प्रसाद की समूची गद्यात्मक रचनाओं का एक साथ गहन विश्लेषणात्मक अध्ययन है। यह केवल पुराने अध्ययन की पुनरावृत्ति मात्र नहीं है। इस ग्रंथ में प्रसाद की हर-एक विधा का विशद विवेचन है, उनकी हर विशेषतओं को उद्‌घाटित करने का प्रयत्न है। साथ ही 'प्रसाद' जी के संबंध में

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनेक भ्रांतिमूलक धारणाओं को छिन्न-भिन्न कर एक नई धारणा के स्थापन का सफल प्रयास है, जिसका मूल उत्स भारतीय है। लेखक ने अपनी इस धारणा को 'प्रसाद' के निबंधों में अभिव्यक्त उनके विचारों से पुष्ट भी किया है। अतः इस ग्रंथ की उपयोगिता असंदिग्ध है। मेरा यह विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रंथ प्रसाद के गद्य साहित्य के विवेचन की गहराई में अध्येता को ले जाने में सहायक होगा।

वाराणसी
२० अप्रैल, १९८०

—डॉ० विजयपाल सिंह
वरिष्ठ आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पुरोवाक्

हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली का आन्दोलन जिन परिस्थितियों में प्रतिफलित हुआ, उन्हीं परिस्थितियों में हिन्दी गद्य-विधा को एक अत्यन्त समर्थ एवं सशक्त-साहित्य-रूप के रूप में विकसित एवं प्रतिष्ठित किया। विषम सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों की चुनौती को स्वीकार करने एवं उसे वाणी देने के लिए आवश्यकतानुसार आगे चलकर विविध गद्य-साहित्य-रूपों का विकास हुआ, जिनमें उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी एवं निबंध प्रमुख हैं। 'रामचरित मानस' जैसे एकाध अपवादों को छोड़कर हिन्दी कविता एक विशेष वर्ग के लिए ही लिखी गई और वह समाज के बहुसंख्यक वर्ग को छोड़ कर अपेक्षाकृत सीमित समुदाय में ही लोकप्रिय रही। हिन्दी गद्य के विकास में उसी बहुसंख्यक समाज की आकांक्षाएं प्रेरक रहीं जिन्हें कवि नज़र अन्दाज कर रहे थे परिणामस्वरूप हिन्दी का आरंभिक गद्य साहित्य समाज की बाह्य विषम परिस्थितियों की अभिव्यक्ति में ही लगा रहा। हिन्दी गद्य के क्षेत्र में 'प्रसाद' जी का आगमन एक ऐतिहासिक घटना है जिसने हिन्दी गद्य की विधा को कविता-की-सी आंतरिक शक्ति एवं चिंतन विधायिनी अर्थवत्ता प्रदान की। 'प्रसाद' जी एक ऐसे युग-स्रष्टा साहित्यकार हैं जिन्होंने युगीन सभी विधाओं में रचनायें कीं, पर अपनी मौलिकता के कारण सबसे अलग-थलग रहे। वे ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने न तो किसी का अनुसरण किया और न तो कोई उनका अनुसरण कर सका। चाहे वह पद्य का क्षेत्र रहा हो या गद्य का। प्रसाद कवि पहले हैं और गद्य रचनाकार बाद में। उनका कवि हृदय उनके समूचे साहित्य में प्रकाशित है।

हिन्दी गद्य रचना के क्षेत्र में प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान है। वास्तव में प्रसाद जी ने ही हिन्दी गद्य की विविध विधाओं को परिष्कृत और परिवर्द्धित किया है। उनकी पकड़ गद्य के प्रायः सभी रूपों तक रही है। वह चाहे नाटक का क्षेत्र रहा हो चाहे उपन्यास का, चाहे निबन्ध का अथवा कहानी का। उनकी लेखनी जिस विषय पर भी उठी उसका उन्होंने सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत किया। इसीलिए एक साथ ही उन्हें हम नाटककार, कथाकार तथा निबंधकार के रूप में पाते हैं। हिन्दी नाटकों की रचना को दृष्टि में रखते हुए तो हम उन्हें 'नाट्य-सम्राट्' कह सकते हैं। भारतेन्दु युग की लुप्त होती हुई नाट्यधारा को प्रसादजी ने ही पुनरुज्जीवित

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किया। नाट्य रचना के क्षेत्र में इनका दृष्टिकोण सर्वथा मौलिक रहा। इसीलिए उन्हें हम स्वच्छन्दतावादी नाटककार कह सकते हैं। प्रसाद जी ने अपने अधिकांश नाटकों का कथानक ऐतिहासिक वृत्तों से ही लिया है और इसके माध्यम से उन्होंने भारतीय समाज एवं संस्कृति का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। उनका रचनाकाल भारतीय राष्ट्रीय संग्राम का महत्वपूर्ण काल रहा, जिस काल में राष्ट्रीय उत्कर्ष की भावना के लिए ऐतिहासिक कथानकों का सर्वोपरि महत्व था। इन कथानकों के द्वारा राष्ट्र के गौरवशाली अतीत का परिचय कराकर उसके माध्यम से वर्तमान दुर्दशा, तथा अवनति के कारणों को स्पष्ट करना था। वास्तव में प्रसाद ही उन थोड़े से साहित्यकारों में हैं जिन्होंने राष्ट्रीय संकट का अनुमान किया और विदेशी शासकों के सांस्कृतिक प्रहार का प्रतिरोध करने के लिए इतिहास के तिमिराच्छन्न अंश को सही रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

यद्यपि अतीत के कथानकों को लेकर प्रसाद के पूर्व भी अनेक नाटक लिखे गए लेकिन उसमें वह विशेषता नहीं मिलती जो प्रसाद में मिलती है। प्रसाद जी ने अपने अतीत के इन कथानकों में वर्तमान का भी रूप समन्वित किया। यही कारण है कि उनके नाटकों में हमें वर्तमान जीवन के भी यथार्थ चित्र मिलते हैं। यहाँ तक कि उनके 'अलका' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' जैसे नारी पात्र बीसवीं शती के नारी जागरण के प्रतीक हैं। प्रसाद जी ने अपने नाटकों में जिन गीतों का प्रयोग किया है उनमें भी उद्दाम राष्ट्रीय भावना, निर्व्याज देशभक्ति तथा समाज के प्रति मंगलमयी कामनाओं का उद्घोषण है।

अन्य नाटककारों की भांति अतीत की विशेषताओं का उद्घाटन करते समय वर्तमान को प्रसाद जी ने नहीं छोड़ा है वरन् उन्होंने अपने नाटकों में अतीत को प्रकाशित करते समय वर्तमान से ज्योति ग्रहण की और इस प्रकार अतीत और वर्तमान का युगबद्ध रूप प्रस्तुत किया। वस्तुतः समन्वय का यह कौशल ही उनकी नाट्यकला का प्राण है।

उनके नाटकों के प्रायः सभी नाट्य तत्वों में एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य अथवा चमत्कार है। उनके सभी चरित्र वैयक्तिक उत्कर्ष की भावना से अनुप्राणित हैं जो अपनी अनुभूतियों एवं संवेदनाओं की निर्व्याज अभिव्यक्ति करते हैं। 'प्रसाद' की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति उनके पात्रों में स्पष्ट दिखाई देती है। हां! पुरुष पात्रों की अपेक्षा नारी पात्रों में इन स्वच्छन्द प्रवृत्तियों का समावेश अधिक मात्रा में हो सका है। उनकी 'देवसेना', 'अलका', 'कौमा', 'सुवासिनी' ये सब ऐसे ही पात्र हैं जो आज भी नाट्य-साहित्य में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते। इन पात्रों में भी प्रसाद जी ने अतीत एवं वर्तमान, कल्पना एवं यथार्थ, प्राचीन

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तथा नवीन व्यक्ति एवं समाज इन सभी का समन्वय किया है। 'प्रसाद' के नाट्य संवादों की ओजस्विता अपने में महत्वपूर्ण है। ये संवाद सम्पूर्ण वातावरण को साक्षात उपस्थित कर देते हैं। नाट्य तत्वों के अतिरिक्त उनके नाटकों में युगीन प्रवृत्तियों का भी समावेश है। युग प्रवृत्तियों के दो पहलू हैं। प्रथम राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति द्वितीय यथार्थ चित्रण।

'प्रसाद' जी केवल नाटककार ही नहीं हैं, उपन्यासकार भी हैं। प्रेमचंद युगीन उपन्यासकार होते हुए भी उनके उपन्यासों में अपनी मौलिकता है। 'कंकाल' तथा 'तितली' उनके दो उपन्यास हैं। 'इरावती' अधूरा है। 'कंकाल' के द्वारा 'प्रसाद' जी ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नया मोड़ दिया है। उसमें सामाजिक यथार्थ का चित्रण तो है ही साथ ही इसमें हमें प्रकृतवाद के भी दर्शन हो जाते हैं। इसे हम आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास कह सकते हैं जिसमें प्रकृतवाद का भी अद्भुत समन्वय हुआ है। 'तितली' उपन्यास प्रेमचन्द की परम्परा में लिखा गया है इसमें 'प्रसाद' जी ने खेतों और खलिहानों को अपनी तूलिका से रंग दिया है। वैसे इसकी कथा काल्पनिक है। उनके अधूरे उपन्यास इरावती में ऐतिहासिक भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

नाटककार और उपन्यासकार के साथ ही प्रसाद सफल कहानीकार भी हैं। उनके आगमन से हिन्दी कहानी को एक निश्चित दिशा मिली है। भारतीय संस्कृति की गरिमा और पुरातन मर्यादा के प्रति आस्थावान होने के कारण उनकी कहानियों में भी अतीत और वर्तमान का अद्भुत समन्वय हुआ है। 'प्रसाद' जी ने अधिकांशतः भाव प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। चूंकि उनकी कहानियाँ अनुभूति और कल्पना से उद्भूत हुई हैं अतः उन्हें कथाशिल्प की कसौटी पर कस पाना कठिन है। प्रभाव-गाम्भीर्य और कलात्मकता का चरम परिपाक उनकी कहानियों में पाया जाता है। उनकी छोटी कहानियाँ गद्य गीत के अधिक निकट हैं और लम्बी कहानियाँ नाटकों के। कहानीकार के रूप में प्रसाद की एक विशेषता और भी है, इन्होंने कहानियों का अंत अद्भुत रूप में किया है जिसमें पाठक की जिज्ञासा बनी रहती है। अपनी इन्हीं सब विशेषताओं के कारण ही प्रसाद जी सुप्रसिद्ध कहानीकार के रूप में विख्यात हो गए हैं।

प्रसाद जी ने निबंध क्षेत्र को भी गौरवान्वित किया है। उनके काव्य-और कला, 'रहस्यवाद', 'यथार्थवाद' और 'छायावाद' तथा 'रस' इत्यादि प्रमुख निबंध हैं। ये सभी निबंध गंभीर तथा चिन्तन प्रधान हैं। इन निबन्धों के माध्यम से प्रसाद जी ने छायावाद की सूक्ष्म सौंदर्य-चेतना, अतीन्द्रियता, कल्पनाप्रियता,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सर्वात्मवादिता आदि विशेषताओं का समर्थन भारतीय संस्कृति और दर्शन एवं साहित्य दृष्टि के आधार पर किया है।

अभी तक हिन्दी साहित्य अनुसंधित्सुओं ने प्रसाद को पाश्चात्य चश्मे में ही निरखने-परखने का प्रयास किया था। प्रसाद भारतीय भावधारा से उतने दूर नहीं जितना विद्वानों ने इसका ढिंढोरा पीटा। अतः उपर्युक्त निर्देशित दृष्टि के आधार पर प्रसाद के समूचे गद्य-साहित्य के एक साथ परीक्षण की आवश्यकता थी। यह हिन्दी साहित्य की एक रिक्तता थी। निश्चय ही डॉ० राजमणि शर्मा के इस ग्रंथ द्वारा यह अभाव पूरा हुआ है। उन्होंने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक अपने इस ग्रंथ में प्रसाद की समस्त गद्य-विधाओं का एक साथ सुस्पष्ट, विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है उनका यह प्रयास हिन्दी साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए एक नए पथ का निर्माण करने में सफल हुआ है।

--डॉ० त्रिभुवन सिंह

वाराणसी — छात्र अधिष्ठाता,

१५ अप्रैल, १९८० — काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुवाक्

प्रसाद के आगमन के पूर्व हिन्दी का गद्य-साहित्य प्रगति के पथ पर एक कदम बढ़ा अवश्य था किन्तु भारतेन्दु काल तक वह अपनी निर्जीव परंपरा और घेरे को तोड़ नहीं पाया था और द्विवेदी युग में गद्य के व्याकरणिक सुलझाव में ही विद्वान फँसे रह गए थे। भाषा संस्कार तो अवश्य हुआ किन्तु उसमें वह गतिमयता, वह जीवंतता न आ पाई जिसका अंकुर प्रसाद युग में प्रस्फुटित हुआ। यहाँ यह प्रश्न अवश्य उठता है कि आखिर प्रसाद जैसे कवि गद्य रचना में क्यों प्रवृत्त हुए। वस्तुतः पद्य विलासिता की भाषा है और गद्य जन सामान्य की। साथ ही काव्य में एक असमर्थता होती है जो अपने मूल भाव को सामान्य पाठक के समक्ष स्पष्ट नहीं कर पाती; इसका स्पष्ट प्रमाण है तद्युगीन चारों प्रसिद्ध छायावादी कवियों द्वारा अपने काव्य की भूमिकाएँ और समालोचनाएँ लिखना। किन्तु गद्य इन असमर्थताओं से दूर रहता है। जन-सामान्य तक पहुँचने के लिए साहित्यकार द्वारा गद्य-भाषा का चुनाव आवश्यक है। संभवतः इसी को हृदयस्थ कर प्रसाद ने गद्य रचना का प्रारंभ किया।

प्रसाद गद्य साहित्य के चतुर्दिक अभ्युत्थान में लगे। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी के साथ-साथ निबंध तथा समालोचना भी लिखी। अपने इस कौशल द्वारा प्रसाद ने गद्य साहित्य को एक नया मोड़ दिया। उसे गतिमान बनाया; प्राचीन जंजीरों से मुक्त कर नवीन आभरण में स्वच्छन्द बनाया। इसी देन से प्रसाद का गद्य-साहित्य हिन्दी गद्य-साहित्य में विरल है और उनकी अपनी उपलब्धियाँ हैं। जहाँ नाटक को शास्त्रीय बंधन की जर्जरित परंपरा से मुक्त किया और पाश्चात्य पद्धति को अपनाया, वहीं उसमें जीवंतता लाने के लिए भारतीय पद्धति को भी तिलांजलि नहीं दी। उनके नाटकों में राष्ट्रीय प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी पड़ी है। अपने नाटक में उन्होंने जीवन्त पात्रों की सृष्टि की। कहानियों में यथार्थ को प्रस्तुत कर कथ्य और शिल्प का नया सरोसंजाम प्रस्तुत किया। उनके तीनों उपन्यास, उपन्यास साहित्य की भावी तीन पद्धति के अग्रदूत हैं। प्रसाद की इन्हीं विशिष्टताओं को दृष्टि में रखकर उनके समग्र गद्य-साहित्य का एक-साथ अध्ययन प्रस्तुत करने का मैंने संकल्प किया। सम्यक् निरीक्षण-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परीक्षण और विवेचन-विश्लेषण के आधार पर सन् १९७४ में इसे शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग ने पी-एच० डी० उपाधि से समलंकृत कर गौरव प्रदान किया।

उपसंहार के अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रंथ पाँच अध्यायों में विभक्त है। **पहले अध्याय** में प्रसाद पूर्व गद्य-साहित्य और उसकी प्रमुख दिशाओं का विकास, उपलब्धि और अभाव का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है। **दूसरे अध्याय** में प्रसाद के नाटकों को परंपरा विहित मार्ग से अलग करने वाली विशेषताओं का उल्लेख है। विषयवस्तु और कलात्मक विकास की दृष्टि से नाटकों का वर्गीकरण, विश्लेषण और विवेचन इस अध्याय का वर्ण्य है। **तीसरे अध्याय** में प्रसाद के उपन्यासों का विवेचन है। प्रसाद के तीन उपन्यास हिन्दी साहित्य के उपन्यास साहित्य की तीन दिशाओं के अग्रदूत हैं। 'कंकाल' सामाजिक यथार्थ की प्रखर चेतना का जहाँ प्रतीक है वहीं 'तितली' में स्वच्छन्दतावाद पूर्णतया मुखर है। आदर्श और यथार्थ का समन्वय भी प्रसाद ने इसमें अपने अनुरूप प्रस्तुत किया है। प्रसाद का अधूरा उपन्यास 'इरावती' एक अलग ही कहानी प्रस्तुत करता है। वह सुदूर अतीत का अधूरा पुनर्निर्माण है। यदि प्रसाद इसे पूर्ण कर पाये होते तो निश्चय ही यह ऐतिहासिक उपन्यासों की सशक्त प्रारंभिक कड़ी होता। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उपन्यासों के माध्यम से प्रसाद ने हमें जो नवीन परंपरा और पथ प्रदान किया उसका उपन्यास साहित्य ऋणी है।

चौथे अध्याय में प्रसाद की कहानियों की मूल विशेषताओं को खोज निकालना तथा उनके आधार पर उनका विवेचन और वर्गीकरण प्रस्तुत करना लक्ष्य है। **पाँचवें अध्याय** में प्रसाद के निबंधों का विवेचन और उनमें प्रतिस्थापित सिद्धांतों की खोज उनकी रचनाओं से करना ही लक्ष्य है। इनके द्वारा लिखे प्राक्कथन और संपादकीय का मूल्यांकन और विवेचन भी इसी अध्याय का वर्ण्य है। **उपसंहार** में प्रसाद के गद्य-साहित्य के वैशिष्ट्य का एक समग्र आकलन तथा परवर्ती गद्य-साहित्य पर प्रभाव का एक समीक्षात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन अध्यायों के अतिरिक्त शोध-प्रबंध में सहायक ग्रंथों की एक उपयोगी सूची है। इसमें प्रसाद की रचनाओं के अतिरिक्त उनके गद्य साहित्य पर लिखे गए महत्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रंथों की भी सूची है।

इस ग्रंथ की पूर्णता पर सबसे पहले मैं अपना आभार अपने पूज्य गुरुवर और विभागाध्यक्ष डॉ० विजयपाल सिंह जी के प्रति व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने इस शोध-प्रबंध के निर्देशन का गुरुतर भार ग्रहण किया। उन्होंने कठिनाई के हर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मोड़ पर सुगम पथ का निदर्शन किया, धैर्य का संबल प्रदान किया और शोध-कार्य में निरंतर लगे रहने की प्रेरणा प्रदान की। उनकी इस कृपा के लिए मैं उनके प्रति प्रणति निवेदन करता हूँ।

ग्रंथ के प्रकाशन के इस शुभ अवसर पर मैं आकाशधर्मा पितृतुल्य पूज्य आचार्य स्वर्गीय डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिनकी महती आत्मीयता और आशीर्वाद ने मुझे इस योग्य बनाया।

शोध-कार्य-काल में गुरुवर डॉ० विजयशंकर मल्ल, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, डॉ० त्रिभुवन सिंह, डॉ० बब्बन त्रिपाठी से समय-समय पर प्राप्त अमूल्य सुझावों के लिए भी मैं हृदय से अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। जीवन सहचरी श्रीमती शिवा शर्मा के प्रति हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने सुषुप्त मानस में अध्ययन के प्रति निरंतर अभिरुचि जागृत कर उसे एकाग्र बनाने में सबसे बड़ी भूमिका अदा की। पुस्तक प्रकाशन में श्री विजयशंकर गुप्त से प्राप्त सहयोग के लिए भी मैं आभारी हूँ।

मैं आत्माराम एण्ड संस, लखनऊ के मालिक श्री वीरेन्द्र कुमार जी की सहृदयता के प्रति अत्यंत अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने ग्रंथ को शीघ्र प्रकाशित कराने में अपूर्व रुचि प्रदर्शित की और उसके लिए धन की व्यवस्था की। सम्मेलन मुद्रणालय के प्रबंधक श्री सीताराम गुण्ठे एवं सहायक प्रबन्धक श्री शिवनारायण झा के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अत्यंत अल्प समय में इसे मुद्रित कराया।

—राजमणि शर्मा

अमेठी
चैत्र रामनवमी-२०३७
२५ मार्च, १९८०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अनुक्रम

⊙⊙

प्रसाद-पूर्व हिन्दी-गद्य : १

प्रसाद के नाटक : ३०

प्रसाद के उपन्यास : ११०

प्रसाद की कहानियाँ : १५३

प्रसाद के निबंध, प्राक्कथन एवं संपादकीय : २१६

उपसंहार : प्रसाद का गद्य : एक समग्र आकलन : २४८

सहायक ग्रन्थ-सूची : २८९

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुःखदग्धजगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है; इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना को वाणी महत्व-पूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्य-पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमें विश्वमंगल की भावना ओत-प्रोत रहती है।

—प्रसाद : 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

१ | प्रसाद-पूर्व हिन्दी-गद्य

गद्य जन-साधारण की भाषा है। साहित्यकार अपने साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए गद्यात्मक भाषा का सहारा लेता है। प्रसाद ने भी गद्य-भाषा का सहारा लेकर गद्य-साहित्य की रचना की। गद्य-साहित्य के रचना-क्षेत्र में उनकी सही उपलब्धि का आकलन तब तक सम्भव नहीं, जब तक उनके पूर्व की गद्य-भाषा, गद्य-साहित्य, उसकी उपलब्धि तथा अभाव का संक्षिप्त विवेचन न हो जाय। इस उद्देश्य हेतु यहाँ मैंने नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध एवं समालोचना जैसी केवल उन्हीं विधाओं को चुना है, जिनका जन्म गद्य-साहित्य में जयशंकर प्रसाद के आगमन के पूर्व हो चुका था।

आधुनिक काल-पूर्व हिन्दी-गद्य

आधुनिक काल के पूर्व साहित्य की भाषा ब्रजभाषा रही है। ब्रजभाषा मूलतः काव्य की भाषा थी, इसलिए उस काल में काव्य की अपेक्षा गद्यात्मक रचनाओं का लगभग अभाव-सा रहा है। जो कुछ गद्य लिखे भी गए, वे प्रायः किसी प्राचीन काव्य की टीका, व्याख्या, अनुवाद या उन्हीं पर आधारित कथा-वार्त्ता तथा कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में दी गयी टिप्पणियों के ही रूप में उपलब्ध होते हैं। गोरखनाथ की 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' और विट्ठलनाथ की 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' जैसे किंचित् पुष्ट गद्य भी मिलते हैं। परन्तु गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक् प्रचार न होने के कारण ब्रजभाषा-गद्य जहाँ-का-तहाँ रह गया। उपर्युक्त वैष्णव वार्त्ताओं में गद्य का जैसा परिष्कृत और सुव्यवस्थित रूप दिखायी पड़ा, वैसा आगे देखने को नहीं मिलता। "काव्य की टीकाओं आदि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में जो थोड़ा-बहुत गद्य देखने में आता था, वह बहुत ही अव्यवस्थित और अशक्त था। उसमें अर्थों और भावों को सम्बद्ध रूप में प्रकाशित करने तक की शक्ति न थी।...इससे इनके द्वारा गद्य की उन्नति की सम्भावना न थी।"[१] डॉ० वार्ष्णेय के मतानुसार भी "ब्रजभाषा गद्य की क्रमबद्ध परम्परा न होने के कारण इन ग्रन्थों की भाषा सुगठित और मँजी हुई नहीं हैं। स्पष्ट रूप से विचार प्रकट करने की शक्ति का उसमें अभाव है। एक-से शब्दों, वाक्यों और वाक्यांशों की बार-बार पुनरावृत्ति होने के कारण भाषा में प्रवाह नहीं मिलता।"[२]

ब्रजभाषा के अतिरिक्त राजस्थानी और खड़ी बोली के गद्य भी मिलते हैं। राजस्थानी गद्य-परम्परा का सूत्रपात १२वीं शती के लगभग माना जाता है। यद्यपि आज इसकी अधिकांश सामग्री नष्ट हो चुकी है, पर उपलब्ध सामग्री ही यह बताने में समर्थ है कि इसकी परम्परा ब्रजभाषा की अपेक्षा अधिक समृद्ध थी। "फिर भी इसकी सीमाएँ थीं, इसलिए वह भी नए विषयों के प्रतिपादन और नई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपयुक्त और उपयोगी माध्यम सिद्ध न हो सका।"[३]

आचार्य द्विवेदी के अनुसार भी—"ब्रजभाषा और राजस्थानी में गद्य का साहित्य मिल जाता है। परन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह साहित्य का उतना प्रभावशाली वाहन कभी नहीं रहा, जितना आज है।"[४]

खड़ी बोली गद्य : प्रारम्भ और विकास

खड़ी बोली गद्य-परम्परा भी प्रारम्भ में ब्रजभाषा और राजस्थानी की ही भाँति अत्यन्त कमजोर थी। पर मुगल-शासन के पतन तथा अंग्रेजों के आधिपत्य में आने के पूर्व पश्चिमी राजधानियों के स्थान पर पूर्वी राजधानियों के प्रभुत्व में आ जाने के फलस्वरूप खड़ी बोली का प्रचार-प्रसार प्रचुर मात्रा में हो चुका था। वस्तुतः "अपभ्रंश के लोकभाषा न रहने पर उसका स्थान उत्तर कुरुजनपद में व्यवहृत कौरवी या खड़ी बोली ने ले लिया। इसे देश के भिन्न-भिन्न प्रदेश के लोग भिन्न-भिन्न नामों से जानते हैं।"[५] अंग्रेजों ने इसे ही प्रधान भाषा समझकर राज्याश्रय

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २७८।

२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० २८।

३. वही, पृ० २८।

४. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० ३६४।

५. सं० डॉ० विनय मोहन शर्मा : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृ० ५६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रदान किया और प्रेस की सहायता से उसी में शासन तथा शिक्षा-सम्बन्धी कार्य शुरू किये। इन सुविधाओं के कारण "खड़ी बोली बाज़ी मार ले गयी और दिन-पर-दिन साहित्य में, पहले गद्य के क्षेत्र में और फिर काव्य के क्षेत्र में प्रधानता ग्रहण करती गयीं और नवीन साहित्यिक चेतना का माध्यम बनीं।"[१]

इस प्रकार तासी, ग्रियर्सन, फ़ेजर और ग्रीब्स का यह मत मान्य नहीं हो सकता कि आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली का जन्म लल्लूलाल और सदल मिश्र के माध्यम से गिल क्राइस्ट की अध्यक्षता में फोर्ट विलियम कॉलेज (१८००) में हुआ। लल्लूलाल और सदल मिश्र से पूर्व ही अमीर खुसरो, सन्त कवियों तथा दक्खिनी हिन्दी के कवियों तक की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग होता रहा है। अट्ठारहवीं शताब्दी में मध्य प्रान्त के दौलतराम कृत 'जैन पद्म पुराण' (१७६१), मथुरानाथ शुक्ल के 'पंचांग दर्शन' (१८००), सदासुख लाल की 'विष्णु पुराण' पर आधारित रचना तथा १७९८ और १८०२ के बीच इंशा अल्ला खाँ द्वारा रचित 'रानी केतकी की कहानी' में अरबी-फ़ारसी शब्दों के स्थान पर विशुद्ध संस्कृत या ठेठ हिन्दी शब्दों का प्रयोग हुआ है। तात्पर्य यह कि न तो आधुनिक हिन्दी का जन्म लल्लूलाल के 'प्रेमसागर' से माना जा सकता है और न ही उन्हें आधुनिक खड़ी बोली गद्य का जन्मदाता ही। पर अन्य लेखकों के साथ कम्पनी की तरफ से रचना में लगे लल्लूलाल जी एवं सदल मिश्र, और आगे चल कर राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द को भी खड़ी बोली गद्य के उन्नायकों में गिना जा सकता है।

ईसाई धर्म-प्रचारकों ने अपने धर्म-प्रचार के लिए इसी भाषा को अपनाया और उन्होंने इस भाषा में अनेक धर्मग्रन्थों के अनुवाद कराकर वितरित कराए। यद्यपि उनका लक्ष्य हिन्दी का उन्नयन नहीं था, पर अप्रत्यक्ष रूप से उनकी इस क्रिया द्वारा खड़ी बोली गद्य के प्रचार-प्रसार में यथेष्ट सहायता मिली।

राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने पाठ्यक्रम के उपयुक्त 'राजा भोज का सपना', 'वीरसिंह का वृत्तान्त,' 'आलसियों का कोड़ा' जैसी कई कहानियाँ लिखीं; साथ ही पण्डित श्रीलाल और पण्डित वंशीधर को भी इस तरफ आकृष्ट किया। इनके अतिरिक्त बिहारीलाल, पण्डित बद्रीलाल आदि लेखकों ने भी इसकी श्रीवृद्धि में योगदान किया। हिन्दी के समर्थक होते हुए भी तत्कालीन उर्दू-प्रभाव तथा सरकारी नीति और अंग्रेजी आदि के रुख के कारण राजा साहब को अपनी भाषा-नीति में व्यापक परिवर्तन करना पड़ा।

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० २९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"यह प्रकृति विरुद्ध भाषा खटकी तो बहुत लोगों को होगी, पर असली हिन्दी का नमूना लेकर उस समय राजा लक्ष्मण सिंह ही आगे आए।"[1] उन्होंने सं० १९१८ में आगरे से 'प्रजाहितैषी' नामक पत्र निकाला और सं० १९१९ में 'अभिज्ञान शाकुन्तल' का अनुवाद बहुत ही सरस और विशुद्ध हिन्दी में प्रकाशित किया। इस पुस्तक प्रकाशन ने भाषा के सम्बन्ध में दिग्भ्रमित साहित्यकारों का दिशा-निर्देश किया। भारतीय हिन्दी विद्वानों के अतिरिक्त पिंकाट साहब जैसे अंग्रेजी विद्वानों ने भी इस पथ का अनुसरण किया।

राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, नवीनचन्द्र जैसे भारतीय धर्म-मनीषियों ने भी अपने प्रचार के लिए हिन्दी माध्यम चुना।

सम्वत् १९१० के लगभग ही विलक्षण प्रतिमाशाली विद्वान् पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानों और कथाओं की धूम पंजाब में आरम्भ हुई। उन्होंने ईसाई प्रभुत्व-विस्तार को तो रोका ही, साथ ही हिन्दी को अपने प्रवचनों, व्याख्यानों और पुस्तकों का माध्यम बनाकर उसकी श्रीवृद्धि भी की। कपूरथला-नरेश महाराज रणवीरसिंह को ईसाई होने से विरत किया। उनकी वाणी में अद्भुत आकर्षण और चमत्कार था। उनकी भाषा बहुत जोरदार होती थी, जिसके प्रभावस्वरूप उनके व्याख्यान सुनने के लिए हजारों की संख्या में नर-नारी दूर-दूर से इकट्ठे होते थे।

"राजा लक्ष्मणसिंह के समय में ही हिन्दी-गद्य की भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी। अब आवश्यकता ऐसे शक्ति सम्पन्न लेखकों की थी, जो अपनी प्रतिभा और उद्भावना के बल से उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित करते और उसमें ऐसे साहित्य का विधान करते, जो शिक्षित जनता की रुचि के अनुकूल होता। ठीक इसी परिस्थिति में भारतेन्दु का उदय हुआ।"[2]

वस्तुतः इस समय की साहित्यिक गतिविधि भारतेन्दु बाबू की परिष्कृत साहित्यिक सुरुचि एवं जागरूकता के फलस्वरूप केन्द्रित होकर नवीन वातावरण के निर्माण में सफल हुई। "इस काल का साहित्य परम्परागत विशाल भारतीय साहित्यिक परम्परा से पहली बार मुक्त होकर व्यापक एवं परिष्कृत ढंग से अपने विशिष्ट कालबोध की ओर उन्मुख हुआ। भारतेन्दु-युग रूढ़िवाद एवं परम्परागत संकीर्णता से मुक्त व्यापक समसामयिक दायित्व का अनुभव कर चुका था। इसी

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०५।
२. वही, पृ० ३०६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के परिणामस्वरूप कतिपय ऐसे तत्वों का साहित्य-लेखन में समावेश हुआ, जो साहित्यिक पुनरुत्थान का प्रेरक मन्त्र बन गया।"[१]

भारतेन्दु स्वयं साहित्य रचना में प्रवृत्त हुए और अनेक अन्य विद्वानों को भी इधर आकृष्ट किया। उन्होंने लेखकों का एक अच्छा-खासा मण्डल तैयार कर लिया; जिसके भीतर पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह, पं० बालकृष्ण भट्ट आदि प्रमुख हैं। इनके समय में ही देश के भिन्न-भिन्न भागों में लेखकों का एक ऐसा वर्ग तैयार हुआ, जिसने भारतेन्दु बाबू से मिलते-जुलते आदर्शों को लक्ष्य बना कर साहित्य की सेवा का व्रत लिया। पं० अम्बिकादत्त व्यास आदि के नाम उल्लेख्य हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार भी "इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और उसे वे शिक्षित जनता के साहचर्य में ले आए।"[२]

नवीन साहित्य-रूपों के विकास का कारण

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल विकास और परिवर्तन का युग है। इस काल की प्रमुख विशेषता साहित्यिक रूपों और प्रवृत्तियों की विविधता है। १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक गद्य की दशा अत्यन्त शोचनीय थी; न उसमें विविधता थी और न प्रचुरता।

१८३७ ई० में दिल्ली में एक लिथोग्राफिक प्रेस की स्थापना हुई। इससे पूर्व भी कलकत्ता फोर्ट विलियम कॉलेज से कुछ हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका था, पर वे संख्या में अत्यन्त अल्प थीं। १८३७ से हिन्दी पुस्तकों का प्रकाशन अबाध गति से चलता है। "वस्तुतः साहित्य में आधुनिकता का वाहन प्रेस है और उसके प्रचार के सहायक हैं : यातायात के समुन्नत साधन।"[३] मई १८२६ से 'उदन्त-मार्तण्ड', 'बंग दूत' (१९२९), 'प्रजा मित्र' (१८३४) और १८४४ में बनारस से 'बनारस' का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया था। वस्तुतः प्रेस ने साहित्य को प्रजातान्त्रिक रूप दिया। समाचारपत्र, उपन्यास, आधुनिक ढंग के निबन्ध और कहानियाँ सब प्रेस का प्रचार होने के बाद ही लिखी जाने लगीं। शिक्षा-प्रसार के कारण जनता अधिक शिक्षित होने लगी। अंग्रेजी राज्य में राजसभा तक ही

---

१. सं० डॉ० विनय मोहन शर्मा : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पृ० ७९।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०६।

३. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य , पृ० ३६१-६२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सीमित रहने वाले साहित्य का लोप होने लगा। प्रेस की स्थापना ने राजमहलों में बन्द साहित्य को स्वच्छन्द वातावरण ही नहीं प्रदान किया, अपितु जन-साधारण के लिए पुस्तकें, पत्रिकाएँ भी सस्ती दर पर उपलब्ध कराईं। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वर्तमान वातावरण से परिचित जनता अपनी परिस्थिति के प्रति पुनर्विचार करने के लिए विवश हो उठी। उसमें नवीन चेतना का संचार हुआ और वह अपनी भूली-बिसरी संस्कृति को पुनः स्मरण करने के लिए बेचैन हो उठी। प्रेस की सुविधा ने उसे नवीन सभ्यता, अद्यतन रचनाओं तथा जन-चेतनाओं के सम्पर्क में ला खड़ा किया। अब खोज थी एक सशक्त भाषा की, जो उनके मूक आन्दोलनों को वाणी प्रदान कर सके। यह कार्य खड़ी बोली के द्वारा सम्पन्न हुआ।

१८५० तक आते-आते खड़ी बोली का स्वरूप निर्धारित हो चुका था और उसमें साहित्यिक बोझिलता वहन करने की सामर्थ्य आ चुकी थी। धड़ल्ले से साहित्यिक ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन खड़ी बोली में हो रहा था और वह अपने पैरों पर खड़ी होने योग्य बनी। कुछ पश्चिमी नकल पर और कुछ असीम और युग की जटिल समस्याओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए गद्य के विभिन्न रूपों और शैलियों का जन्म हुआ।

साहित्य की यह नवीनतम गति १८५० ई० से स्पष्ट परिलक्षित होती है। इसलिए हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ यहीं से माना जाना चाहिए।

नवीन वैज्ञानिक माध्यम द्वारा हिन्दी प्रदेश का सम्पर्क ज्यों-ज्यों संसार के अनेक देशों और साहित्यों से बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों युग की आवश्यकता और अनिवार्यता के अनुरूप हिन्दी साहित्य में शैली, विचार और रूप की दृष्टि से अनेकरूपता आती गयी। फलतः हिन्दी गद्य-साहित्य ने विशेष उन्नति की।

हिन्दी गद्य-साहित्य का प्रारम्भिक स्वरूप हमें तत्कालीन लेखकों की नाट्य रचनाओं से ही मिलता है। साहित्यिक विधा के रूप में भी नाटक का ही विकास सबसे पहले हुआ। इसलिए सर्वप्रथम उसके विकास पर विचार कर लेना उचित होगा।

नाट्य-साहित्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र-पूर्व युग

हिन्दी के प्रारम्भिक नाटक या तो संस्कृत के अनुवाद मात्र थे या पद्यात्मक सम्वाद के रूप में। नेवाज कृत 'शकुन्तला' नाटक, जैन कवि बनारसीदास जी का 'समयसार' तथा ब्रजवासीदास द्वारा 'प्रबोध चन्द्रोदय' का किया हुआ अनुवाद

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी प्रकार के नाटक हैं, जो केवल सम्वाद रूप में होने के कारण ही 'नाटक' नाम से अभिहित होते हैं।

आधुनिक खोज के फलस्वरूप चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक कुछ ऐसी रचनाएँ मिलती हैं, जिन्हें नाटक कहा जा सकता है। मैथिल कवि विद्यापति ने 'रुक्मिणी हरण' और 'परिजात हरण',; सत्रहवीं शताब्दी में केशवदास ने 'विज्ञानगीता'; कृष्ण जीवन ने 'करुणाभरण'; हृदयराम पंजाबी ने 'हनुमन्नाटक'; यशवन्त सिंह ने 'प्रबोध चन्दोदय'; अट्ठारहवीं शताब्दी में महाराजा विश्वनाथ सिंह ने 'आनन्द रघुनन्दन'; मंजु ने 'हनुमन्नाटक'; नेवाज कवि ने 'शकुन्तला'; देव ने 'देवमाया प्रपंच'; आलम ने 'माधवानल कामकन्दला'; कृष्ण शर्मा साधु ने 'रामलीला बिहार नाटक'; हरिराम ने 'जानकीराम चरित्र नाटक' और व्रजवासीदास ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' आदि नाटक लिखे।[1] इन रचनाओं का महत्व नाटक की प्राचीन परम्परा जानने के लिए ही जरूरी है। नाटकीय तत्त्वों के अभाव में इन्हें नाटकों की श्रेणी में स्थान देना श्रेयस्कर नहीं।

हिन्दी नाटकों के जन्म और विकास के पीछे ग्रामीण जनता के मनोरंजन का लक्ष्य ही रहा है। उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हिन्दी प्रदेशों में रामलीला और रासलीला की अविच्छिन्न धारा दीर्वकाल से चली आ रही है; जिसका परिष्कार युग की आवश्यकता के अनुरूप होता रहा है। पर आधुनिक नाटक का जन्म इनकी कोख से नहीं हुआ है। यह दूसरी बात है कि इन कथाओं को नाटकों के लिए अपनाया गया है और लीला शैली का नाटकीय रचनाओं पर प्रभाव भी पड़ा है। सच बात तो यह है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में नवोत्थान-कालीन भावना से प्रेरित संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन के फलस्वरूप फिर से अनुकूल वातावरण पाकर हिन्दी नाट्य-साहित्य का जन्म हुआ। भारतीय मनीषियों ने अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन तो किया ही, अंग्रेजों ने भी बड़े-बड़े नगरों में मनोरंजन के लिए अभिनय-शालाओं का निर्माण कर भारतीय प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान नाट्य-कला की ओर आकृष्ट किया। अंग्रेजी साहित्य ने भारतीय विचारधारा को पूर्णतया आच्छादित कर लिया और उसकी इस प्रबल आँधी से उस युग का लेखक बच न पाया। उसने इस प्रगतिशीलता को अपनाने में भारत-जन का कल्याण समझा। इन लेखकों में सबसे पहला नाम आता है गोपालचन्द्र (उपनाम गिरिधरदास)

---

१. सं० डॉ० विनय मोहन शर्मा : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, अष्टम भाग, (अभ्युत्थान काल-भारतेन्दु काल सं० १९००-१९५० वि०), पृ० १६६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का। वे अपने समय के प्रगतिशील व्यक्तियों में से थे। उन्होंने उस समय अपने घर की लड़कियों को स्कूली शिक्षा देने का बीड़ा उठाया, जिस समय स्त्री-शिक्षा की ओर न तो किसी का ध्यान था और न तो लोग इसे अच्छी बात ही समझते थे। विशुद्ध नाट्य-रीति से पात्र प्रवेशादि नियम-रक्षण द्वारा इन्होंने १८५९ ई० में 'नहुष' नामक प्रथम हिन्दी नाटक की रचना की।[१] इसमें इन्द्र को ब्रह्म-हत्या लगने के कारण उनके पदच्युत होने तथा नहुष के इन्द्र-पद को प्राप्त कर कामलोलुपता-वश इन्द्राणी को वरण करने की अभिलाषा से सप्तर्षियों को पालकी में जोतकर उनके यहाँ जाने की चेष्टा एवं दुर्वासा द्वारा शापित होकर उनके पतन की कथा है। इस नाटक की पूरी प्रति अब अप्राप्य है। दूसरे स्थान का अधिकारी राजा लक्ष्मण सिंह का 'शकुन्तला' नाटक है। यह अनुवाद अवश्य है, पर मौलिक नाटकों की विलेषताओं से युक्त है। इस काल के नाटक प्रायः संस्कृत के अनुवाद होते थे। इनका विषय प्रायः आध्यात्मिक या पौराणिक होता था और इनकी भाषा अधिकांशतः व्रजभाषा रही है। इस प्रकार "हिन्दी नाटक साहित्य ने भारतीय पुनरुत्थान काल में नवोत्थित राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक आन्दोलनों के क्रोड़ में जन्म लेकर संस्कृत नाटकों और नाट्य-शैलियों से प्रेरणा ग्रहण की और देशी लीलाओं तथा अंग्रेजी नाटकों का प्रभाव स्वीकार किया।"[२]

भारतेन्दु-युग

हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु का वही स्थान है, जो रूसी साहित्य में पुश्किन को प्राप्त है। वास्तविक अर्थ में हिन्दी नाट्य-साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु ही हैं। पहले इन्होंने बंगला नाटक 'विद्या सुन्दर' का अनुवाद किया। इसके बाद सं० १९३० में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' की रचना की। यह इनका मौलिक नाटक है। हिन्दी में नाट्य-साहित्य का विकास साधारणतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रथम कृति से माना जाता है।[३]

इसी समय लाला श्रीनिवासदास का 'तप्ता संवरण' निकला, जिसे भारतेन्दु जी ने हिन्दी का चौथा नाटक माना है। बाबू तोताराम जी का 'केटो वृत्तान्त' भी इसी समय की रचना है। यह एडीसन के 'केटो' का अनुवाद था। इसके बाद नाटकों की परम्परा चल निकली। भारतेन्दु द्वारा रचित अन्य नाटक हैं :

---

१. सं० भारतेन्दु ग्रन्थावली-नाटक (१९२७), पृ० ८३७-८३८।

२. सं० डॉ० विनय मोहन शर्मा : हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, अष्टम भाग, पृ० १६८।

३. डॉ० शिवदान सिंह चौहान : हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १३१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'प्रेमयोगिनी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'मुद्रा राक्षस', 'विषस्य विषमौषधम्', 'चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा', 'नील देवी', 'अन्धेर नगरी', 'कर्पूर मंजरी', 'पाखण्ड विडम्बन', 'धनंजय विजय', 'सती प्रताप', 'दुर्लभ बन्धु'।

भारतेन्दु के समकालीन प्रमुख नाटककारों में बदरीनारायण 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्ण दास, केशवराम भट्ट', बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, शालिग्राम वैश्य, अयोध्यासिंह उपाध्याय के नाम प्रमुख हैं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का 'भारत सौभाग्य' राष्ट्रीय भावना का नाटक है। प्रतापनारायण मिश्र का 'भारत दुर्दशा' भारतेन्दु शैली में ही भारत की हीन अवस्था का चित्र प्रस्तुत करता है। 'कलि कौतुकी रूपक' सामाजिक परिस्थितियों का दिग्दर्शक है। 'तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजो बार', 'गो संकट' व 'जुआरी खुआरी' प्रहसन व्यंग्य से परिपूर्ण हैं। राधाकृष्ण दास के नाटकों में एक तरफ अंग्रेजी नाटकों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर उनका पात्रानुकूल भाषा प्रयोग उन्हें संस्कृत नाट्य-परम्परा के निकट ला खड़ा करता है। 'महारानी पद्मावती' तथा 'दुःखिनी बाला' स्वच्छन्दतावादी नाट्य-शिल्प के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसमें हिन्दू विधवा के दुख-दैन्य को दर्शाया गया है। केशवराम भट्ट का 'सज्जाद सम्बुल' और 'समसाद सौसन' नाटक उल्लेख्य हैं। सम्भवतः 'सज्जाद सम्बुल' पहला नाटक है, जिसमें यथार्थवादी और स्वच्छन्दतावादी दोनों धाराएँ घुली-मिली हैं। लाला श्रनिवासदास की 'रणधीर प्रेम मोहिनी' स्वच्छन्दतावादी, दुःखान्तकी रचना है। यहीं से दुःखात्मक नाटकों की प्रवृत्ति का श्रीगणेश होता हैं। इनका दूसरा प्रसिद्ध नाटक है—'तप्ता संवरण'। इनका 'संयोगिता स्वयम्वर' ऐतिहासिक नाटक है। किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'प्रणयनी प्रणय' और 'मयंक मंजरी' प्रसिद्ध नाटक हैं। 'मयंक मंजरी' पर संस्कृत नाट्य-प्रणाली का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें चुम्बन और मृत्यु का चित्रण किया गया है, जो पाश्चात्य प्रभाव का ही परिणाम है। इसे हम स्वच्छन्दतावादी नाट्य कृति कह सकते हैं। शालिग्राम वैश्य के 'माधवानल कामकन्दला', 'मोरध्वज', 'अभिमन्यु' आदि पौराणिक नाटक विशेष प्रसिद्ध हैं। 'दमयन्ती स्वयम्वर', 'वेणु संहार', 'शर्मिष्ठा', 'किरातार्जुनीयम्', 'पृथु चरित्र', 'शिशुपाल बध', 'नल और दमयन्ती', 'बृहन्नला' आदि बालकृष्ण भट्ट के प्रसिद्ध नाटक हैं। ये सभी पौराणिक आख्यान पर आधृत हैं। 'वेणु संहार' अंग्रेजी राज्य-सत्ता व उसके चाटुकारों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करता है। राधाचरण गोस्वामी के 'श्रीदामा', 'अमर सिंह राठौर', 'सती चन्द्रावली' नाटक देश-सुधार की भावना से परिपूर्ण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हैं। 'तन-मन धन गोसाईं के अर्पण', 'बूढ़े मुँह मुँहासे' और 'मदन तरंग' नामक प्रहसनों में सामाजिक कुरीतियों को दिखाया गया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का 'प्रद्युम्न विजय', 'रुक्मिणी परिणय' संस्कृत नाटक-विधान पर आधृत नाटक हैं। अम्बिका प्रसाद व्यास का 'गौ संकट' और 'भारत सौभाग्य' राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत नाटक हैं।

उपन्यास

कथा-कहानी कहने और सुनने की प्रवृत्ति मानव की आदिम और स्वाभाविक प्रवृत्ति है, जिसकी स्रोतस्विनी उसके जन्मकाल से अविराम गति से प्रवाहित होती चली आ रही है। संस्कृत साहित्य की कथा-कहानी की एक सुदीर्घ और सम्पन्न परम्परा भी हिन्दी को धरोहर के रूप में मिली है। पंचतन्त्र, हितोपदेश, कादम्बरी, दशकुमार चरित, वासवदत्ता, बौद्ध जातक, वृहत्कथा आदि कई ग्रन्थ उपन्यास के ढर्रे पर लिखे गए उपलब्ध होते हैं। "किन्तु उन्हें न तो रूप-विधान की दृष्टि से और न ही कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से आधुनिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है। यद्यपि आधुनिक उपन्यास के विकास में इन प्राचीन कृतियों को कथा-साहित्य की परम्परा की प्रारम्भिक कड़ी कहने में हमें कोई आपत्ति नहीं है;"[१] "हाँ यह धारणा गलत है कि उपन्यास संस्कृत की कथा और आख्यायिकाओं की सीधी सन्तान है।"[२]

आधुनिक हिन्दी साहित्य की अन्य अनेक विधाओं के प्रारम्भ-कर्त्ता और हिन्दी के अनन्य प्रेमी भारतेन्दु बाबू उपन्यास की शक्ति और उसके भविष्य से पूर्ण परिचित थे; इसलिए उन्होंने अपने मण्डल के लेखकों को औपन्यासिक कृतियों की रचना के लिए प्रेरित किया। उनकी प्रेरणा का यही परिणाम था कि 'कादम्बरी', 'दुर्गेशनन्दिनी', 'राधारानी', 'स्वर्णलता' आदि हिन्दीतर भाषाओं की रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ। उन्होंने मराठी रचना 'चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश' के अनुवाद को स्वयं शुद्ध किया। राणा जयसिंह (राजसिंह) का पूरा अनुवाद किया तथा प्रथम परिच्छेद का पुनर्लेखन किया।

'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' के माध्यम से अपनी आत्मकथा को औपन्यासिक स्वरूप प्रदान किया। हिन्दी का यह पहला अधूरा मौलिक उपन्यास है। सर्वप्रथम इसका प्रकाशन १८७६ में 'कविवचन सुधा' में हुआ। यह

---

१. डॉ० शिवदान सिंह चौहान : हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १६३।
२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : साहित्य सहचर, पृ० १०१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दी का दुर्भाग्य है कि यह रचना पूरी उपलब्ध नहीं है। भारतेन्दु ने अपने अन्तिम दिनों में 'हम्मीर हठ' नामक एक ऐतिहासिक उपन्यास प्रारम्भ किया था। वे इसका एक परिच्छेद लिख भी चुके थे, किन्तु काल की गति कुछ और ही थी, जिसने इस विधा को भारतेन्दु का सशक्त करावलम्ब प्राप्त करने से वंचित कर दिया।

भारतेन्दु के समकालीन पंजाब-निवासी तथा हिन्दी के प्रबल समर्थक, प्रचारक श्रद्धाराम फुल्लौरी ने सन् १८७७ में 'भाग्यवती' नामक उपन्यास की रचना की। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार इसका प्रकाशन १८७३ ई० में हुआ।[1] जबकि डॉ० विजयशंकर मल्ल इसका प्रकाशन-काल १८८७ ई० मानते हैं।[2] इसी समय के आस-पास लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' (१८८२) भी पाठकों के समक्ष आया। इस प्रकार, हिन्दी का पहला उपन्यास किसे माना जाय, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। परम्परा यह है कि लोग 'भाग्यवती' को प्रथम उपन्यास और 'परीक्षा गुरु' को प्रथम मौलिक उपन्यास मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "लाला श्रीनिवासदास का 'परीक्षा गुरु' अंग्रेजी पद्धति पर लिखा गया हिन्दी का पहला मौलिक उपन्यास है"[3] 'परीक्षा गुरु' की मौलिकता सिर्फ इसी बात में निहित है कि उसमें पात्रों का परिचय कहीं एक स्थान पर नहीं दिया जाता। अन्त तक पाठक उनका पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त कर पाते। इसके विपरीत पुरानी परम्परा को अपनाते हुए 'भाग्यवती' के लेखक नेपा त्रों का परिचय प्रसंग छिड़ते ही प्रारम्भ में दे दिया है। पर यदि इस एक तथ्य को छोड़ दिया जाय तो दोनों ही एक ही लीक पर चलनें वाले उपन्यास हैं। दोनों में वस्तु सम्बन्धी कोई मौलिकता नजर नहीं आती, जिसे हम हिन्दी उपन्यास की विकास परम्परा के लिए हितकर कह सकें। दोनों उपन्यास उपदेशपरक हैं। 'भाग्यवती' पुनर्जागरण का प्रयास है। उसमें क्रान्तिकारी चेतना का अभाव है। लगभग यही बात 'परीक्षा गुरु' के लिए भी कही जा सकती है।

'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' के १८७५ के फरवरी-मार्च के अंकों में 'मालती' नामक उपन्यास का प्रकाशन हुआ। यह रचना भी अधूरी है। इसके लेखक का तो पता नहीं चलता, पर वस्तुगत और शैलीगत विशेषताओं में यह उपन्यास के अधिक निकट है। रचना भी मौलिक प्रतीत होती है।

---

१. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य, पृ० ३९१।
२. डॉ० विजयशंकर मल्ल : 'भाग्यवती परिचय'।
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास,।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डॉ० माताप्रसाद गुप्त के 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' में सदानन्द मिश्र और शम्भुनाथ मिश्र द्वारा सम्पादित 'मनोहर उपन्यास' (१८७०) का उल्लेख भी मिलता है। बालकृष्ण भट्ट का 'रहस्य कथा' उपन्यास 'हिन्दी प्रदीप' के नवम्बर १८७९ के अंक में प्रकाशित हुआ था। 'एक कहानी कुछ आपबीती कुछ जगबीती' की भाँति यह भी अधूरी, किन्तु सशक्त रचना है और यदि वह पूरी होती तो निश्चय ही उसका स्थान मौलिक उपन्यासों में प्रथम होता।

वस्तुतः प्रारम्भिक उपन्यासों में सिर्फ दो ही रचनाएँ हमें अपने पूर्ण रूप में उपलब्ध हैं। यह तथ्य नकारा नहीं जा सकता कि 'परीक्षा गुरु', 'भाग्यवती' की अपेक्षा बाद की रचना है। इसलिए हमें 'भाग्यवती' को ही हिन्दी का पहला उपन्यास मानना चाहिए। 'भाग्यवती' के माध्यम से लेखक ने बालविवाह के दुष्परिणाम की तरफ संकेत किया है तथा नारी-जगत् में एक अपूर्व साहस भरने का प्रयत्न किया है। युगीन चेतना और समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में यदि इन दोनों रचनाओं की परख की जाय तो हम पायेंगे कि 'भाग्यवती' कहीं अधिक युगीन समस्या के हल के प्रति सचेत है। वस्तुतः उपन्यास का यही दायित्व भी होता है। पर शिल्पगत कौशल की दृष्टि से यह 'परीक्षा गुरु' के समक्ष एक कमजोर रचना सिद्ध होती है।

डॉ० गोपाल राय, पं० गौरीदत्त के 'देवरानी-जेठानी की कहानी' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। डॉ० राय इसका लेखन-काल १८७० ई० मानते हैं। उनके अनुसार 'देवरानी-जेठानी की कहानी' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पहली बार परम्परा से हटकर कथा कहने का प्रयास किया गया है। कथाकार पुराने आख्यान-लेखकों की तरह किसी राजा, सेठ-सामन्त या शूरवीर की कहानी न कह कर साधारण निम्न मध्यवर्गीय परिवार की देवरानी-जेठानी की कहानी कहता है।[1] किन्तु इन तथ्यों के बावजूद इस रचना में प्रभावात्मकता की कमी है। यह भी उपदेश-परक रचना है। साथ ही भविष्य के उपन्यास अध्ययन के लिए यह रचना कोई निर्देश भी नहीं छोड़ पाती। इसके पश्चात् रत्नचन्द्र प्लीडर ने 'नूतन चरित्र' (१८८३); बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६) और 'सौ अजान एक सुजान' (१८९२); राधाकृष्ण ने 'निस्सहाय हिन्दू' (१८९०); देवीप्रसाद खत्री ने 'जया' (१८९६); किशोरीलाल गोस्वामी ने 'लवंगलता', 'स्वर्गीय कुसुम' (१८९०); बालमुकुन्द गुप्त ने 'कामिनी'; गोपालराम गहमरी ने 'नये बाबू' (१८९५), 'सास पतोहू' और

---

१. देवरानी-जेठानी की कहानी, पुरोवचन, पृ० ३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'बड़ा भाई' (१८९८) तथा लज्जाराम मेहता ने 'धूर्त रसिकलाल' एवं 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी' आदि उपन्यास लिखे।[1]

इन सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ-साथ देवकीनन्दन खत्री ने अनेक रोचक वर्णनों, तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी से भरी रोमांचकारी घटनाओं का आधार लेकर 'चन्द्रकान्ता सन्तति' (१८९१) जैसे उपन्यास लिखे। अपने काल में उपन्यासकार के रूप में खत्री जी सर्वाधिक लोकप्रिय थे और अनेक लोगों ने केवल उनके उपन्यासों को पढ़ने के लिए ही हिन्दी सीखी। हिन्दी पाठकों के निर्माण में खत्री जी का यह योगदान हिन्दी-जगत् के लिए अविस्मरणीय है। यह दूसरी बात है कि उनकी रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं कही जा सकतीं। इनकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर इस काल के अनेक लेखकों ने इन्हीं के मार्ग का अनुसरण किया। फलतः १९१५ ई० तक हिन्दी में इसी प्रकार के उपन्यासों की बाढ़ रही।

देवीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ चतुर्वेदी, किशोरीलाल गोस्वामी के अतिरिक्त हरेकृष्ण जौहर, मदनमोहन पाठक, विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा, रामलाल वर्मा, चतुर्भुज औदित्य और चन्द्रशेखर पाठक आदि ने ऐयारी के उपन्यासों का ताँता बाँध दिया और गोपालराम गहमरी, रुद्रदत्त शर्मा, जयरामदास गुप्त, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, जंगबहादुर सिंह, शेरसिंह, चन्द्रशेखर पाठक, शिवनारायण द्विवेदी आदि की कलम जासूसी उपन्यासों के अति-रंजित रोमांचकारी कथानकों की शान पूरी करती रही।[2]

इस काल में अनेक ऐतिहासिक और प्रेमाख्यानक उपन्यासों की रचना हुई, पर कला की कसौटी पर ये खरे नहीं उतरते। ऐतिहासिक उपन्यासों में केवल ब्रजनन्दन सहाय का 'वीरमणि' (१९१७) उपन्यास कला और ऐतिहासिकता की दृष्टि से कुछ महत्व का है। अलाउद्दीन खिलजी की चित्तौड़ पर चढ़ाई को आधार बनाकर पूर्णतया काल्पनिक प्रसंग की सृष्टि की गई है। सामाजिक और प्रेमाख्यानक उपन्यासकारों में श्रीनिवासदास, किशोरीलाल गोस्वामी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लज्जाराम मेहता आदि के नाम विशेष उल्लेख्य हैं।

बालकृष्ण भट्ट के 'सौ अजान एकसुजान' में यह प्रवृत्ति और बढ़ी-चढ़ी हुई दिखाई देती है। बालकृष्ण भट्ट का दूसरा उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी' भी इसी प्रकार की रचना है। 'सौ अजान एक सुजान' की कथा शिक्षाप्रद है। सेठ

---

१. डॉ० शिवदान सिंह चौहान : हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १६६।

२. वही।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हीराचन्द, पं० शिरोमणि और उनके शिष्य चन्द्रशेखर के सत्संग में समय बिताता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र कुचक्र में पड़कर पथ-भ्रष्ट हो गए। मद्य-पान और वेश्यावृत्ति करने के अपराध में पुलिस उन्हें बार-बार पकड़ती; किन्तु चन्द्रशेखर (चन्दू) उनकी सदैव रक्षा करता। अन्त में वे चन्दू के चरित्र से प्रभावित होकर कुसंगति छोड़कर सत्कर्म में प्रवृत्त हुए और अपने वंश के अनुरूप यश की वृद्धि करने लगे। 'नूतन ब्रह्मचारी' में भट्ट जी ने विट्ठलराव और राधाबाई के पुत्र विनायक के चरित्रवान और सदाचारी होने का परिणाम दिखाया है। वह ईर्ष्या, द्वेष से अलग रहकर भी अपने चरित्र के बल पर डाकुओं के सरदार जैसे दुष्ट को भी चरित्रवान बना देता है। इस प्रकार ये दोनों ग्रन्थ नैतिकता की वृद्धि करने वाले उपन्यासों के उत्तम उदाहरण हैं। इनमें उपन्यास कला की विशेषताएँ तो नहीं मिलतीं; किन्तु वे सुन्दर उपदेशों से भरे हुए हैं। इसमें पात्रों का चरित्र-चित्रण यथार्थ भूमि पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि उनके पात्र उन्हीं के समान हैं। 'सौ अजान एक सुजान' के 'चन्दू' और 'पंचानन' के चरित्र में भट्ट जी के चरित्र की झलक साफ दिखाई देती है। इस काल के उपन्यासों में राधाकृष्ण दास का 'निःसहाय हिन्दू' भी उल्लेखनीय है। इसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया गया है। प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाँति राजनीतिक आन्दोलन के स्थान पर इसमें गोरक्षा आन्दोलन का चित्रण मिलता है। साथ ही मुसलमानों की धर्मान्धता और हिन्दुओं की शोचनीय अवस्था दिखाई गई है। भारत की हीना-वस्था का दायित्व ब्राह्मणों और मुसलमानों पर रख कर उन्होंने गोबध के विरुद्ध आवाज उठाई है।

हिन्दी उपन्यासों के विकास की दूसरी परम्परा पं० किशोरीलाल गोस्वामी से प्रारम्भ होती है। उन्होंने कौतूहल वृत्ति को तो कायम रखा, पर ऐतिहासिकता और सामाजिकता के साथ मनुष्य की सहज रुचि को जागृत करने वाली विलासिता और प्रेम का पक्ष अधिक चित्रित किया। इन्होंने लगभग ६५ छोटे-बड़े उपन्यासों की रचना की। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "साहित्य की दृष्टि से उन्हें हिन्दी का पहला उपन्यासकार कहना चाहिए।"[1] इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप-रंग, चित्ताकर्षक वर्णन और थोड़ा-बहुत चरित्र-चित्रण भी अवश्य पाया जाता है। पर इन उपन्यासों का प्रभाव नवयुवकों पर अत्यन्त बुरा पड़ सकता है। उनमें उच्च वासनाएँ व्यक्त करने वाले दृश्यों की अपेक्षा निम्न-कोटि की वासनाएँ प्रकाशित करने वाले दृश्य अधिक भी हैं और चटकीले भी।

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गोस्वामी जी ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की; परन्तु ये रचनाएँ उनके इतिहास के अल्प ज्ञान की ही साक्षी हैं। 'त्रिवेणी' में उन्होंने समाज के विरुद्ध सनातन धर्म की महिमा का वर्णन किया है, साथ ही हिन्दुओं को ईसाई और इस्लाम धर्म के जाल से बचे रहने तथा निज भाषा और साहित्य की सेवा करने का आदेश दिया है। इसका कथानक बहुत सूक्ष्म है। इसमें न तो मानव-जीवन की विविधता है और न चरित्रों का प्रकाश। 'स्वर्गीय कुसुम' का कथानक अधिक घटना-प्रधान है। इसमें आरा (विहार) के राजा कर्णसिंह की पुत्री कुसुम कुमारी की वेदनामयी जीवनी है। लेखक ने बताया है कि किस प्रकार वह तीन वर्ष की अवस्था में देवदासी बनी, पण्डों द्वारा वेश्या को बेची गई, हरिहर क्षेत्र के कार्तिकी पूर्णिमा के मेले में नाव टूट जाने से डूब गई और बसन्त कुमार द्वारा बचाई गई। बसन्त का विवाह उसकी छोटी बहन गुलाब से होता है और वह स्वयं देवदासी प्रथा का मूलोच्छेदन करने की प्रतिज्ञा करती है। किन्तु वह गुलाब के व्यंग्य से आहत होकर एक दिन आत्महत्या कर लेती है। लेकिन चमत्कार द्वारा लेखक कुसुम के प्राण बचा लेता है और गुलाब उसे बहन के रूप में पहचान लेती है। गोस्वामी जी की इस रचना से भी यह बात साफ हो जाती है कि उनमें सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों के विरुद्ध खुल्लम-खुल्ला विद्रोह करने का साहस नहीं था। लेखक ने सामाजिक विडम्बना का यथा-तथ्य उल्लेख कर दिया है। उसका नायक भी विद्रोह का साहस नहीं कर पाता। 'हृदय हारिणी' या 'आदर्श विद्रोह' में एक नारी कुसुम कुमारी के सौन्दर्य और प्रेम-प्रसंगों का वर्णन है। 'लौंगलता' में लवंगलता अपने को सिराजुद्दौला के चंगुलों से बचाने में सफल होती है।

किशोरीलाल गोस्वामी ने 'कुसुम कुमारी' और 'लौंगलता' के रूप में भारतीय हिन्दू-समाज के समक्ष दो ऐसी वीरांगनाओं को उपस्थित किया है, जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी अपने पातिव्रत की रक्षा की और धर्म तथा जाति पर किए जाने वाले मुसलमानी अत्याचारों का विरोध किया। हिन्दी में स्काट की शैली में उपन्यास लिखने वालों में किशोरीलाल गोस्वामी का सर्वप्रथम स्थान है।

प्रसिद्ध कवि और गद्य लेखक पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी हिन्दी को दो उपन्यास दिए हैं—'ठेठ हिन्दी का ठाट' और 'अधखिला फूल'। इनमें औपन्यासिक कौशल का अभाव है। ये दोनों पुस्तकें ठेठ हिन्दी के नमूने के रूप में लिखी गई हैं। लज्जाराम मेहता के उपन्यासों में अपेक्षाकृत सांस्कृतिक पक्ष और चरित्र-चित्रण की प्रवृत्ति अधिक है। इनके उपन्यासों में पुरानी हिन्दू-मर्यादा,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दू-धर्म और हिन्दू-परिवारों की व्यवस्था की महत्ता और समीचीनता स्पष्ट हुई है। इनके प्रमुख उपन्यास हैं—'धूर्त रसिकलाल', 'हिन्दू गृहस्थ', 'आदर्श दम्पत्ति', 'बिगड़े का सुधार' और 'आदर्श हिन्दू'।

प्रेमचन्द-युग

प्रेमचन्द-पूर्व के उपन्यासों के विवेचन से यह बात साफ हो गई है कि उन उपन्यासों में सामाजिक मंगल कामना की भावना आ चुकी थी। भारतेन्दु-युग के साहित्यकारों की प्रवृत्ति समाज के दोषों को ढूँढ़-ढूँढ़कर व्यक्त कर देने की थी। वस्तुतः समाज का कल्याण इन दोषों के यथातथ्य चित्रण मात्र से ही नहीं हो सकता था, इन्हें दूर करने का सरल और सुगम उपाय प्रस्तुत करना लेखक का परमावश्यक कर्त्तव्य था, जिसे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने आकर पूरा किया। द्विवेदी-युग सुधार एवं परिष्कार का युग था। पहली बार यह स्वीकार किया गया कि केवल दोषों को वास्तविक रूप में प्रस्तुत कर देने से समाज का कोई कल्याण न होगा और न ही किसी साहित्यिक विधा विशेष का विकास हो पायेगा। द्विवेदी जी के इन सुधारवादी आन्दोलनों से हिन्दी-साहित्य का कोई भी लेखक अछूता न रह सका। प्रेमचन्द भी अपने को इससे अलग न रख पाये। इस सुधारवादी आन्दोलन को आगे बढ़ाने और सफल कराने में प्रेमचन्द का महत्वपूर्ण हाथ रहा है, साथ ही उन्होंने एक विशेष वर्ग का निर्माण भी किया। प्रेसचन्द ने हिन्दी-पाठकों को चन्द्रकान्ता सन्तति, तिलस्मी, ऐयारी आदि उपन्यासों के मोह-जाल से बाहर निकाला। यह प्रेमचन्द ही थे, जो इस कार्य में सफल हो पाये; अन्यथा दूसरा लेखक नवीन पद्धति पर उपन्यासों की रचना का साहस भी न कर पाता। प्रेमचन्द का आगमन उपन्यास-साहित्य में उस समय हुआ, जब उसके विकास की सारी सम्भावनाएँ क्षीण हो चुकी थीं।

कहानी

उपन्यास की भाँति ही हिन्दी कहानियों का अस्तित्व भी उपनिषदों तक खोजा जा सकता है। पर उपनिषदों की रूपक-कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों तथा बौद्ध-साहित्य की जातक-कथाओं का उद्देश्य किसी गम्भीर तत्त्व की आलोचना अथवा नीति और धर्म की शिक्षा था, न कि आज की तरह मनोरंजन। संस्कृत-साहित्य में भी 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी' और 'दशकुमार चरित' जैसी कुछ गिनी-चुनी रचनाओं को छोड़कर कथा-कहानियों का अभाव ही था। विक्रमादित्य, भरथरी, मंजु और राजा भोज की कथाओं को सुनने-सुनाने की जन-रुचि को देख कर लगता है कि साहित्य में इस विधा का भले ही अभाव रहा हो, पर जन-साधारण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में इसका अत्यधिक प्रचार-प्रसार रहा होगा। 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी' तथा 'भोज प्रबन्ध' इत्यादि कथा-संग्रह उन्हीं असंख्य कहानियों के कुछ अवशेष मात्र बच गए हैं।

भारत में मुस्लिम आधिपत्य के साथ-साथ १३वीं शताब्दी से कथा-साहित्य ने एक नया मोड़ लिया। मुसलमान भारत के हर अंचल में छा गए। वे अपनी संस्कृति के साथ-साथ कथा-कहानियों की एक समृद्ध परम्परा भी ले आए। भारत में पुराणों की कथा-परम्परा सजीव ही थी और इस नवीन परम्परा के समन्वय से कथा-कहानी का एक बिलकुल नवीन रूप सामने आया। इंशाअल्ला खाँ का 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी' इसके उदाहरण हैं। मुद्रण-यन्त्र के प्रचार-प्रसार से १९वीं शताब्दी के मध्य तक प्रकाश में आयी 'तोता मैना', 'सारंग सदावृक्ष', 'छबीली भठियारिन', 'गुल बकावली', 'किस्सए चार यार' आदि कहानियाँ इंशा अल्ला खाँ की परम्परा की ही प्रतिनिधि थीं। इन कहानियों का लक्ष्य साधारण प्रेमियों और नायक-नायिकाओं के लौकिक प्रेम के प्रदर्शन द्वारा वासनाजनित भोग-विलास को मूर्त्त करना था। इन कहानियों में अनावश्यक, अस्वाभाविक और अति-मानुषिक प्रसंगों की भरमार रहती थी।

आधुनिक कहानियों का सूत्र उपनिषद्, संस्कृत तथा मुस्लिमकालीन साहित्य में नहीं है, वस्तुतः आधुनिक हिन्दी कहानियों का प्रारम्भ २०वीं शती से होता है। अंग्रेजी शासन और उसकी शिक्षा-पद्धति तथा ईसाई मिशनरियों के प्रचार-प्रसार से भारतीय आदर्श बिलकुल बदल गया। वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ मानव की समस्याओं में भी एक प्रमुख अन्तर आया। बीसवीं शताब्दी तक आते-आते जनता की रुचि, विचार, भावना, आदर्श और दृष्टिकोण प्राचीन काल से एकदम भिन्न हो गया, इतना भिन्न हो गया कि अब हम प्राचीन कहानी को कहानी मानने के लिए तैयार नहीं। राजकुमारों और राजकुमारियों की प्रेमकथाएँ, राजा-रानियों की आश्चर्यजनक बातें, विक्रमादित्य के न्याय को कहानियाँ, राजा भोज का विद्या-व्यसन और दान की कथाएँ, कर्ण और दधीचि का दान, अर्जुन और भीम की वीरता, भूतप्रेत, जिन्न-राक्षस आदि के कारनामे, उड़न खटोला, उड़ने वाला घोड़ा इत्यादि अभौतिक अथवा अतिभौतिक, अप्राकृत अथवा अतिप्राकृत, अमानुषिक सत्ताएँ हमें कपोल-कल्पित जान पड़ने लगीं। फल यह हुआ कि बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से कहानी की एक बिलकुल नई विधा चल निकली, जिसे 'आधुनिक कहानी' कहते हैं।[1]

---

१. डॉ० श्रीकृष्ण लाल : हिन्दी कहानियाँ, पृ० १५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रयाग से निकलने वाली प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के पहले अंक (१९०० ई०) से आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म होता है। हिन्दी की आधुनिक कहानी की परम्परा के प्रणेता श्री जयशंकर प्रसाद और मुंशी प्रेमचन्द के पूर्व शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पटेस्ट' की कथा पर आधारित किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' (१९००), माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' (१९०१), मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' (१९०२), विद्यानाथ शर्मा की 'विद्या बहार', रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला की 'दुलाई वाली' (१९०७), मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' (१९०९), 'जम्बुकी न्याय' (१९०९) और 'निन्नानवे का फेर' (१९१०), वृन्दावनलाल वर्मा की कहानी 'राखीबन्द भाई' (१९०९), गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पण्डित और पिण्डतानी, (१९१०) ही प्रकाश में आ पाई थीं।

हिन्दी की पहली कहानी कौन है? इस विषय में थोड़ा मतभेद है। आचार्य शुक्ल के अनुसार किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' हिन्दी की पहली कहानी है और उनकी स्वयं की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' हिन्दी की दूसरी कहानी है। शुक्ल जी के अनुसार यदि 'इन्दुमती' किसी बंगला कहानी की छाया या प्रतिकृति नहीं है तो हिन्दी की पहली मौलिक कहानी वही है। चाहे 'इन्दुमती' पर किसी बंगला कहानी की छाप हो या न हो, किन्तु उस पर शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पटेस्ट' की छाप अवश्य है। नई खोजों के आधार पर यह सिद्ध हो गया है कि शुक्ल जी की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' के पहले ही सन् १९०१ में 'एक टोकरी भर मिट्टी' नामक कहानी 'छत्तीसगढ़ मित्र' नामक मासिक पत्रिका में छपी थी। 'इन्दुमती' में ऐतिहासिक वातावरण में रहस्य-रोमांच से आप्लावित एक आदर्श प्रेम का वर्णन है। 'एक टोकरी भर मिट्टी' एक विधवा की गरीबी और उससे जमींदार साहब की स्वार्थ-लिप्सा की टकराहट की छोटी-सी कहानी है। अन्ततः यह टकराहट जमींदार साहब का हृदय-परिवर्तन कर इन्हें पश्चात्ताप करने के लिए विवश कर देती है। उस कहानी का मूलाधार आर्थिक विषमता है और यह यथार्थवादी सीमा को छूती भी है। पहली कहानी के सन्दर्भ में बंग महिला की कहानी 'दुलाई वाली' की भी चर्चा की जाती है। यह अपने रूपाकार में आधुनिक तो है, परन्तु उसकी आत्मा यथार्थ के ऊपरी स्तर को ही छूती है। यह रोजमर्रा के जीवन की एक बहुत साधारण-सी मनोरंजक घटना को प्रस्तुत, करती है, जिससे न तो समाज के लिए कोई आदर्श उपस्थित होता है और न ही उसमें यथार्थ की अभिव्यक्ति है। 'कानों में कँगना' काव्यात्मक स्फीति के माध्यम से चरित्र-सुधार के बिन्दु तक पहुँचती है। इसलिए आधुनिक कहानी-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कला की दृष्टि से 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाना चाहिए।

निबन्ध

हिन्दी की जननी तथा भारत की भाषा के स्थान पर दीर्घकाल तक की शासिका संस्कृत में निबन्ध जैसी रचना का अभाव तो नहीं है, पर बाहुल्य भी नहीं है। वस्तुतः संस्कृत और प्राकृत में गद्य रचनाओं का अभाव-सा है। जो रचनाएँ उपलब्ध भी हैं, उनमें भी अनेक रचनाओं में कई विषयों पर विचार किया गया है। "केवल एक ही अथवा विषय के किसी अंग विशेष के पक्ष को लेकर जो छोटे-छोटे ग्रन्थ रचे गए, उनको हम निबन्धों के पूर्वज कह सकते हैं। महाप्रभु बल्लभाचार्य का 'शृंगाररस मण्डन' अथवा गंग कवि का 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' इसी कोटि के ग्रन्थ कहे जायेंगे।"[1]

निबन्धों का सुचारु रूप से विकास हमें भारतेन्दु-काल से ही मिलता है, जब मुद्रण-यन्त्रों के आविष्कार के कारण समाचारपत्रों तथा पत्र-पत्रिकाओं का निकलना प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य साहित्य में निबन्धों के विकास का इतिहास भी यही बताता है कि वहाँ भी समाचारपत्रों की सुविधा के साथ ही निबन्ध-विधा पुष्पित और पल्लवित हुई।

भारतेन्दु-युग

नाटकों की भाँति निबन्धों का प्रारम्भ भी भारतेन्दु-युग में ही हुआ। आधुनिक इतिहास-लेखक और आलोचक यह निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि भारतेन्दु-युग का साहित्यिक प्रदेय यदि कहीं अधिक मूल्यवान है तो निबन्धों के ही क्षेत्र में। भारतेन्दुकालीन पत्र-पत्रिकाओं का—विशेष कर 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'ब्राह्मण', 'सार-सुधानिधि' आदि का—निबन्ध के विकास में विशेष योगदान रहा है। सही बात तो यह है कि छोटे-छोटे लेख या निबन्ध समाचारपत्रों के एक आवश्यक अंग हो जाते हैं। निबन्ध साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास में हम प्रायः पत्रकारों को ही अग्रगण्य पाते हैं, जैसे 'हिन्दी प्रदीप' के पं० बालकृष्ण भट्ट (जन्म सं० १९०१), 'कविवचन सुधा' और 'आनन्द कादम्बिनी' के पं० बदरीनारायण चौधरी (जन्म सं० १९१२), 'ब्राह्मण' के पं० प्रतापनारायण मिश्र (जन्म सं० १९१३), कालाकाँकर से निकलने वाले 'हिन्दुस्तान' के श्री बालमुकुन्द गुप्त

---

१. बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप, पृ० २२३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(जन्म सं० १९१२), 'सुदर्शन' के पं० माधव प्रसाद मिश्र (जन्म सं० १९२७), 'सरस्वती' के पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी (जन्म सं० १९१७) सम्पादक ही थे।[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हिन्दी के पहले निबन्धकार हैं, जिन्होंने अपने निबन्धों द्वारा समाज में व्याप्त आडम्बर, पाखण्ड और अन्धविश्वास का घोर विरोध किया। उन्हें यह मालूम था कि इन सामाजिक कुरीतियों के त्यागे बिना देश प्रगति नहीं कर सकता। उनकी शैली नाटकीय थी, जिसे वे हास्य-व्यंग्य-व्यंजक विशेषणों, विलक्षण आरोपों, अतिशयोक्तियों से चमत्कारपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक बनाते थे। इनके सांस्कृतिक और यात्रा-वर्णनों पर लिखे गए निबन्ध अत्यन्त सजीव हैं। इनके निबन्ध विचारात्मक और व्यंग्यात्मक शैली के हैं।

भारतेन्दु के सहयात्री होकर भी **बालकृष्ण भट्ट** ने निबन्ध के क्षेत्र में अपना स्वतन्त्र स्थान बनाया। भट्ट जी परम्परा-निर्वाह के कट्टर विरोधी थे तथा परिवर्तन और प्रगति के समर्थक। इनके निबन्धों के विषय सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक हैं। इन्होंने विश्लेषणात्मक, व्यंग्यात्मक तथा भावात्मक शैलियों का प्रयोग किया। इतने विविध विषयों पर इतने विविध ढंग से हिन्दी में निबन्ध लिखने वाले लेखक कम हैं। उनकी शैली व्यक्तिव्यंजक है। विषय तथा प्रतिपादन और भाषा सभी पर इनके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है। इनके प्रमुख निबन्ध हैं 'माँगवो भलो न बाप से जो विधि राखे टेक', 'रोटी तो किसी भाँति कमा खायँ', 'मुछन्दर' या 'कौतुक', 'बातचीत', 'दीन', 'आँख', 'खटका', 'जबान' आदि।

प्रतापनारायण मिश्र भट्ट जी के सहयोगी थे। ये स्वभाव से ही विनोदी और स्वच्छन्द स्वभाव के विचारक थे। इनके निबन्ध इन्हीं द्वारा सम्पादित 'ब्राह्मण' में प्रायः प्रकाशित होते थे। इनके स्वभाव का फक्कड़पन इनके निबन्धों में मूर्त्त हो उठा है। भाषा के नियमों एवं निबन्ध के शीर्षक से बँध पाना उनकी स्वच्छन्द प्रकृति के प्रतिकूल था। इनका अभीष्ट मार्मिकता और व्यंग्यात्मकता के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करने में था। इसीलिए इनकी शैली में आत्मीयता और बाँकपन है। 'दाँत', 'भौं', 'धोखा', 'बालक', 'पंच परमेश्वर' आदि निबन्ध के शीर्षक उनकी मनमौजी प्रकृति के प्रतीक हैं। निबन्ध नवनीत, प्रताप पीयूष तथा प्रताप समुच्चय नाम से मिश्र जी के तीन निबन्ध-संग्रह मिलते हैं।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' तथा उनके अन्य सहयोगियों ने जो निबन्ध लिखे, वे अत्यन्त साधारण कोटि के निबन्ध हैं।

---

१. बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप, पृ० २२४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

द्विवेदी-युग

इस युग के प्रमुख निबन्धकार हैं महावीर प्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, पं० माधवप्रसाद मिश्र, श्यामसुन्दरदास, अध्यापक पूर्णसिंह, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मिश्रबन्धु और पद्मसिंह शर्मा।

बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी में आने के पहले उर्दू के लेखक थे। उनकी प्रतिभा का प्रखर रूप सन् १८९९ में सामने आया, जब वे 'भारत मित्र' के सम्पादक बने। १९०७ में उनका देहान्त हो गया। लेकिन मात्र इन्हीं आठ वर्षों में उन्होंने हिन्दी-पत्रकारिता और निबन्ध को अत्यन्त समृद्धवान बना दिया। उनकी मनमौजी प्रकृति में भारतेन्दु-युग की तत्परता, साहित्यिक सक्रियता और जिन्दा-दिली तथा द्विवेदीयुगीन शालीनता, कर्त्तव्य-परायणता और राष्ट्रीय दायित्व-बोध का अद्भुत सम्मिश्रण हो गया था। 'शिवशम्भु का चिट्ठा' के माध्यम से लॉर्ड कर्जन कालीन भारतीय राजनीति और आर्थिक दुर्व्यवस्थाओं को जिस कलात्मकता और व्यंग्यपूर्ण ढंग से उन्होंने हिन्दी-पाठकों के समक्ष रखा, वह एक तरफ उनकी निर्भीकता और साहस का साक्षी है तो दूसरी तरफ उनकी भाषा की व्यंजना शक्ति और प्रेषणीयता का भी। "आज हम किसी निबन्ध-रचना में लालित्य के जिन गुणों की तलाश करते हैं, वे सब यहाँ मौजूद हैं। रचयिता का व्यक्तित्व, कल्पना की ऊँची उड़ान, फ्लैशबैक द्वारा मूल वक्तव्य, वस्तु के इर्द-गिर्द छिपे हुए महत्वपूर्ण तथ्यों का प्रकाशन, प्रकृति और घटनाओं का व्यापक सन्दर्भ, स्वगत कथन तथा आत्मचिन्तन-प्रणाली का प्रयोग आदि सब उपकरण इन चिट्ठों में पाए जाते हैं. . .'शिवशम्भु का चिट्ठा' साहित्य-रस-समन्वित निबन्धों का पहला समूह है, जो बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में दिखाई पड़ता है।"[1] इनके अन्य निबन्ध 'आत्माराम' और 'अनिस्थिरता विवाद' भी इनकी व्यंग्य-विनोद, हास-परिहास और खण्डन-मण्डन की स्वतन्त्र शैली प्रत्यक्ष करते हैं।

गुप्त जी के निबन्ध विचार-सम्पन्न तो हैं, किन्तु उन्हें भावात्मक कोटि में रखना अधिक समीचीन होगा। एक तरफ वे अपने निबन्धों के माध्यम से पाठक की चिन्तन प्रक्रिया को जागृत करते हैं तो दूसरी तरफ उसके मन में रागात्मक बोध भी जगाते हैं। उनमें भाषा की गहरी पहचान थी। व्याकरण-व्यवस्था के प्रति वे सजग रहे और व्यंजना-शक्ति को विकसित करने के लिए लोकोक्तियों, मुहावरों को अपना अस्त्र बनाया।

---

१. सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शती, पृ० ३२५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बाबू श्यामसुन्दर दास, मिश्रबन्धु, बाबू गुलाबराय, पद्मसिंह शर्मा के अधिकतर निबन्ध सैद्धान्तिक और आलोचनात्मक हैं, जो ललित निबन्धों की कोटि में नहीं आते। गुलाबराय के विनोद शैली में लिखे संस्मरणात्मक निबन्ध तथा पद्मसिंह शर्मा की फड़कती शैली में लिखे निबन्ध गम्भीर विवेचनात्मक लेख के रूप में उल्लेख्य हैं।

माधवप्रसाद मिश्र वस्तुतः भारतेन्दु और बालमुकुन्द गुप्त के समकालीन थे। लेकिन उनकी भावनापूर्ण प्रवृत्ति उन्हें परवर्ती निबन्धकारों के निकटतम ला खड़ा करती है। भावना का आवेश माधुर्य और श्रृंखलाबद्ध भावों का मनोहारी चित्रण उनकी शैली की प्रधान विशेषता है। त्योहारों, तीर्थस्थानों पर लिखे निबन्ध भारतेन्दु के समकालीन लेखकों से अधिक विद्वत्तापूर्ण और मार्मिक हैं। उनकी आस्था भारत की प्राचीन संस्कृति, धर्म और दर्शन तथा साहित्य के प्रति थी। सुधार और प्रान्त के नाम पर विलायती पण्डितों का अनुसरण और उनके विचारों की ही निरन्तर माला जपते रहना वे भारतीय विद्वानों के मुख से सुनना नहीं पसन्द करते थे। जब किसी प्राचीन उपलब्धि की निन्दा की गई, तभी उन्होंने उसकी सुरक्षा में लेखनी उठाई। समकालीन राष्ट्रीय प्रश्नों के प्रति भी वे सचेत थे। अपने राष्ट्र के उत्थान और जन-साधारण के आर्थिक तथा नैतिक विकास की उनकी दिली इच्छा थी।

उन्होंने मनोविकारों और गार्हस्थिक समस्याओं से भी सम्बन्धित कुछ निबन्ध लिखे। उनकी शैली ओज और प्रवाह से पूर्ण है। 'श्री पंचमी', 'सब मिट्टी हो गया', 'पराधीन', 'अतिदीन', 'स्वाधीन' आदि इनके कुछ श्रेष्ठ निबन्ध हैं।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने यद्यपि बहुत कम निबन्ध लिखे हैं, पर वे ही अपने युग के एकमात्र ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने गम्भीर पाण्डित्य और सरल व्यंग-विनोद के रसात्मक सामंजस्य द्वारा उत्कृष्ट ललित निबन्धों की रचना की। उन्हें प्राचीन इतिहास, संस्कृति और भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त था, जिसका समष्टि प्रतिफल उनके निबन्धों में मिलता है। उनके इने-गिने निबन्ध ही उन्हें निबन्ध लेखकों की कोटि में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिला देते हैं। 'मारेसि मोंहि कुठाऊँ', 'कछुआ धर्म', 'संगीत' आदि निबन्धों द्वारा सुष्ठु और परिमार्जित भाषा में समाज की रूढ़िवादिता आदि पर तीखे, लेकिन शिष्ट व्यंग्य प्रहार किए गए हैं।

सरदार पूर्णसिंह माधवप्रसाद मिश्र की तरह भावनात्मक निबन्धों की रचना में लगे रहे। इनका दृष्टिकोण मानवतावादी था। ये सभ्य आचरण, प्रेम और श्रम का ही महत्व स्वीकार करते थे। इसी का उपदेश घूम-घूम कर आप देते थे।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आपके लेख संख्या में तो कम ही मिलते हैं; लेकिन कलात्मक दृष्टि से उनका महत्व कम नहीं आँका जा सकता। 'आचरण' और 'सच्ची वीरता' इसके उदाहरण हैं।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने आलोचनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त कुछ वैयक्तिक निबन्ध भी लिखे हैं। 'कुछ तथा और कुछ' इसी प्रकार का निबन्ध-संग्रह है। आपकी शैली पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव है।

उपलब्धि और अभाव

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि श्री जयशंकर प्रसाद के आगमन के पूर्व हिन्दी गद्य-साहित्य अपनी शैशवावस्था में ही था। भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके मण्डल या युगीन लेखकों ने गद्य-साहित्य की विविध विधाओं को सशक्त एवं समर्थ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा अवश्य की; पर उनकी भी एक सीमा ही रही। अतः इनकी उपलब्धियों को बिलकुल नकारा भी नहीं जा सकता। यहाँ मेरा यह प्रयास है कि प्रसाद-पूर्व हिन्दी गद्य-साहित्य की उपलब्धि और अभाव का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जाय; जिससे उस विधा के विकास में जयशंकर प्रसाद की उपलब्धि का सही आकलन किया जा सके।

नाटक

संस्कृत और प्राकृत की समृद्ध पैतृक सम्पत्ति प्राप्त होने के बावजूद भारतेन्दु के आगमन के पूर्व हिन्दी-साहित्य में नाटकों का अभाव-सा है। उस समय तक रचे गए नाटकों की संख्या नगण्य तो थी ही, साथ ही वार्त्तालाप, प्रवेश और प्रस्थान के अतिरिक्त उनमें नाटकों के प्रधान लक्षण भी नहीं दिखलाई पड़ते। कुछ विद्वानों के अनुसार इस अभाव का कारण राष्ट्रीय रंगमंच की सुविधा प्राप्त न होना था तथा कुछ अन्य विद्वान् गद्य-साहित्य के विकासशील न होने को इसका कारण मानते हैं। तीसरा मत मुसलमानी शासन को इसके विकास में अवरोध का कारण मानता है। उन लोगों के अनुसार मुसलमानी संस्कृति में अभिनय को पाप माना गया था। पर ये तीनों कारण गौण हैं, उन्हें किसी अंश तक ही स्वीकार किया जा सकता है। कारण कि मुगल-शासन में हिन्दी-साहित्य समृद्धि के लिए अनेक प्रयत्न हुए हैं। औरंगजेब को छोड़ कर अन्य शासक इतनी संकीर्ण विचार-धारा के नहीं थे। हिन्दी का पहला नाटक 'इन्दर सभा' एक मुसलमान शासक की अभिभावकता में ही एक मुसलमान लेखक (अमानत) द्वारा लिखा गया था। वस्तुतः नाट्य-साहित्य की सृष्टि के लिए जीवन के प्रति आस्था और जातीय उत्साह अपेक्षित होता है। उन्नीसवीं शताब्दी तक एक लम्बी दासता, अशान्ति और उत्पीड़न ने इस उत्साह का शमन कर दिया था। भारतीय जनता को उत्थान

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की ओर अग्रसरित करने के लिए ऐसी चेतना की आवश्यकता थी, जो जीवन के प्रति आस्था जागृत करे, उसकी वास्तविकताओं की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करे। यह कार्य किया अंग्रेजों ने। अंग्रेजों और अंग्रेजी-साहित्य ने नाट्य-रचना को प्रोत्साहन दिया, उसे एक नवीन दृष्टि दी तथा जीवन के नए मूल्यों की स्थापना में योग दिया।

यदि नाटकों की रीति या उसके लक्षणों पर इस युग की नाट्य-कृतियों को परखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ये नाटक कही जाने वाली रचनाएँ या तो अनुवाद हैं या उनमें रामायण-महाभारत की कथाओं का पद्यात्मक वर्णन है। अतः नाट्य-लक्षणों से लगभग विहीन-सी इन रचनाओं को नाटक कहना उचित नहीं प्रतीत होता। भाषा कविकुल मुकुटमणि देवकवि का 'देव माया प्रपंच' नाटक और श्री महाराजा काशीराज की आज्ञा से बना हुआ प्रभावती नाटक तथा श्री महाराज विश्वनाथ सिंह रीवाँ का 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक यद्यपि नाटक रीति से वने हैं, किन्तु नाटकीय नियमों का प्रतिपालन इनमें भी नहीं है, ये छन्द-प्रधान ग्रन्थ हैं।[१]

इसके पश्चात् हिन्दी-आकाश में भारतेन्दु का उदय होता है। भारतेन्दु जी ने हिन्दी को अनेक नाटक दिए। इनके नाटकों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं: पहला—सामाजिक और राजनीतिक; जैसे 'भारत दुर्दशा', 'नील-देवी' आदि। दूसरा—पौराणिक नाटक; जैसे 'सती प्रताप'; तीसरा—वे नाटक, जिनका मूलाधार प्रेम-तन्त्र है; जैसे 'चन्द्रावली'। भारतेन्दु की तीन धाराओं से नाटक की तीन विभिन्न धाराएँ प्रवाहित हुईं—सामाजिक और राज-नीतिक, पौराणिक और प्रेम सम्बन्धी। प्रथम दो संख्या में अधिक होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्व नहीं रखतीं। भारतेन्दु का जीवन प्रेममय था। उनका प्रेम दो रूपों में प्रस्फुटित हुआ है—ईश्वरोन्मुख और देश-प्रेम। 'चन्द्रावली' में सत्य, प्रेम तथा 'भारत दुर्दशा' और 'नीलदेवी' आदि में देश-प्रेम की अभिव्यक्ति मिलती है। भारतेन्दु के नाटकों में कुछ यथार्थवादी, कुछ स्वच्छन्दतावादी, कुछ आदर्शवादी, कुछ राष्ट्रवाद के प्रचारक और कुछ समाज-सुधारक प्रहसन के रूप मिलते हैं। परवर्ती लेखकों ने इन सभी धाराओं को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया।

भारतेन्दु के अवसान के बाद और प्रसाद के आगमन के पूर्व हिन्दी-साहित्य में मौलिक और उत्कृष्ट कोटि की नाट्य-रचनाओं का अभाव-सा है। इसीलिए कुछ विद्वानों ने इसे संक्रान्ति काल की संज्ञा दी है। भारतेन्दु-काल में जिस विधा

---

१. सं० ब्रजरत्नदास : भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृ० ७५२, प्रथम संस्करण।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का इतना प्रचार-प्रसार था, वही एकाएक साहित्य-जगत् से लुप्त हो गई। इसका विकास नहीं हो पाया। इसका और चाहे जो कारण रहा हो, पर एक कारण तो यह है कि इस काल में भारतेन्दु या जयशंकर प्रसाद जैसी मौलिक प्रतिभाओं का जन्म नहीं हुआ। अधिकांश लेखक या तो अनुवाद में लगे रहे या कुछ रचनाएँ की भी तो हल्के-फुल्के स्तर की। इस काल में जो कुछ मौलिक नाटक लिखे गए, उनमें कुछ तो साहित्यिक कहे जा सकते हैं; पर कुछ विशेष रूप से पारसी नाटक कम्पनियों के साथ समझौते की दृष्टि से लिखे गए थे। साहित्यिक नाटकों में मिश्र-बन्धुओं का 'नेत्रोन्मीलन'; राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का 'चन्द्रकला', 'भानु-कुमार'; मैथिलीशरण गुप्त का 'चन्द्रहास'; पण्डित जगन्नाथ चतुर्वेदी का 'मधुर मिलन'; पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' आदि प्रमुख हैं।

उपन्यास

१९वीं शताब्दी के मध्य तक भारतीय जन-मानस जन-जागरण की चेतना से आन्दोलित हो उठा था। भारतीय अपनी पहली स्वतन्त्रता की लड़ाई हार चुके थे और अंग्रेजी शिक्षा की अनिवार्यता ने लेखकों का एक ऐसा वर्ग तैयार कर दिया था, जो केवल पाश्चात्य-साहित्य या अंग्रेजी-साहित्य से प्रेरित ही नहीं था, बल्कि उनका गहन अध्ययन भी कर चुका था। लेखकों के इस वर्ग ने अपनी रचनाओं में पाश्चात्य प्रयोगों को प्रस्तुत करने का साहस किया। उपन्यास विधा भी इससे अछूती नहीं रह पायी। हिन्दी से पहले बंगला भाषा इस आँधी को झेल चुकी थी। बंगला में अनेक अच्छे उपन्यासों की रचना हो चुकी थी। इसी की देखादेखी हिन्दी में भी उपन्यासों की रचना प्रारम्भ हुई। अनेक बंगला उपन्यासों का अनुवाद भी किया गया। प्रेमचन्द के आगमन तक ये प्रयोग जारी रहे। इनमें आचार, धर्म, नीति और समाज-सुधार की भावना से प्रेरित उपदेशात्मक उपन्यास या केवल मनोरंजन के लिए अमानवीय, अति प्राकृतिक, आश्चर्यचकित घटनाओं से युक्त तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास प्रमुख हैं। इस शताब्दी के प्रारम्भिक पन्द्रह वर्षों में अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक और प्रेमाख्यानक उपन्यासों की रचनाएँ हुईं। ऐतिहासिक उपन्यास केवल नाम के ही ऐतिहासिक होते थे, न तो इनमें ऐतिहासिक वातावरण रहता था और न ही उस काल की संस्कृति और परिवेश का दृश्य। इन पर तिलस्मी उपन्यासों का गहरा प्रभुत्व था। इसलिए इस काल में रचे गए ऐतिहासिक उपन्यास निम्न कोटि के ही हैं।

किशोरीलाल गोस्वामी ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है, पर उनके उपन्यास इतिहास की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। उनमें अनेक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

काल-दोष स्पष्ट सामने आते हैं, जो उनके उथले इतिहास-ज्ञान का परिचायक हैं। प्रेमाख्यानक उपन्यासों में भी काव्यरीति की श्रृंगार-भावना को अपनाकर नायिकाओं के हाव-भावों का रीतिबद्ध वर्णन करने की प्रवृत्ति अधिक है, जीवन के मार्मिक प्रसंगों के चित्रण की कम। सामाजिक कुरीतियों के दृश्य उपस्थित करके स्त्री-पुरुष सभी को लम्बे उपदेश देने की प्रवृत्ति इतनी प्रचलित थी कि उसमें कलात्मकता का कहीं स्थान न था। उपन्यास-साहित्य के विकास-क्रम में उपर्युक्त रचनाएँ उल्लेख्य तो हैं, पर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बनने योग्य नहीं हैं। इनका साहित्यिक महत्त्व कम ही है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद के पूर्व प्रेमचन्द ही पहले उपन्यासकार हैं, जिन्होंने अपनी श्रेष्ठ कृतियों द्वारा हिन्दी-उपन्यास को वह गरिमा, प्रभुता और अर्थवत्ता प्रदान की, जो बंगला उपन्यासों को बंकिम, शरत् और रवीन्द्र ने तथा महान् पाश्चात्य लेखकों ने यूरोपीय उपन्यासों को प्रदान की थी। इसलिए प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी-उपन्यासों का उल्लेख केवल इतिवृत्ति की पूर्ति और परम्परा के विकास को जानने के लिए ही आवश्यक है।

कहानी

प्रसाद-पूर्व कहानियों में जहाँ मौलिकता का अभाव है, वहीं कलात्मक दृष्टि से भी इन्हें श्रेष्ठ रचनाएँ नहीं कहा जा सकता। इन कहानियों में आधुनिक कहानी के तत्वों का तथा इनके लेखकों में प्रथम कोटि के कहानीकार की उस प्रतिभा का अभाव है, जिससे हिन्दी में नई कहानी की परम्परा का सूत्रपात और विकास हो पाता। इसलिए कहानी-क्षेत्र के इन मौलिक या अनुकरणमूलक प्रयोगों को यदि प्रारम्भिक मान लें तो हिन्दी में आधुनिक कहानी का सूत्रपात और विकास करने का श्रेय जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द को ही है।

प्रसाद और प्रेमचन्द ने जिस समय कहानी लिखना प्रारम्भ किया, उस समय अनेक बंगला कहानियों का हिन्दी में धड़ल्ले से अनुवाद हो रहा था और ये कहानियाँ सर्वत्र चाव से पढ़ी जाती थीं। वास्तव में हिन्दी-कहानी प्रेमचन्द के पूर्व तक उसी रूप में दिखाई पड़ती है, जिस रूप में पश्चिम की कहानियाँ 'चेखव' के आने तक थीं।

निबन्ध

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "भारतेन्दु जी के समय से ही निबन्धों की परम्परा हमारी भाषा में चल पड़ी थी, जो उनके सहयोगी लेखकों में कुछ दिनों तक जारी रही। पर जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि स्थायी विषयों पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निवन्ध लिखने की परम्परा जल्दी बन्द हो गई।. . .इस द्वितीय उत्थान के भीतर उत्तरोत्तर उच्च कोटि के स्थायी गद्य-साहित्य का निर्माण जैसा होना चाहिए था, न हुआ।"[१]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह मत बहुत हद तक सही भी है। लेकिन यदि भारतेन्दुकालीन परिस्थितियों पर विचार किया जाय तो यह बात साफ हो जाएगी कि भारतेन्दु और भारतेन्दु-मण्डल के लेखकों को जिन दायित्वों का भार उठाना पड़ा था, उस परिस्थिति में इससे अधिक श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत नहीं की जा सकती थीं। वे दायित्व बड़े थे। विशेषकर उन प्रारम्भिक परिस्थितियों में और भी बड़ा था। भारतेन्दु के समक्ष समस्या थी भाषा गढ़ने की, भाषा में शक्ति-सामर्थ्य पैदा करने की, जो नई राष्ट्रीय जागृति का भार वहन करने में समर्थ हो। साथ ही उन्हें इस नये साहित्य रूप को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के साधनों की खोज भी करना था। पत्र-पत्रिकाओं के खरीददार और प्रकाशकों का नितान्त अभाव था। भारतेन्दुकालीन लेखकों को अपने लिए पाठकों की खोज में भी भटकना पड़ता था। उन्हें शिक्षा-प्रचार और सामाजिक-सुधार की आवश्यकता के प्रति जनता को सचेत भी बनाना पड़ा; हमारे राष्ट्रीय प्रेम को प्रभावित करने वाली उन घटनाओं की गतिविधि से भी सर्व-साधारण की राजनीतिक चेतना को जागृत करना पड़ा। इतने बड़े दायित्वों का भार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ही उठाया जा सकता था। नई चेतना को सर्वसाधारण को सुलभ बनाने के लिए निबन्ध ही सर्वाधिक उपादेय माध्यम सिद्ध हुआ। इसलिए भारतेन्दु-काल में यदि सबसे अधिक किसी साहित्य रूप की रचना में लेखक प्रवृत्त हुए तो वह निबन्ध-साहित्य ही है।

भारतेन्दु और भारतेन्दु के सहयोगी लेखकों द्वारा लिखे गए निबन्धों में विस्तृत सामाजिक चेतना तो है ही, साथ ही पाठकों को अपनी तरफ आकर्षित करने वाली सहजता भी मिलती है। इनमें न तो गहन चिन्तन की बोझिलता है और न गम्भीर पाण्डित्य-प्रदर्शन। स्थायी विषयों के साथ समाज की जीवन और रीति-चर्या, पर्व-त्योहार आदि उनके लेखों के विषय हैं। होली, विजयादशमी, दीपावली, रामलीला इत्यादि पर लिखे उनके निबन्धों में जीवन का पूरा-पूरा रंग रहता था।

भारतेन्दु के समकालीन निवन्धकारों में भारतेन्दु जी के मित्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, वदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', ज्वालाप्रसाद मिश्र,

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३४६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तोताराम, अम्बिकादत्त व्यास, राधाचरण गोस्वामी के नाम विशेष उल्लेख्य हैं। इन निबन्धकारों का प्रयास प्राथमिक था। इसलिए आधुनिक निबन्ध के सभी गुण उनमें बीज रूप में ही मिलते हैं। इनके निबन्धों में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक सुधार की भावना का बाहुल्य था। हास्य-व्यंग से परिपूर्ण उक्तियों द्वारा लेखक अपने लेखों को रोचक और प्रभावी बनाता था। सांस्कृतिक निबन्धों में प्राकृतिक विषयों के पर्व-त्योहार, जीवन-चरित, इतिहास और नीति सम्बन्धी निबन्ध प्रमुख थे।

स्वतन्त्र साहित्य रूप के तौर पर निबन्ध का जन्म तो भारतेन्दु-काल में ही हो चुका था और बहुत कुछ प्रतिष्ठित भी हो चुका था। लेकिन उसके स्वरूप का ठीक-ठीक बोध कराने की दिशा में द्विवेदी-युग कुछ अधिक सक्रिय नजर आता है। द्विवेदी-युग का हिन्दी निबन्ध और उसके माध्यम से हिन्दी-भाषा को समृद्ध बनाने में बहुत बड़ा योगदान है। वे निबन्धों के संगठन और शुद्धता पर अधिक जोर देते थे। इसके लिए उन्होंने स्वयं श्रम उठाया और व्याकरण के सिद्धान्त को लेखकों के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसके लिए इनकी कटु आलोचनाएँ भी हुईं।

द्विवेदी-युग तक आकर हमें निबन्ध की चारों कोटियों—विवरणात्मक, विचारात्मक, विवेचनात्मक और भावात्मक—के निबन्ध मिल जाते हैं। प्रथम दो प्रकार के निबन्ध परिमाण की दृष्टि से अधिक हैं, फिर भी उनका स्थायी साहित्यिक मूल्य बहुत कम है। अन्तिम दो प्रकार के निबन्ध कम लिखे गए हैं, फिर भी कुछ लेखकों ने स्थायी महत्व की रचनाएँ प्रदान की हैं। आचार्य शुक्ल ने भी इस कमी को स्वीकारा है। "किसी विषय में अपनी सबसे अधिक शक्ति देख उसे अपनाकर बैठने की प्रवृत्ति बहुत कम दिखाई दी। बहुत-से लेखकों का यह हाल रहा कि कभी अखबारनवीसी करते, कभी उपन्यास लिखते, कभी नाटक में दखल देते, कभी कविता की आलोचना करने लगते और कभी इतिहास और पुरातत्व की बातें लेकर सामने आते। ऐसी अवस्था में भाषा की पूर्ण शक्ति प्रदर्शित करने वाले गम्भीर लेखक कहाँ से तैयार होते।"[१]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी-जगत् में प्रसाद के आगमन के पूर्व हिन्दी-साहित्य अपने प्रारम्भिक रूप में ही था। उस समय उसे एक ऐसे युगद्रष्टा नेता की आवश्यकता थी, जो उसे सही मार्ग पर आगे बढ़ाए। प्रसाद ने इस आवश्यकता की पूर्ति में अपूर्व योगदान दिया। कवि होते हुए भी उन्होंने अनेक

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४६९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी और निबन्ध लिखें, जो हिन्दी-जगत् में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। साथ ही प्रसाद की ये रचनाएँ भावी लेखकों के लिए दीप-स्तम्भ हैं। यह और बात है कि प्रसाद-स्कूल अपनी अनेक विकटताओं के कारण प्रेमचन्द जैसा पनप नहीं सका, पर प्रसाद का प्रदेय हिन्दी-गद्य के लिए अविस्मरणीय है। नाटक और कहानी के क्षेत्र में उनका प्रदेय और भी मूल्यवान है। प्रसाद के पश्चात् तो नाटक-लेखकों का हिन्दी में अभाव है। उन्होंने अपने गहन अध्ययन और चिन्तन द्वारा हिन्दी-नाटक-साहित्य को पाश्चात्य-नाटकों के समकक्ष ला खड़ा किया। एक तरह से उन्होंने हिन्दी-नाटक रूपी बच्चे को अँगुली पकड़ कर चलना सिखाया, उसे किशोर बनाया। कहानी के क्षेत्र में भी प्रसाद का योगदान अविस्मरणीय है। इनके आगमन के पूर्व तक हिन्दी कहानी का स्वरूप ही स्थिर नहीं हो पाया था। 'ग्राम' इनकी तथा हिन्दी की पहली कहानी है, जो आधुनिक कहानी के कतिपय गुणों से युक्त है। प्रेमचन्द प्रसाद के बाद ही कहानी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए।

नाटक, कहानी के अतिरिक्त प्रसाद ने हिन्दी-साहित्य को तीन उपन्यास भी दिए। वैसे उपन्यास-क्षेत्र अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा प्रेमचन्द के करावलम्बन के फलस्वरूप अधिक समृद्ध था, फिर भी प्रसाद की तीन कृतियाँ हिन्दी-उपन्यास-साहित्य के तीन पथ की प्रदर्शक हैं। प्रसाद ने प्रेमचन्द से अलग हटकर, घिसी-पिटी लकीर को छोड़कर, उपन्यास-साहित्य को एक नवीन पथ प्रदान किया। संख्या में कम होने पर भी प्रसाद का उपन्यास-साहित्य कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'कंकाल' जैसी रचना का साहस प्रेमचन्द में नहीं देखने को मिलता। प्रसाद की अधूरी रचना 'इरावती' ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रारम्भिक कड़ी है। इसने ऐतिहासिक उपन्यासकारों को स्वस्थ पथ प्रदान किया। यह रचना यदि पूरी हो गई होती तो निश्चय ही ऐतिहासिक उपन्यास-क्षेत्र की यह अमूल्य निधि होती। 'तितली' पाश्चात्य-सभ्यता और भारतीय आदर्श का द्वन्द्व प्रदर्शित करती है। भारतीय आदर्श के समक्ष पाश्चात्य-सभ्यता घुटने टेक देती है। इस रचना के पीछे प्रसाद का लक्ष्य सम्भवतः पाश्चात्य-सभ्यता की चकाचौंध में भ्रमित भारतीय युवकों को प्रशस्त मार्ग दिखाना था। 'तितली' के रूप में उन्होंने भारतीय नारी की महनीयता प्रदर्शित की है।

निबन्ध-रचना के क्षेत्र में प्रसाद ने हिन्दी के समक्ष एक आदर्श रखा। 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में संगृहीत निबन्ध इनके गहन अध्ययन, प्रकाण्ड पाण्डित्य के परिचायक हैं। साहित्यिक समस्याओं को निबन्ध का विषय बनाने वाले प्रसाद पहले लेखक हैं। ⊙⊙

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

२ | प्रसाद के नाटक

प्रथम अध्याय में इस बात का संकेत किया जा चुका है कि भारतेन्दु के अवसान के पश्चात् और प्रसाद के आगमन के पूर्व हिन्दी-नाट्य-जगत् उपेक्षित-सा रहा। इस कालावधि में मौलिक कही जाने वाली नाट्य-रचनाओं का कितना अभाव है, इसका परिचय किशोरीलाल गोस्वामी के 'चौपट चपेट' में व्यक्त विचार से मिल जाता है:—"हिन्दी के अभाग्यवश जब से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द जी परलोक सिवारे, तब से साहित्य की बड़ी दुर्दशा हो रही है। गद्य तो जो है सो है ही...नाटक-विधा को तो कदाचित् बाबू साहिब अपने संग ले गए हैं। उनके पीछे दो-एक रूपक कि जिनसे घण्टा भर जी लगे, छोड़ के और आज तक कोई नाटक नही बने। जिससे हिन्दी भाषा की पुष्टि हो, यह अभाग्य नहीं तो क्या है?"

प्रसाद का आगमन

इस अभाव को दूर कर हिन्दी नाट्य-कला को एक प्रशस्त पथ और गौरव-पूर्ण स्थान दिलाने का श्रेय विशेषतः प्रसाद को है। "उन्होंने नाट्य-क्षेत्र में प्रवेश कर नाटक को नये चरित्र, नयी घटनाएँ, नया ऐतिहासिक देश-काल, नया आलाप-संलाप, संक्षेप में सम्पूर्ण नया समारम्भ दिया।"[१] डॉ० बच्चनसिंह के अनुसार भी "प्रसाद का आविर्भाव हिन्दी नाट्य-साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ता है। उनके पहले के नाटककारों ने वर्ण्य-वस्तु को भी न तो श्रम-पूर्वक उपलब्ध किया

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० ३९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और न उनकी पुनर्रचना की।...अपने रोमाण्टिक दृष्टिकोण के कारण प्रसाद ने हिन्दी नाटकों का नया विन्यास किया।"[1]

हिन्दी-नाटक-साहित्य के इतिहास में प्रसाद का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। प्रसाद का सांस्कृतिक एवं रोमाण्टिक दृष्टिकोण हिन्दी-नाटक की विशिष्ट उपलब्धि है। आर्य-संस्कृति के प्रति उनकी अटूट आस्था थी, फलतः भारतीय पौराणिक आख्यान तथा वैदिक वाङ्मय प्रारम्भ से अन्त तक, उनकी रचना का आधार रहा है। अतीत उनकी कर्मभूमि है, जिसके पुनरुत्थान में उन्होंने वर्तमान का समाधान ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने गहन अध्ययन और गूढ़ ज्ञान के आधार पर उसका विश्वसनीय चित्र उपस्थित किया। साथ ही उसे प्राणवत्ता भी प्रदान की। बाबू गुलाबराय के अनुसार भी रोमाण्टिक दृष्टिकोण का वाहक "वर्तमान से विमुख होने के कारण वह पुरातन की ओर जाएगा—या कल्पना लोक की ओर।...प्रसाद के सभी नाटकों का आधार सांस्कृतिक है। आर्य-संस्कृति में उन्हें गहन आस्था थी, इसीलिए उनके नाटकों में भारत के इतिहास का प्रायः वही परिच्छेद है (चन्द्रगुप्त-हर्ष), जिसमें उनकी संस्कृति अपने पूर्ण वैभव पर थी; ब्राह्मण और बौद्ध-संस्कृतियों के संघर्ष से जब उसका स्वरूप प्रखर हो उठा था।"[2]

प्रसाद अपने सभी नाटकों में संकुचित राष्ट्रीयता अथवा प्रान्तीयता के स्तर से बहुत ऊपर उठकर सम्पूर्ण आर्यावर्त के महत्व-गान का लक्ष्य लेकर आगे बढ़े। प्रसाद के इस सांस्कृतिक जागरण से अन्धकाराच्छन्न स्वर्णिम अतीत पुनर्प्रकाशित हो उठा है और उन्होंने इसके माध्यम से जीवन की सर्वव्यापी समस्याओं का समाधान खोज निकाला। "प्रसाद जी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य पर मुग्ध थे। स्वभाव से चिन्तनशील और कल्पना-प्रिय होने के कारण वे उसी युग में रहते थे। कोलाहल की अवनी तज कर जब वे भुलावे का आह्वान करते हुए विराम-स्थल की खोज करते होंगे, उस समय यह रंगीन अतीत उन्हें सचमुच बड़े वेग से आकर्षित करता होगा। इसलिए उनके नाटक में पुनरुत्थान की प्रवृत्ति बड़ी सजग रहती है। 'कामना' का रूपक इसका मुखर साक्षी है। वे विदेशी छाया से आच्छादित जीवन को फिर से उसी स्वर्ग की ओर प्रेरित करने की बात सोचा करते थे। उन्होंने देखा कि हमारा वर्तमान ही नहीं, भूत इतिहास भी विदेशी प्रभाव की छाया में मलिन हो गया है, अतः फिर से उसका सच्चा स्वरूप

---

१. डॉ० बच्चनसिंह : हिन्दी नाटक, पृ० ५०।
२. डॉ० गुलाबराय : प्रसाद की कला, पृ० ७८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने भारतीय ग्रन्थों के आधार पर ऐतिहासिक अन्वेषण किए। उनके पुरातत्व ज्ञान के आधार प्राचीन शिला-लेख, पाणिनि व्याकरण, पतंजलि योग, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कथासरित्सागर, राजतरंगिणी, पुराण, प्राचीन काव्य ग्रन्थ आदि ही हैं। प्रसाद की यह जिज्ञासा गहरी थी, उनको अतीत के लिए सिर्फ रोमाण्टिक मोह ही नहीं था—चन्द्रगुप्त मौर्य, कालिदास, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि के विषय में उनकी खोज अपना स्वतन्त्र महत्व रखती है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के बिखरे अवयवों को खोज कर उन्होंने अपनी भावुकता, चिन्ता और कल्पना द्वारा उसमें प्राण का संचार किया।"[१]

इसी को दृष्टि में रखकर डॉ० नगेन्द्र ने कहा:—"उनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना, उनके महान् कोमल चरित्र, उनके विराट् मधुर दृश्य और उनका काव्य-स्पर्श हिन्दी में अद्वितीय है।"[२] प्रसाद ने अभिनव रूप-विधान प्रस्तुत करके नाटकों में एक नये युग की शुरुआत की। "उन्होंने हिन्दी नाटकों में मौलिक क्रान्ति की। उनके नाटकों को पढ़कर लोग द्विजेन्द्रलाल राय और गिरीशचन्द्र घोष के नाटकों को भूल गए।"[३]

प्रसाद : नवीन नाट्य-शिल्प के प्रणेता

प्रसाद के हिन्दी-नाट्य-जगत् में अवतरण के पूर्व तक अंग्रेजी के नाटकों का पर्याप्त अध्ययन हो चुका था, जिसके प्रभाव को नकारना अत्यन्त कठिन है। एक तरफ नाट्य-रचनाकारों के समक्ष संस्कृत की पुरानी नाट्य-शैली थी और दूसरी तरफ पाश्चात्य शैली, जिसके प्रभाव से वे अपने को अछूता नहीं रख सकते थे। यह संकट प्रसाद के समक्ष भी था। उन्होंने इन दोनों के मध्य का मार्ग अपना कर एक नवीन नाट्य-शैली का निर्माण किया; जिसे न तो हम पूर्णतया भारतीय शास्त्रीय शैली कह सकते हैं और न अभिनववादी। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार "प्रसाद के नाटक शास्त्रीय नहीं हैं, वे एक नवीन नाट्य-शैली का प्रादुर्भव करते हैं, जिसे स्वच्छन्द नाट्य-शैली कहा जा सकता है।"[४] पर जब हम प्रसाद के नाटकों पर दृष्टि डालते हैं तो यह बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने संस्कृत-नाट्य-नियमों का आवश्यकतानुरूप ग्रहण किया है।

---

१. डॉ० गुलाबराय : प्रसाद जी की कला, पृ० ७९।
२. डॉ० नगेन्द्र : विचार और अनुभूति, पृ० ४५।
३. डॉ० गुलाबराय : काव्य के रूप, पृ० ६९।
४. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : नया साहित्य, नये प्रश्न, पृ० १२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उनके नाटकों में वस्तु-विकास, पात्र-चित्रण के साथ-साथ सन्धियों की योजना भी दिखायी दे जाती है। अनेक विद्वान् आलोचक अर्थ-प्रकृतियों एवं कार्य-व्यापार की अवस्थाओं की योजना भी खोज निकालते हैं। संस्कृत नाट्य-शिल्प के साथ उन्होंने अंग्रेजी नाट्य-प्रणाली का भी यथावसर उपयोग किया है।

प्रसाद ने जहाँ नाट्य-कला के क्षेत्र में समन्वय प्रस्तुत किया है, वहीं उन्होंने इतिहास का कल्पना से, साहित्य का दर्शन से और लोक-विश्वास का तथ्य से समन्वय भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने अनेक दन्त-कथाओं को परिष्कृत करके स्वीकार्य और प्रामाणिक बना दिया है। "इस ऐतिहासिक स्थूलता एवं सूक्ष्मता में कल्पना की स्निग्धता विद्यमान है। सामान्य, स्थूल और ऐतिहासिक चरित्रों को रंगीन मानवीय परिधान पहनाकर उनमें सृजनशील सौन्दर्य स्पन्दित कर देना प्रसाद की कला का उत्कृष्ट प्रमाण है। इन नाटकीय प्रसंगों में संघर्ष की क्रिया-प्रतिक्रिया और मुक्त हृदयों का प्रेम-प्रवाह अनुस्यूत है। आदर्श और यथार्थ को अपनाये हुए परस्पर कर्त्तव्य एवं भावना का द्वन्द्व 'प्रसाद' के नाटकों की विश्व पीठिका है। इस मधुचर्या पर विचारशील, दार्शनिक चिन्तन का आवरण उनकी कलात्मक सिद्धि है। ऐसे स्थल भावुकता की पराकाष्ठा पर हैं। शिल्प-विधि के क्षेत्र में 'प्रसाद' ने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य-विधान का सामंजस्य उपस्थित किया है। वे न शास्त्रीय निषेधों के हामी रहे और न पाश्चात्य-प्रणाली की अति आधुनिकता के समर्थक बन सके। चरित्रों में संघर्ष और मनोभावों में रस उनकी इस समन्वयवृत्ति के कारण ही सम्भव हुआ है। जीवन-समस्याओं का यह संघर्ष इतिहास की भावनाओं की सीमा में घटित हुआ है। इन नाट्य-शिल्पों की मौलिक उद्भावनाओं के आधार पर हिन्दी-नाटक-साहित्य में 'प्रसाद संस्थान' का प्रचलन हुआ है, जिससे हिन्दी-नाटक-साहित्य को एक सम्पन्न निधि उपलब्ध हुई है।"[१]

प्रसाद जी ने बराबर इस बात का ध्यान रखा है कि उनके नाटक आधुनिक युग और आधुनिक रंगमंच के अनुकूल हों। यदि उनके नाटक नई नाट्य-शैली का पूरी तरह अनुवर्तन नहीं करते, तो वे पुराने नाट्य प्रकारों के अनुकरण भी नहीं हैं। प्रसाद के प्रायः सभी नाटक सुखान्त दिखाई पड़ते हैं, जिसका कारण सम्भवतः भारतीय नाट्य-परम्परा की दुखान्त विरोधी मान्यताएँ हैं। स्कन्दगुप्त का सारा उपक्रम विफलता की ओर दौड़ता दिखाई पड़ता है। स्कन्दगुप्त के मार्ग में कठिनाइयाँ इतनी विराट् हैं कि स्कन्दगुप्त का चरित्र इन विरोधी परिस्थितियों

१. डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित : प्रसाद का गद्य, पृ० १२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

के समकक्ष खड़ा होकर हमारी दया का पात्र बन जाता है। सदैव कठिनाई ही उसके सामने दीखती है और उसकी विजय की आशा हमें स्वप्न में भी नहीं रहती। अन्तिम अंक में स्कन्द की समस्त आशाओं पर पानी फिर चुका है और उसका समस्त प्रयास विफलता में परिणत हो चुका है, फिर भी प्रसाद जी ने अन्तिम दृश्यों में उसकी विजय दिखाई है। इससे यह सिद्ध होता है कि वे नाटक को सुखान्त बनाना चाहते थे। वस्तुतः उन्होंने भारतीयता की रक्षा के लिए ही ऐसी योजना की।

प्रसाद जी के नाटकों की एक अन्य विशेषता है—उनका देश-प्रेम सम्बन्धी भाव, जिसे उन्होंने अतीत का आधार लेकर अंकित किया है। वे द्विजेन्द्रलाल राय की भाँति मध्ययुगीन पात्रों तक ही सीमित नहीं रह पाते हैं। उन्होंने सुदूर अतीत के पात्रों को भी स्थान दिया है और वहाँ भी पौराणिक की अपेक्षा ऐतिहासिक युगों की घटनाओं का चयन किया है। प्रसाद जी ने पौराणिक आख्यान को अधिक नहीं अपनाया। यदि वे ऐसा करते, तो वह कदाचित् अधिक प्रामाणिक भूमि पर न आ पाते। उनके नाटकों में अतीत की भारतीय वीरता और संस्कृति की इतिहास सम्मत व्याख्याएँ और चित्र मिलते हैं।

प्रसाद जी के नाटकों की एक अन्य विशेषता है उन युगों की सामाजिक और दार्शनिक विचारधाराओं के निर्देश करने की। दर्शन को प्रसाद जी ने सर्वत्र अपने साथ रखने का प्रयत्न किया है। कहीं-कहीं उनकी दार्शनिकता उनकी नाटकीय कलात्मकता में विघ्न भी उपस्थित करती है, फिर भी उन्होंने उत्कृष्ट दार्शनिक भावना को नहीं छोड़ा है। 'चन्द्रगुप्त' में चाणक्य और दाण्ड्यायन प्रसाद जी के दर्शन को उपस्थित करते हैं। 'अजातशत्रु' और 'विशाल' में बौद्ध-दार्शनिकता की झलक मिलती है। ध्रुवस्वामिनी में सामयिक समस्या अर्थात् विच्छेद की समस्या प्रस्तुत की गयी है। इतिहास से संस्कृति का समन्वय प्रसाद जी के नाटकों की प्रमुख विशेषता है। संस्कृति का आभास इतिहास के माध्यम से देते हुए प्रसाद जी ने अपने नाटकों में एक सुन्दर सांस्कृतिक धारा का प्रवाह दिखाया है। प्रत्येक नाटक में प्रसाद जी ने मुख्य पात्र और नायक को उस युग की सांस्कृतिक समस्याओं का प्रतीक माना है और उसके माध्यम से नवीन सांस्कृतिक निर्माण की सूचना दी है। यही कारण है कि प्रसाद जी के नायक आदर्शवादी हैं। वे भिन्न-भिन्न युगों की सांस्कृतिक स्थिति और विकास के प्रतिनिधि स्वरूप हैं।

वर्गीकरण

विवेचन की सुविधा की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों का वर्गीकरण आवश्यक है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विषय-वस्तु की दृष्टि से हम प्रसाद के नाटकों को (१) ऐतिहासिक, (२) अर्द्ध ऐतिहासिक और (३) काल्पनिक वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

'राज्य श्रीः' 'अजात शत्रु', 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' ऐतिहासिक नाटक हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' और 'विशाख' को हम अर्द्ध ऐतिहासिक नाटकों की श्रेणी में रख सकते हैं। लेखक की प्रारम्भिक कृति 'सज्जन' और 'प्रायश्चित्त' भी इसी श्रेणी की कृति मानी जाती हैं। 'कामना' काल्पनिक और प्रतीकवादी नाटक है। 'एक घूंट' की विषय-वस्तु भी काल्पनिक ही है, पर यह एकांकी है। ऐतिहासिक श्रेणी में रखे गए नाटकों के सम्बन्ध में कोई वैमत्य नहीं है। कहीं किसी पात्र का परिस्थिति और इतिहास से मेल न खाना, उसमें अनैतिहासिकता का दोष नहीं उत्पन्न करता। वस्तुतः ऐसे पात्रों की सृष्टि लेखक की स्वयं अपनी स्थापना का परिणाम है।

कलात्मक विकास की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—(१) प्रयोगकालीन, (२) अन्तर्वर्ती या विकासकालीन और (३) प्रौढ़ या उत्कर्षकालीन।

प्रयोगकालीन नाटकों की श्रेणी में 'सज्जन', 'प्रायश्चित्त', 'कल्याणी परिणय' और 'करुणालय' को स्थान दिया जाता है। इनमें प्रसाद प्रयोगकर्ता के रूप में ही पाठकों के समक्ष आते हैं। भाव और शिल्पगत कौशल यहाँ अत्यन्त क्षीण है।

अन्तर्वर्ती या विकासकालीन रचनाओं में 'राज्यश्री', 'विशाख', 'अजात-शत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'कामना' और 'एक घूंट' को स्थान दिया जाता है।

प्रौढ़ या उत्कर्षकालीन कृतियों में 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', और 'ध्रुवस्वामिनी' को स्थान मिलता है। इनमें लेखक का नाट्य-कौशल अत्यन्त सशक्त और उत्कृष्ट रूप में उपस्थित है।

प्रयोगकालीन नाटक

'सज्जन' की कथावस्तु महाभारत से ली गयी है। इसमें दुर्योधन की कुटिलता और युधिष्ठिर की क्षमाशीलता का वर्णन है। यह एक पौराणिक कथा पर आधारित रूपक है। यहाँ वे भारतेन्दु-शैली के अनुकरणकर्त्ता प्रतीत होते हैं। इसमें नान्दी-पाठ और सूत्रधार का विनियोग है। इसमें प्रस्तावना और भरत-वाक्य को भी स्थान मिला है, विदूषक की भी अवतारणा है। अतएव यह कहा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जा सकता है कि इसमें संस्कृत की प्राचीन नाट्य-शैली का अनुकरण किया गया है।[१]

संस्कृत नाट्य-शिल्प के प्रभाव के साथ-साथ इस पर पाश्चात्य नाट्य-शैली की भी छाप है। शेक्सपियर के 'ऑथेलो' नाटक के 'इयागो' नामक पात्र की तरह दुर्योधन भी अपने दुष्कर्म पर लज्जा का अनुभव करने के लिए छोड़ दिया जाता है। रंगमंच पर सेना-प्रयाण, युद्ध आदि के दृश्यांकन पर भी पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित हैं।

'प्रायश्चित' में देशद्रोही जयचन्द की आत्मग्लानि और आत्म-हनन की कहानी है। प्रतिशोध की प्रबल आकांक्षा से ग्रसित जयचन्द अपने जामाता पृथ्वीराज पर आक्रमण करता है और युद्ध में उसे मार डालता है। डॉ० उपेन्द्र नारायण सिंह के अनुसार जयचन्द का हृदय जिस प्रकार द्वेष-जर्जर है, उसी प्रकार शेक्सपियर के 'हेमलेट के चाचा' 'क्लाडियस' का हृदय द्वेष-जर्जर है। जिस प्रकार द्वेष के वशीभूत होकर जयचन्द अपने जामाता की हत्या करता है, उसी प्रकार क्लाडियस भी अपने अग्रज की हत्या करता है। जिस प्रकार क्लाडियस को अपने पराये का ज्ञान नहीं है, उसी प्रकार जयचन्द को भी अपने-पराये का ज्ञान नहीं रह गया है। 'प्रायश्चित' के उत्तरार्द्ध में आकाशवाणी द्वारा जयचन्द के जघन्य कर्मों की निन्दा होती है फिर शून्य आकाश के कोने से जयचंद की पुत्री संयोगिता की विरहिणी मूर्ति झाँकती दिखाई पड़ती है। यह प्रसंग शेक्सपीयर के 'हेमलेट' के उस प्रसंग से समानता रखता है, जिसमें हेमलेट प्रेतात्मा को देखता है। शेक्सपीयर के 'मेकवेथ' में भी मेकवेथ को एक जगह आकाश में लटकती हुई तलवार की झलक मिलती है। 'प्रायश्चित' नाटक का जयचन्द जिस प्रकार मानसिक द्वन्द्व का शिकार बना है, उस प्रकार के अनेक पात्र शेक्सपियर के नाटकों में देखे जा सकते हैं। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के साथ, आँग्ल नाटकों की स्वच्छन्दतावादी शैली की झलक भी इस नाटक में मिलती है।"[२] सम्भव है, प्रसाद ने उक्त नाटकों से प्रेरणा ग्रहण कर अपने प्रस्तुत नाटक की योजना बनायी हो। पर न तो जयचन्द जैसे पात्रों की भारतीय भूमि में कमी रही है और न ही 'आकाशवाणी' का भारतीय साहित्य में अभाव रहा है, इसलिए सम्पूर्ण संघटना को पाश्चात्य

---

१. पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र : हिन्दी का नाट्य साहित्य, पृ० ३४ (द्वि० आ०)।

२. डॉ० उपेन्द्रनारायण सिंह : आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आँग्ल नाटकों का प्रभाव, पृ० १०८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रभाव से पूर्ण सिद्ध करना उचित नहीं है। इस नाटक में अति प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग कुछ कम है और प्रथम बार जातीय आधार पर पात्रानुकूल भाषा का व्यवहार हुआ है। मुसलमान पात्र विशुद्ध उर्दू और हिन्दू पात्र हिन्दी-भाषा का प्रयोग करते हैं।

'कल्याणी परिणय' का फलक भी अत्यन्त प्रसिद्ध ऐतिहासिक कथा से जुड़ा है। इसमें चन्द्रगुप्त-सिल्यूकस के युद्ध तथा सिल्यूकस की पुत्री के साथ चन्द्रगुप्त के विवाह का वर्णन मिलता है। चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया के विवाह द्वारा प्रसाद देश और जाति की परिधि के घेरे को समाप्त कर देते हैं। प्रसाद ने इस कार्य द्वारा मानव-जाति की क्षुद्रता और संकीर्णता को तिलाञ्जलि दी है। वस्तुतः लोक-मंगल की यह भावना पाश्चात्य और भारतीय दोनों दर्शनों के मूल में है। यहाँ आकर पहली बार लेखक की वृत्ति शुद्ध ऐतिहासिकता की ओर उन्मुख नजर आती है और उसका रचना-कौशल भी पहले की तीन रचनाओं से कुछ और पुष्ट नजर आता है। वस्तुतः 'चन्द्रगुप्त' इसी नाटक का परिवर्द्धित रूप है। डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अनुसार—"रूपकोचित वस्तु-विन्यास इस रचना में नहीं दिखाई पड़ता। दौड़ भी थोड़ी है और उसमें ऐसा सीधापन है कि वस्तु-विकास का ज्ञान नहीं हो पाता। एक ओर से चलकर, एक साँस में, कथा अन्त तक चली जाती है। यही कारण है कि इसमें नाटकत्व नहीं मिल पाता। यहाँ चरित्र-चित्रण का भी विशेष अवसर नहीं मिला है। . . .इस एकांकी रचना-पद्धति में दो विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं। आरम्भ में नान्दी-पाठ और अन्त की प्रशस्ति में भारतीय मंगल-विधान की झलक। . . .गानों का विनियोग भी प्रसंगानुकूल एवं साभिप्राय हुआ है।"[१]

हिन्दी में गीतिनाट्य परम्परा का प्रारम्भ **'करुणालय'** से माना जाता है। 'करुणालय' में भी अत्यन्त प्रसिद्ध पौराणिक इतिवृत्त ग्रहण किया गया है। आकाशवाणी सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने पुत्र रोहित को यज्ञ में बलि देना चाहते हैं। इस गीति-नाट्य में रोहित विभिन्न भाव स्थितियों से गुजरता है और इसके माध्यम से प्रसाद ने भावनाओं के विविध संघर्ष को मूर्त स्वरूप प्रदान किया है। इसकी कथा से उस युग की दरिद्रता और स्वार्थ-परायणता का पता चलता है। यह एकांकी आँग्ल-नाटक साहित्य के 'ब्लैंकवर्स' की शैली से प्रभावित और अनुप्रेरित है। इसमें नान्दी और प्रस्तावना का पूर्ण बहिष्कार दिखाई देता है।

---

१. डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० ८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डॉ० शर्मा के मत से—"इसमें नाटकीय अंश की न्यूनता और कहानी-तत्व की ही प्रधानता है। इसे कथोपकथन के द्वारा पद्य में लिखी हुई कहानी ही समझना चाहिए।"[1]

अन्तर्वर्ती या विकासकालीन नाटक

'सज्जन', 'प्रायश्चित', 'करुणालय' और 'कल्याणी परिणय' के पश्चात् प्रसाद ने **'विशाख'** की रचना की। यह अर्द्ध-ऐतिहासिक नाटक है। इसकी रचना १९२१ में हुई। इसके इतिहास के सूत्रों को जोड़ने के लिए लेखक ने यत्र-तत्र कल्पना का भी सहारा लिया है। वस्तुतः बौद्धों के पतन का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करना लेखक का लक्ष्य है। चन्द्रलेखा के प्रति राजा नरदेव का कामुक व्यवहार, अत्याचार और प्रतिकार इसमें वर्णित है। प्रारम्भ में नाटक की कथावस्तु की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए प्रसाद ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि "यह नाटक 'राजतरंगिणी' की एक ऐतिहासिक घटना पर अवलम्बित है।. . .यह घटना सम्भवतः १८०० वर्ष पहले की है; उस समय की रीति-नीति का परिचय होना तो कठिन है, फिर भी जहाँ तक हो सका है, उसी काल का चित्रण करने का प्रयत्न किया गया है।"[2] 'राजतरंगिणी' के अनुसार द्वितीय विभीषण का पुत्र नर (देव) राजगद्दी पर बैठने पर कामुक और उच्छृंखल बन जाता है। किन्नर ग्राम का बौद्ध श्रमण योगबल से रानी को पथभ्रष्ट करता है। इससे राजा क्रुद्ध होकर सारे बिहारों को जलवा देता है और बिहारों की सम्पत्ति ब्राह्मणों को दे देता है। नगर के भीतर के जलाशय में सुश्रवा नाग का वास है। वहीं चिल-चिलाती दुपहरी में एक गरीब ब्राह्मण सत्तू निकाल कर खाने का उपक्रम करता है। पास ही दो युवतियाँ सेम की फली तोड़ रही हैं। ब्राह्मण जिज्ञासा से देखता है। बातचीत से पता चलता है कि ये दोनों कन्याएँ सुश्रुवा नाग की हैं, जिनका नाम इरावती और चन्द्रलेखा है। इस प्रथम दर्शन में ही चन्द्रलेखा ब्राह्मण की वाग्दत्ता बन जाती है। कालान्तर में चन्द्रलेखा का पाणि-ग्रहण उस ब्राह्मण से होता है। चन्द्रलेखा पतिपरायणा और रूपवती नारी है। कुछ दिनों में राजा नर तक उसके रूप और गुण की खबर पहुँचती है। राजा उसे पाने के लिए अनेक उपाय करता है। अपने उपायों में असफल होने पर वह अन्त में बलपूर्वक उसके अपहरण का प्रयत्न करता है। इसी बीच सुश्रुवा और उसकी वहन रमण्या के विद्रोह की ज्वाला

---

१. डॉ० जगन्नाथ शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १०।

२. प्रसाद : विशाख, पृ० ५ और ७ से।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में सब भस्म हो जाते हैं। संयोग से, राजा का पुत्र 'सिद्ध' बच जाता है, जो कालान्तर में सुन्दर और सुयोग्य शासक प्रमाणित होता है।

नाट्यकला की दृष्टि से प्रारम्भिक कृतियों की अपेक्षा इसमें कुछ प्रौढ़ता दिखाई देती है। इसका शिल्प शिथिल है और वस्तु-विन्यास कुछ भ्रामक है। इसमें दो स्पष्ट भाग नजर आते हैं: (१) नायक-नायिका का विरह और (२) प्रतिशोध। इसका पात्र प्रेमानन्द शुद्ध भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। विशाख कुलीन ब्राह्मण और नायिका 'चन्द्रलेखा' एक नाग-कन्या हैं। वह वीर और साहसी हैं। भाषा अलंकार बोझिल होने के कारण कुछ क्लिष्ट हो गई है।

वस्तु और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से यह नाटक चमत्कारविहीन है। लेकिन इसमें प्रस्तावना और भरत-वाक्य आदि जैसे भारतीय नियमों की उपेक्षा की गई है। यहाँ नाटककार विदेशी नाट्य-शैली की ओर झुकता दिखाई देता है। प्रसाद का स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण भी इसमें अधिक स्पष्ट है। महापिंगल नामक पात्र पश्चात्य नाटक के नायक के विश्वासी अनुचर जैसा कार्य करता है।[१] डॉ० विश्वनाथ मिश्र ने इस पात्र में पाश्चात्य नाटक के खलनायक की दुष्टता की छाया भी देखी है।[२] पर यह पात्र भारतीय विदूषक के अधिक निकट है, जो नायक का विश्वसनीय अनुचर तो होता ही है; साथ ही नाटक में हास्य की उद्भावना का भी उत्तरदायी होता है। उसका कार्य ही नायक को प्रसन्न रखना होता है। महापिंगल इसी प्रकार का चरित्र है।

'राज्यश्री' प्रसाद का दूसरा नाटक है, जिसमें वे ऐतिहासिक तथ्यों के अन्वेषण की तरफ उन्मुख दिखाई देते हैं। यद्यपि इसके पूर्व उन्होंने 'विशाख' की रचना की थी और उसमें इतिहास के एक अन्धकाराच्छन्न पक्ष को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया था; पर पहली बार लेखक ऐतिहासिक कथानक के कौशल-पूर्ण उपयोग में सफल हुआ है। लेकिन अब प्राप्त 'राज्यश्री' परिवर्द्धित और परिवर्तित रूप में है। प्रसाद इसे प्रथम ऐतिहासिक कृति मानते हैं। उनके शब्दों में ही—"इस दृश्य-काव्य का पूर्ण रूप 'इन्दु' में पहले निकला—फिर चित्राधार के संग्रह में पुनर्मुद्रित हुआ। एक प्रकार से इसे अपना प्रथम ऐतिहासिक रूपक समझता हूँ। उस समय यह एक अपूर्ण ही-सा था। इसका वर्तमान रूप कुछ परिवर्द्धित और परिवर्तित है।"[३]

---

१. डॉ० उपेन्द्रनारायण सिंह: आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आँग्ल नाटकों का प्रभाव, पृ० १११।

२. डॉ० विश्वनाथ मिश्र: हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव, पृ० २२०-२१।

३. प्रसाद: राज्यश्री, पृ० ८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसकी कथा का मुख्य स्रोत 'हर्षचरित' और ह्वेनसाँग द्वारा वर्णित वृत्तान्त हैं। लेखक के अनुसार ही हर्षचरित का वर्णन अपूर्ण है और ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध नहीं है। इस नाटक में स्थाणेश्वर, मालवा, मगध, कन्नौज आदि देशी राज्यों की राजनीतिक परिस्थितियों के चित्रण किए गए हैं। ईसा छठी और सातवीं शती के बीच भारतीय इतिहास की सुन्दर झाँकी इस नाटक में मिलती है। स्थाणेश्वर और कन्नौज उत्तर भारत के शक्ति-सम्पन्न राज्य थे। स्थाणेश्वर में प्रभाकरवर्द्धन का राज्य था, जिसके दो पुत्र थे राज्यवर्द्धन और हर्षवद्धन। राज्यश्री एकमात्र राजकुमारी थी। कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री का विवाह हुआ था। स्थाणेश्वर और कन्नौज के इस सम्बन्ध से उत्तर भारत के मालवा, गौड़ आदि छोटे-छोटे राज्य द्वेष-भाव रखते थे। इस कटुता और राजनीतिक द्वेष का रूप हमें इस नाटक में मिलता है। इसमें बौद्ध-धर्म के पतन की अवस्था का भी चित्र प्रस्तुत किया गया है और वौद्ध तथा ब्राह्मण-धर्म का द्वन्द्व तो इस नाटक की मूल आतमा है। इसमें स्वयं बौद्ध भिक्षुओं ने भी शान्ति धर्म की अनिवार्यता पर सन्देह प्रकट किया है। शान्तिभिक्षु के कथन में इस सत्य का उद्घाटन हुआ है। पुरुष-पात्रों में ग्रहवर्मा, शान्तिभिक्षु, देवगुप्त, चीनी यात्री ह्वेनसाँग आदि तथा स्त्री-पात्रों में राज्यश्री, सुरमा आदि प्रमुख पात्र हैं। शान्तिदेव, सुरमा आदि काल्पनिक हैं। ह्वेनसाँग, राज्यश्री, ग्रहवर्मा आदि ऐतिहासिक पात्र हैं। नाटक के कथानक में इतिहास और कल्पना का सुन्दर समन्वय हुआ है। मालव-नरेश देवगुप्त एक बार राज्यश्री को मदनोत्सव के समय देख लेता है, तब से वह उसके रूप के पीछे पागल बन जाता है। वह उसे प्राप्त करना चाहता है और छद्मवेश में कन्नौज आता है, उसके साथ अनेक गुप्तचर भी हैं। देवगुप्त की भेंट संयोगवशात् सुरमा से होती है, वह उसी के यहाँ ठहरता है। नाटक के अन्त में सुरमा उसकी प्राणेश्वरी वन जाती है। सीमान्त प्रदेश के युद्ध में ग्रहवर्मा घायल होता है। बाद में राज्यश्री भी देवगुप्त के कारावास में पहुँच जाती है। तब तक युद्ध का समाचार स्थाणेश्वर पहुँचता है। नरेन्द्र गुप्त की सहायता से राज्यवर्द्धन देवगुप्त पर चढ़ाई कर उसे पराजित करता है तथा इस युद्ध में देवगुप्त मारा जाता है। बाद में सुरमा और विकट कोष के षड्यन्त्र से राज्यवर्द्धन की भी हत्या होती है। भाई की हत्या का समाचार सुनकर पुलकेशिन चालुक्य से युद्ध में सन्धि कर हर्ष वीतरागी होकर वहन राज्यश्री की खोज में निकल पड़ता है। उधर राज्यश्री तपोवन में पहुँच कर सती होने का उपक्रम करती है। इसी वीच हर्ष पहुँच कर उसकी रक्षा करता है।

प्रसाद की 'राज्यश्री' और भारतेन्दु की 'नीलदेव' में बड़ी समानता है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दोनों नारियाँ अतीत भारत की वीरता और गौरव की प्रतीक और प्रकाश-स्तम्भ हैं। दोनों के पति प्रपंच में मारे जाते हैं, फिर भी दोनों के अन्त में असमानता है; जहाँ नीलदेवी चिता में जल कर भस्म हो जाती है, वहीं अन्तिम क्षणों में पहुँच कर हर्षवर्द्धन राज्यश्री को चिता में जलने से विमुख करता है।

नवीन नाट्य-शिल्प

इसके प्रथम संस्करण में नान्दी, भरत-वाक्य और पद्यात्मक सम्वाद की योजना है। जिसका परिवर्द्धित संस्करण में पूर्णतया अभाव है। इसके नए संस्करण में अंक, दृश्यों का नया विभाजन करके लेखक ने नये पात्रों की भी अवतारणा की है। नए संस्करण में वस्तु-संगठन और चरित्र-चित्रण में अपेक्षाकृत अधिक निखार आ गया है। यह प्रसाद का प्रथम सफल ऐतिहासिक नाटक है। जिसमें उन्मुक्त कल्पना की उड़ान; कवित्व का संस्पर्श और अन्तश्चेतना का अखण्ड प्रवाह है। नाटक में संघर्ष अधिक सक्रिय है, जिससे एक सारभूत प्रभाव पड़ता है। कथानक सरल, सुबोध तथा संक्षिप्त है। 'टेकनीक' की दृष्टि से उसका विस्तार समुचित एवं सुसंगठित है। 'राज्यश्री' लेखक के अंग्रेजी नाट्य-विधान के प्रति आकर्षण का स्पष्ट परिचय देती है। प्रसाद के प्रौढ़ नाटकों की विशेषताएँ—षड्यन्त्र विद्रोह, रक्तपात और संघर्ष की योजना की प्रवृत्ति यहाँ पर स्पष्ट दिखाई देती है। वस्तुतः यहाँ आकर उनकी प्रयोगकालीन नाट्य-शैली का अन्त हो जाता है और उनकी नाट्यशैली एक नया पथ अपनाती है, जो आगे चलकर अत्यन्त प्रसिद्धि प्राप्त करती है। अंक-विभाजन से लेकर, वस्तु-संगठन, शिल्प-विन्यास आदि में प्रसाद ने पूर्वी और पाश्चात्य शैली के समन्वय से एक नवीन 'टेकनीक' को इस नाटक में जन्म दिया है। इस नए नाट्य-शिल्प-गठन में लेखक शेक्सपीयर से प्रभावित प्रतीत होता है। उन्होंने अन्धविश्वासों पर तीव्र प्रहार किया है। प्रसाद लोकसेवा को ही धर्म मानते हैं। धर्म के ढोंग का भण्डाफोड़ करने में प्रसाद अग्रगणी रहे हैं।

'जनमेजय का नागयज्ञ' महाभारत और हरिवंश पुराण पर आधारित अर्द्ध-ऐतिहासिक नाटक है। लेखक ने इसकी कथावस्तु के लिए प्राचीन इतिहास ग्रन्थों का विशद अध्ययन किया है। इतिहास के सूत्रों को जोड़ने के लिए लेखक ने यत्र-तत्र कल्पना का भी सहारा लिया है। प्रसाद जी ने इस नाटक की भूमिका में स्वयं स्वीकार किया है कि "इस नाटक के पात्रों में कल्पित केवल चार-पाँच पात्र हैं. . . जहाँ तक हो सका है, इसके आख्यान-भाग में महाभारत काल के ऐतिहासिकता की रक्षा की गई है और इन कल्पित चार पात्रों से मूल घटनाओं का सम्बन्ध-सूत्र

डा. डिल्ली एमण रेड्डी
... ५२२०

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जोड़ने का ही काम लिया गया . . . इस नाटक में ऐसी कोई घटना समाहित नहीं है, जिसका मूल महाभारत और हरिवंश में न हो।"[१]

कथानक का मूल आधार आर्य-जाति और नागों का संघर्ष है। ब्राह्मण-हत्या के प्रायश्चित स्वरूप पितृ-वध का प्रतिशोध लेने के संकल्प से जनमेजय यज्ञ करते हैं, जिसमें नागों की आहुति देते हैं। फलस्वरूप दोनों जातियाँ एक दूसरे के खून की प्यासी बन जाती हैं। अन्त में विश्वबन्धुत्व की भावना का सन्देश नाटककार ने दिया है। तक्षक की पुत्री मणिमाला आर्यों की रानी बनती है और आस्तीक तथा जनमेजय के सम्वाद से भी उक्त भावना का सन्देश मिलता है। ऋषिपुत्र आस्तीक एक जगह कहता है—"मुझे दो जातियों में शान्ति चाहिए। सम्राट, शान्ति की घोषणा कर के बन्दी नागराज को छोड़ दीजिए। यही मेरे लिए यथेष्ट प्रतिफल होगा।"[२] जनमेजय भी मणिमाला की अधीनता स्वीकार करते हुए कहता है—"नाग-कुमारी का प्रजा होना भी अच्छा समझता हूँ।"[३]

जनमेजय का नागयज्ञ : जातीय संघर्ष का समाधान

प्रसाद-कालीन भारत में हिन्दू-मुस्लिम दंगे प्रायः हुआ करते थे। प्रसाद के मस्तिष्क में इन दोनों जातियों की समस्या हमेशा घर बनाए रहती थी। प्रसाद ने नाग-जाति और आर्य-जाति के बीच प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करके प्रतीकात्मक पद्धति से आधुनिक भारत की जाति-समस्या का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यह नाटक हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों का एक सामयिक समाधान प्रस्तुत करता है। ऋषिपुत्र आस्तीक का चरित्र और सन्देश महात्मा गाँधी के चरित्र और सन्देश की याद दिलाता है। महात्मा गाँधी हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा विश्वबन्धुत्व-भाव के प्रबल समर्थक थे। उसी तरह आस्तीक एक जगह कहता है—"किन्तु भाई, हम लोगों का कुछ कर्त्तव्य भी है। दो भयंकर जातियाँ क्रोध से फुँफकार रही हैं। उनमें शान्ति स्थापित करने का हमने बीड़ा उठाया है।"[४] सचमुच बापू ने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता का बीड़ा उठाया था।

कथा का विकास, विन्यास और विभाजन नवीन नाट्यशास्त्रीय पद्धति के अनुसार हुआ है। नाटक में दर्शन का गाम्भीर्य और संगीत की मधुरता तथा

---

१. प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ५-६।
२. वही, पृ० १०४-५।
३. वही, पृ० ४९।
४. वही, पृ० ९७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कवित्व की सरसता विद्यमान है। 'मनसा' का निम्न कथन नाटक का केन्द्रविन्दु और संघर्ष का सूत्र है—"क्या तुमने यही समझ रखा था कि नाग-जाति सदैव इसी गिरी अवस्था में है। क्या इस रंगमंच पर नागों ने स्पृहणीय अभिनय नहीं किया ? आर्यों के सदृश उनका भी एक विस्तृत राज्य था, उनकी भी एक संस्कृति थी।"[1]

प्रतीकवादी नाटक 'कामना' १९२३-२४ में प्रकाशित प्रसाद का अन्यतम नाटक है, जो एक नवीन नाट्य-लिपि का उदाहरण है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "यह 'प्रबोध चन्द्रोदय' और अश्वघोष के नाटकों के समान प्रतीकवादी परम्परा का नाटक दृष्टिगोचर होता है। यह एक सांस्कृतिक रूपक है।"[2]

फूलों के द्वीप में तारा की सन्तानों द्वारा इस नाटक की रंगभूमि रची गई है। इसमें आरम्भ से अन्त तक एक रोमांचपूर्ण और सकरुण वातावरण की सृष्टि हुई है। आधुनिक विलासिता और असत्-प्रवृत्तियों से मुक्त द्वीपवासियों के बीच आधुनिक सभ्यता का प्रतिनिधि, स्वर्ण और मदिरा का सन्देशवाहक, महत्वाकांक्षा और संघर्ष का बीज वपन करने वाला विदेशी युवक विलास वहाँ पहुँच कर द्वीपवासी जनता को दिग्भ्रमित और पतित करता है। 'कामना' के मन में वह शासन के प्रति आकर्षण और मोह उत्पन्न करता है। परिणामस्वरूप कामना सत्पथ से विचलित होकर विलास और अनाचार में लिप्त हो जाती है। अनाचार और अपराधों की बाढ़ से द्वीप में हाहाकार मच जाता है। पर अन्ततः विवेक के नेतृत्व में विलास और उसके साथ असत्-वृत्तियाँ द्वीप से बहिष्कृत होती हैं। जीवन के प्रति पश्चिमी भोगवाद और भारतीय आध्यात्म की उपयोगिता की तुलना तथा पाश्चात्य-सभ्यता पर प्राचीन आदर्शों की विजय चित्रित करना इस नाटक का प्रधान लक्ष्य है। नाटक का अन्त आनन्दपूर्ण है। असत्-वृत्ति के प्रमुख पात्र विलास और लालसा द्वीप से निष्कासित होते हैं। द्वीपवासी उस नौका पर स्वर्ण फेंकते हैं और नाव डगमगा कर डूब जाती है। अन्त आनन्दपूर्ण होते हुए भी शोक की छाया से ग्रस्त है। डॉ० नगेन्द्र ने 'कामना' के अन्त के सन्दर्भ में विचार करते हुए कहा है कि "कामना शायद ट्रेजडी के रूप में अधिक सफल होती"; किन्तु यहाँ हमें लेखक के मूल लक्ष्य को ध्यान में रखना पड़ेगा। लेखक का लक्ष्य पाश्चात्य विकृतियों के निराकरण और भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना का था। इसलिए

---

१. प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ९।
२. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० ७८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेखक को इसी प्रकार का अन्त अभीष्ट है और यह नाटक अपने प्रभावान्विति के धरातल पर पाठक के मानस पर पूर्ण प्रभाव स्थापित करता है।

'कामना' अन्योपदेशिक नाटक है। यहाँ सभी मानवीय भावों का मानवीकरण प्रस्तुत किया गया है। सन्तोष, विनोद, विलास, विवेक, शान्ति, दम्भ, दुर्वृत्ति, क्रूर, कामना, लीला, लालसा, करुणा, प्रमदा, महत्वाकांक्षा आदि सभी मानवीय मनोभाव हैं; जिन्हें लेखक ने पात्र-रूप में चित्रित किया है और उनका चरित्र भी प्रस्तुत किया है। "हिन्दी में प्रतीकवाद नाटक इने-गिने हैं, जिनमें 'कामना' एक सफल प्रयास है।"[१] प्रसाद के इस नाटक द्वारा नये शिल्प की स्थापना तो हुई ही है, साथ ही उसका सन्देश भी परमोपयोगी है।

नवीन नाट्य-शिल्प

भारतीय नाट्यसिद्धान्तों में रंगमंच पर वर्णित दृश्यों को प्रसाद ने इस नाटक में भी दिखाया है। 'कामना' नाटक के अन्त में विलास और लालसा नौका पर बैठे दिखाए गए हैं और यह नौका समुद्र की लहरों में डगमगा कर डूब जाती है। नाटक में दुःखपूर्ण घटनाओं की संयोजना की गयी है, फिर भी यह नाटक सुखान्त है। इसके नायक विवेक के मानसिक द्वन्द्व के चित्रण में पाश्चात्य प्रभाव परिलक्षित है। "विदेशी संस्कृति की कुरीतियों से आक्रान्त भारतीय संस्कृति की रक्षा ही इस नाटक का मुख्य ध्येय है।"[२] वे विदेशी छाया से आच्छादित जीवन को फिर से उसी स्वर्ग की ओर प्रेरित करने की बात सोचते हैं।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य का यह पहला प्रतीकात्मक नाटक है। प्रसाद को अपने इस नाटक की रचना में प्राचीन भारतीय साहित्य तथा पाश्चात्य साहित्य से भी प्रेरणा मिली है। प्रसाद ने 'कामायनी' महाकाव्य में भी अपनी सशक्त प्रतीक-पद्धति का परिचय दिया है।

एकांकी नाटक 'एक घूंट' १९२९ में प्रकाशित प्रसाद का एक ऐसा नाटक है, जिसने नाट्यकला को एक नवीन पथ प्रदान किया। इसके द्वारा एकांकी कला का सूत्रपात हुआ। प्रसाद के असामयिक अवसान से इस कला का अधिक उज्ज्वल पक्ष सामने नहीं आ पाया; पर प्रसाद इस विधा की उपयोगिता और आवश्यकता से

---

१. डॉ० कृष्णलाल : आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २७१।

२. डॉ० बच्चन सिंह : हिन्दी नाटकों का विकास, आलोचना अंक १, वर्ष २, पृ० १५७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिचित थे। आज एकांकी नाटक ने नाट्य-साहित्य को पूर्ण रूप से आवृत्त कर लिया है। यह एकांकी प्रसाद के सिद्धान्तों, मूलतः उनकी आनन्दवादी साधना का वाहक है। इसके कुछ अंशों पर संस्कृत नाट्य-शास्त्र का प्रभाव है, खास करके नेपथ्य, पूर्व रंग तथा चटुला के रूप में विदूषक की योजना पर। यही कारण है कि हिन्दी के कुछ विद्वान् इसे हिन्दी का पहला एकांकी मानने के पक्ष में नहीं हैं। पर यह एक थोथा आरोप हैं। संस्कृत नाट्य-कला से प्रभावित होने पर भी आधुनिक एकांकी टेकनिक का इसमें पूरा निर्वाह है और प्रसाद ने नाटक की ही भाँति एकांकी कला का एक समन्वित रूप 'एक घूंट' में प्रस्तुत किया है। यहाँ डॉ० नगेन्द्र का मत द्रष्टव्य है—"प्रसाद पर संस्कृत का प्रभाव है, इसलिए वे एकांकी के जन्मदाता नहीं कहे जा सकते। यह बात मान्य नहीं। एकांकी की टेकनीक का 'एक घूंट' में पूरा निर्वाह है। हाँ, उस पर प्रसादकत्व का गहरा रंग अवश्य है।"[१] डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इसे अन्योपदेशिक एकांकी की संज्ञा दी है।[२] डॉ० खन्ना के अनसार भी "प्रायः यह कथन सर्वसम्मत ही है कि 'एक घूंट' हिन्दी का पहला ऐसा एकांकी है, जिसमें एकांकी की आधुनिक टेकनीक का निर्वाह हुआ है।"[३]

नाटक में स्थान और काल की एकता पूर्ण घटित है। इसकी वस्तु-शैली नवीन और प्रयोग अभिनव है। प्रसाद ने बड़े कौशल से इस प्रतीकात्मक, हास्य-व्यंग्य-प्रधान एकांकी में आनन्दवादी सिद्धान्त की सार्थकता दिखलाई है। पात्रों से लेकर वातावरण तथा परिस्थिति तक में, सर्वत्र प्रतीकों की सफल योजना की गई है और आरम्भ में मुक्त-प्रणय तथा वैवाहिक-प्रणय का कौतुकपूर्ण संघर्ष दिखाते हुए अन्त में एक स्वस्थ जीवन-दर्शन का प्रतिपादन किया गया है। वनलता और प्रेमलता के तर्कों के आगे स्वच्छन्द प्रेम-पुजारी आनन्द की पराजय होती है। वह अन्त में वैवाहिक सम्बन्ध का पक्षपाती हो जाता है। वह अपने पहले वाले विचारों को स्वच्छन्द प्रेम-प्रणाली के समर्थक सिद्धान्त कहकर त्याग देता है। आनन्द रस की 'एक घूंट' में ही मानव-जीवन की सार्थकता है, यही इस कृति का सन्देश है।

---

१. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी नाटक, पृ० १३२।

२. डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० २०९।

३. डॉ० वेदपाल खन्ना : हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० ३०१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'अजातशत्रु' में बुद्ध-काल का इतिहास है। कुमार कुणीक का विद्रोह, रानी छलना, शक्तिमती और मागन्धी के स्वार्थप्रिय षडयन्त्र, गौतम एवं बिम्बसार के चिन्तनपूर्ण दार्शनिक रहस्य, वासवी मल्लिका एवं पद्मावती की सौजन्यपूर्ण शान्तिप्रियता का परिचय देकर नाटककार ने मध्य-युग की प्रामाणिक रूपरेखा प्रस्तुत की है। मगध, कोशल और कौशाम्बी के पारस्परिक संघर्ष से जिस विषम स्थिति की सृष्टि होती है, उसे प्रसाद ने साधु पात्रों के प्रयास से प्रसमित करके सत् पक्ष की विजय घोषित की है।

इस गृहकलह का केन्द्र छलना की महत्वाकांक्षा है और उसकी महत्वाकांक्षा के भीषण रूप ग्रहण करने पर कोशल और कौशाम्बी को मगध के गृह-कलह में भाग लेना पड़ता है। काशी को लेकर उठा विवाद कोशल को अजातशत्रु के विरुद्ध युद्ध में खींचता है। अजातशत्रु पिता बिम्बसार को अपदस्थ कर विमाता वासवी के साथ उन्हें बन्दी-जीवन बिताने के लिए विवश करता है। देवदत्त की गौतम से प्रतिद्वन्द्विता भी अजातशत्रु को दिग्भ्रमित करती है।

दार्शनिक सम्भाषणों, भावुक प्रसंगों और कवित्वपूर्ण स्थलों की प्रचुरता के कारण नाटक अत्यन्त कलात्मक और रमणीय बन पड़ा है। यह प्रसाद की उत्कृष्ट नाट्य-कला की पहली कड़ी है; जिसमें उन्होंने अनेक कथानकों को एक सूत्र में पिरोकर अत्यन्त कौशल से प्रस्तुत किया है, जो अपने प्रभाव-क्षेत्र में एक दिखाई देते हैं।

प्रौढ़ ऐतिहासिक नाट्य-कृतियाँ

१९३३ ई० में लिखा गया समस्या नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद का अन्तिम और अत्यन्त प्रौढ़ नाटक है। इसके द्वारा लेखक ने हिन्दी-नाट्य-जगत् में समस्या-नाटकों की एक नई विधा और दिशा का प्रवर्तन किया। 'विशाख' कृत 'देवी चन्द्र गुप्तम्' को लेखक ने अपनी इस कृति का आधार बनाया है। लेखक ने अपने इस नाटक के सूचना-अंश में स्वयं लिखा है कि "विशाखदत्त द्वारा रचित देवी चन्द्रगुप्त नाटक के कुछ अंश श्रृंगार-प्रकाश और नाट्य-दर्पण से सन् १९२३ की ऐतिहासिक पत्रिकाओं में उद्धृत हुए। तब चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के जीवन के सम्बन्ध में जो नई बातें प्रकाश में आईं, उनसे इतिहास के विद्वानों में अच्छी हलचल मच गई। शास्त्रीय मनोवृत्ति वालों को चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी को पुनर्लग्न असम्भव, विलक्षण और कुरुचिपूर्ण मालूम हुआ। यहाँ तक कि ८वीं शताब्दी के संजात के ताम्रपत्र के पाठ में सन्देह किया जाने लगा। किन्तु जिस ऐतिहासिक घटना का वर्णन करते हुए ७वीं शताब्दी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में वाणभट्ट ने और ११वीं शताब्दी में राजशेखर ने लिखा है, वह घटना केवल जनश्रुति कहकर उड़ाई नहीं जा सकती।"[१]

प्रसिद्ध समुद्रगुप्त के दो पुत्र थे—रामगुप्त और चन्द्रगुप्त। रामगुप्त क्लीव और दुर्बल चरित्र वाला है। चन्द्रगुप्त स्वाभिमानी, योद्धा, पराक्रमी, उत्साही, तेजस्वी और सच्चरित्र पात्र है। अग्रज भाई होने के नाते राजगद्दी रामगुप्त को मिलती है और चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता होने पर भी ध्रुवस्वामिनी का विवाह रामगुप्त से होता है। रामगुप्त राजा होकर भी राज्य की चिन्ता और उसकी रक्षा के लिए कोई उपाय नहीं करता। वह विलासिता में लिप्त रहता है तथा कुबड़े, बौनों के नृत्य में आनन्द लेता है। ध्रुवस्वामिनी उसे नहीं चाहती, अतएव वह राजा होकर भी सदा एक ही मानसिक चिन्ता से ग्रस्त है—"जगत् की अनुपम सुन्दरी मुझसे स्नेह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का राजाधिराज।"[२] इस कथन से रामगुप्त के अन्तस् में चल रहे आन्दोलन का अन्दाज लगाया जा सकता है। इसी प्रकार नाटक के प्रारम्भ से ही प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी के कथन के सहारे उसके जीवन की झलक देते हुए उसके अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण किया है। ध्रुवस्वामिनी का कथन इसे और प्रमाणित कर देता है—"सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर। और इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिए न।"[३]

'ध्रुवस्वामिनी' में रामगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी का पाणिग्रहण एक धार्मिक वन्धन स्वरूप ही है। सच तो यह है कि ध्रुवस्वामिनी के मन-मन्दिर में चन्द्रगुप्त की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। लेकिन तब भी ध्रुवस्वामिनी के मन में मर्यादा की रक्षा का प्रश्न है। वह सामाजिक मर्यादा की रक्षा करती है। लेकिन का-पुरुष रामगुप्त उसकी रक्षा से विमुख हो जाता है। तब ध्रुवस्वामिनी के समक्ष भविष्य के लिए समस्या उठ खड़ी होती है। शकराज के सन्धि-प्रस्ताव को स्वीकार कर रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को शक शिविर में भेजना चाहता है और उसके इस प्रस्ताव का समर्थन चाटुकार आमात्य शिखर स्वामी भी करता है। इस पर अपने स्वाभिमान को छोड़कर कातर भाव से ध्रुवस्वामिनी अपने सतीत्व की रक्षा की प्रार्थना करती है—"राजा, आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई; किन्तु मेरा वह अहंकार

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५।
२. वही, पृ० १७।
३. वही, पृ० १२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चूर्ण हो गया है। मैं तुम्हारी होकर रहूँगी।"[१] लेकिन उत्तर में हृदयहीन क्लीव रामगुप्त कहता है—"जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो।"[२] रामगुप्त के इस उत्तर से ध्रुवस्वामिनी में शाश्वत नारीत्व जागृत हो उठता है और वह अपने को अरक्षित पाकर आत्महत्या करने के लिए प्रस्तुत होती है। इसी समय सहसा चन्द्रगुप्त आकर ध्रुवस्वामिनी को आत्महत्या से विरत करता है और वह स्वयं ध्रुवस्वामिनी के साथ नारी-वेश में शक-शिविर में पहुँचता है। चन्द्रा (स्त्रीवेश में चन्द्रगुप्त) और ध्रुवस्वामिनी के सम्वाद से शकराज उलझन में पड़ जाता है, फिर स्थिति स्पष्ट होती है और चन्द्रगुप्त शकराज को द्वन्द्व-युद्ध में मार डालता है। इस कथा के साथ ही कोमा और शकराज के प्रेम की भी कथा चलती है।

कोमा आचार्य मिहिर की प्रतिपालित कन्या है। वह प्रेम, स्वास्थ्य और सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा है। यौवन के स्पर्श से सद्यःप्रफुल्ल कुसुम कलिका की भाँति मधुर भावनाओं का उसमें संचार है। प्रणय का तीव्र आलोक उसकी आँखों में उज्ज्वल राशि बिखेर रहा है। वह प्रेम करने की ऋतु का आनन्द ले रही है, जिसमें चूकना और सोच-समझ कर चलना दोनों बराबर है। वह 'घने प्रेम तरु तले' बैठकर प्रेम-रस का एक घूंट पीना चाहती है। निम्नलिखित गीत में उसका जीवन दर्शन स्पष्ट है:—

"यौवन तेरी चंचल छाया।
क्षण भर बैठ घूंट भर पी लूं
जो रस तू है लाया
मेरे प्याले में मद बनकर कब तू छली समाया।
जीवन-वंशी के छिद्रों के स्वर बनकर लहराया।
पल भर रुकने वाले ! कह तू पथिक ! कहाँ से आया ?"[३]

शकराज कोमा के प्रेम का आधार है। अपनी भावुकता के प्रवाह में कोमा से एक गहरी भूल हो गई है कि वह शकराज जैसे कपटी, दम्भी, व्यभिचारी की आराध्या बन बैठी है। शकराज का सन्धि-प्रस्ताव जब कोमा सुनती है, जिसमें ध्रुवदेवी की माँग है तो उसका विरोध करती है। वहाँ उसका चरित्र आधुनिक जागृत-नारी की तरह है। वह पुरुष द्वारा स्त्री-जाति के अपमान का विरोध

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० २८।
२. वही, पृ० २८।
३. वही, पृ० ४२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करती है। कथा के इस अंश पर भी विदेशी प्रभाव की छाया है। लेकिन कोमा और मिहिरदेव के विरोध करने पर भी कामान्ध शकराज एक नहीं सुनता। तब मिहिरदेव अग्निलोहित धूमकेतु की ओर संकेत कर शक के सर्वनाश की भविष्य-वाणी करते हैं और कोमा को अन्यत्र जाने का आदेश देते हैं। इस पर कोमा मोह और प्रेम से कातर होकर कहती है—"(सकरुण)—तोड़ डालूं पिता जी! मैंने जिसे आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरे आँख वन्द कर चलने में, मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूं एक झटका, उसकी हरी-भरी पत्तियाँ कुचल जायँ और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे। ना, ऐसी कठोर आज्ञा न दो!"[१]

वस्तुतः प्रसाद ने अपने इस नाटक द्वारा तत्कालीन ज्वलन्त समस्या—विधवा और नारी स्वातन्त्र्य की समस्या—का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। नाटक का शिल्प कलापूर्ण, सन्तुलित तथा संगठित है। इसमें सांकेतिक प्रणाली का भी प्रथम बार उपयोग हुआ है।

'चन्द्रगुप्त' १९३१ में रचित प्रसाद का सवसे वड़ा नाटक है। इसमें २५ वर्षों का घटना-क्रम और इतिहास चित्रित हैं। इसका रचना शिल्प 'मेकवेथ' और 'रोमियो जूलियस' से वहुत अधिक मेल खाता है। इसका कथानक अत्यन्त विस्तृत है। इसमें अनेक घटनाओं की भरमार हैं। लेखक का यह प्रयत्न है कि वह इसे पूर्ण ऐतिहासिक नाटक बना सके, फिर भी साज-सँवार के लिए उसने यत्र-तत्र कल्पना का भी सहारा लिया हैं। प्रसाद ने सबसे पहले चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में विस्तृत ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया था। यह विवेचना सम्वत् १९७६ में प्रसाद ने प्रकाशित भी की थी, जो अब 'चन्द्रगुप्त' नाटक की भूमिका के रूप में सुरक्षित है। उस समय तक देशी और विदेशी विद्वान् चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में उदासीन थे। लेखक के मन में इस विवेचन और प्रकाशन के समय नाटक की रचना की भावना अवश्य रही होगी। अगस्त १९१२ में इसी के आधार पर 'कल्याणी परिणय' की रचना इस बात को प्रमाणित करती है।

'चन्द्रगुप्त' एक विस्तृत कथानक और लम्वे काल पर आधृत होने के बावजूद भी अत्यन्त संगठित और प्रभावशाली नाटक के रूप में सामने आया है। इसमें भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-कला का मणि-काञ्चन योग हैं। इसका प्रारम्भ जहाँ पाश्चात्य पद्धति के अनुकरण पर युद्धों द्वारा हुआ है, वहीं इसका अन्त भारतीय सिद्धान्त के अनुसार सन्धि-स्थापना और चन्द्रगुप्त तथा कार्नेलिया के विवाह से हुआ है।

---

१. प्रसादः ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नन्दवंश के अत्याचार को मिटाकर मौर्य-साम्राज्य की स्थापना करना तथा विभिन्न देशी नरेशों की फूट को मिटाकर राष्ट्रीयता का भाव जगाना, इस नाटक का प्रधान उद्देश्य है। देश की वर्तमान राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से इस नाटक के कथानक का प्रतीकात्मक प्रयोग है। जिस प्रकार नन्द का शासन अत्याचार और विलास का शासन था, जिस तरह भारतीय नरेशों की आपसी फूट के कारण सिकन्दर भारत के कुछ भाग में घुस आया; उसी प्रकार आपसी मनोमालिन्य के कारण प्रसादयुगीन विदेशी शासक भी देश के भीतर कुछ सीमा तक घुस आने में सफल हुए। बाह्य-शत्रु और अत्याचार को मिटाने के लिए सम्पूर्ण राष्ट्र को उसी प्रकार एक होने की आवश्यकता है, जिस प्रकार चन्द्रगुप्त नाटक में अन्त तक सिंहरण, पौरव, आम्भीक आदि एक हो जाते हैं। आम्भीक का चरित्र भारतीय गद्दारों के चरित्र का चित्र उपस्थित करता है, जो इसी राष्ट्र के होकर, खुलकर या छिपकर, अंग्रेजों की सहायता करते हैं। चाणक्य के चरित्र में महात्मा गाँधी की राष्ट्रसेवा की झलक मिलती है। जिस प्रकार बापू ने देश के भीतर आपसी कलह-भाव को दूर कर स्वतन्त्रता-पथ पर यहाँ की जनता को अग्रसरित किया, उसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त' नाटक में भी राजनीतिक आचार्य चाणक्य ने मौर्यकालीन जनता की आपसी फूट दूर कर सिकन्दर का सामना किया। अत्याचारी और विलासी शासन का अन्त दिखाने के लिए ही नन्द-शासन का अन्त दिखाया गया है। निश्चय ही इस परिणाम से स्वतन्त्रता-संग्राम के सजग प्रहरी युवकों को अन्यायी सरकार के निश्चित अन्त का संकेत मिल जाता है। इस प्रकार इस नाटक में राष्ट्रीयता प्रमुख हो उठी है।

वस्तुतः नन्द-वंश का विध्वंस, सिकन्दर का अभियान, सिल्यूकस पर चन्द्रगुप्त की विजय, कार्नेलिया से परिणय, मौर्यों का शासन और भारतीय राष्ट्रीयता के पुनर्गठन की समस्या को इस नाटक का केन्द्र-बिन्दु बनाया गया है। नाटक की विशेषता लेखक की विभिन्न घटनाओं को एक सूत्र में पिरोने में है। लेखक ने अपने इस नाटक में अत्यन्त जीवन्त, मनोरम और गतिशील पात्रों का चित्र प्रस्तुत किया है। चाणक्य, राक्षस, चन्द्रगुप्त, कार्नेलिया, कल्याणी, मालविका, सिंहरण, सिल्यूकस आदि पात्र अत्यन्त सचेतन और सजीव रूप में चित्रित हैं। नाटक का प्रारम्भ आक्रमण से और उसका अन्त शान्तिपूर्ण सन्धि द्वारा होता है।

लेखक ने इस नाटक में भारतीय दर्शन, संस्कृति और रागतत्व का उज्ज्वल पक्ष प्रस्तुत किया है। राष्ट्रीय भावना अत्यन्त उच्च स्वर में मुखरित है। इस नाटक के माध्यम से लेखक ने राज्यों एवं रियासतों के समक्ष अंग्रेजी सत्ता से मोर्चा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेने का एक विकल्प प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार मालव आदि के साथ एकजुट होकर चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर और सिल्यूकस जैसी शक्तियों को भारत की सीमा में प्रविष्ट नहीं होने दिया, उसी प्रकार वर्तमान भारत के राज्य और राजा एकजुट होकर अंग्रेजी-सत्ता से लोहा ले सकते हैं। इस नाटक द्वारा राष्ट्र के प्रति कर्तव्य-भावना का एक उज्ज्वल स्वरूप उपस्थित करना प्रसाद का लक्ष्य रहा हैं। इस नाटक में चाणक्य के महाकाव्योचित व्यक्तित्व के कारण विरोध पक्ष बहुत दुर्बल हो गया है। स्कन्दगुप्त के सदृश इसमें चरित्रगत वैविध्य नहीं है। चन्द्रगुप्त की वस्तु योजना भी शिथिल है, तथा काल-संकलन का अभाव भी खटकता है। चन्द्रगुप्त नाटक में नायिका का प्रश्न भी जटिल रह गया है।

'स्कन्दगुप्त' प्रसाद के सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में प्रतिष्ठित है। उज्जयिनी के शासक कुमार गुप्त की दो रानियां हैं। बड़ी का नाम देवकी और छोटी का नाम अनन्तदेवी है। देवकी के पुत्र स्कन्दगुप्त हैं और अनन्तदेवी के पुत्र पुरगुप्त भटार्क महामात्य है और अनन्तदेवी के कुचक्रों को मूर्तरूप देने का माध्यम भी। कुमार गुप्त एक विस्तृत साम्राज्य का शासक हैं। अनन्तदेवी षड्यंत्र द्वारा राजा की हत्या करवा देती है और पुरगुप्त को उसका उत्तराधिकारी घोषित करवा देती है एवं देवकी की हत्या का षड्यंत्र रचती है। स्कन्दगुप्त को पिता की मृत्यु का समाचार युद्ध क्षेत्र में मिलता है। वह आकस्मिक रूप से पहुँचकर अपनी माँ की रक्षा करता है। उधर मालव का वह राजाधिराज घोषित किया जाता है। हूणों से सारा गुप्त साम्राज्य आक्रांत होता है। वह उन्हें देश से बाहर खदेड़ने के लिए लम्बे समय तक युद्ध करता है। अनेक असफलताओं के बाद अन्ततः उसे सफलता मिलती है। इसके अतिरिक्त पुरुष पात्रों में प्रमुख हैं- मातृगुप्त, मुद्गल, शर्वनाग, प्रपंचबुद्धि, बन्धुवर्मा, भीमवर्मा, पर्णदत्त, धातुसेन आदि। नायिका के रूप में देवसेना आती है पर वह नायक स्कन्दगुप्त की विवाहिता या इस लोक की स्त्री नहीं है। विजया, जयमाला, मालिनी आदि अन्य स्त्री पात्र हैं। नाटक के प्रारम्भ से ही इस बात का ज्ञान हो जाता है कि गुप्तवंश में राज्यारोहण के सम्बन्ध में कोई निश्चित विधान नहीं है। इससे स्कन्दगुप्त के मन में राज्य के प्रति उदासीनता का भाव जाग्रत होता है वह वीतरागी बन जाता है। इसके बावजूद भी वह राज्य और प्रजा के लिए अपने कर्त्तव्य के प्रति नाटक में आदि से अन्त तक सचेत रहता है। लगता है पर्णदत्त, चक्रपालित आदि पात्रों की सर्जना स्कन्दगुप्त को अपने उत्तरदायित्व की याद दिलाने के लिए ही हुई है। स्कन्दगुप्त के जीवन में आदि से अन्त तक नाट्य और आन्तरिक संघर्षों का द्वन्द्व चलता रहता है। वस्तुतः उसके जीवन के दो पक्ष प्रकाश में आते हैं—(१) वैयक्तिक भावुकता-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पूर्ण जीवन और (२) राज्य प्रजाहित कर्ममय जीवन। गुप्त साम्राज्य के पुनर्गठन की घटना ही इस नाटक का केन्द्रबिन्दु है। हूंणों से आक्रांत राष्ट्र के पुनरुद्धार एवं राज्य में सुख-शान्ति की स्थापना इस नाटक का प्रधान लक्ष्य है। नाट्य कला की दृष्टि से यह कृति अत्यन्त सफल है।

डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा के अनुसार भी "प्रस्तुत नाटक में 'प्रसाद' की पद्धति ने एक विशेष ढंग पकड़ा है। यह विशेषता भारतीय एवं पाश्चात्य शैलियों के समन्वय में दिखायी पड़ती है। इस नाटक में नाटकीय सक्रियता आद्यन्त जागरित बनी रहती है।"[१]

नाटक का अन्त पूर्णतया पाश्चात्य प्रणाली पर किया गया माना जाता है। पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार नाटक का अन्त दुखात्मक होता है। पर हम स्कन्दगुप्त के अन्त को दुखात्मक की संज्ञा नहीं दे सकते। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा भी है—"स्कन्दगुप्त नाटक को परिणाम में सुखान्त बनाया गया है, पर उसका वस्तु विन्यास दुखान्त नाटक की पद्धति पर रचा गया है।"[२] वस्तुतः स्कन्दगुप्त का सम्पूर्ण रचनातन्त्र प्रारम्भ से लेकर अन्तिम दृश्य के पूर्व तक दुखान्त ही है। स्कन्दगुप्त को हर क्षेत्र में असफलता मिलती है। नाटक बड़ी तीव्रता से दुखान्तता की ओर अग्रसर हो रहा था, पर प्रसाद ने बड़े कौशल से उसे मोड़ देकर भारतीय आदर्श पर सुखान्त बना दिया है।

अन्य स्फुट और अपूर्ण नाटक

'अग्निमित्र', 'यशोधर्म देव', तथा 'इन्द्र' के नाम स्फुट और अपूर्ण नाटकों में उल्लेख्य हैं। 'अग्निमित्र' में इरावती के कथा प्रसंग पर आधारित शुंग-कालीन राज्य के साम्प्रदायिक द्वन्द्व का अत्यन्त मनोहारी इतिहास प्रस्तुत है। बौद्धों की निष्क्रिय करुणा और दम्भपूर्ण विचारणा पर आर्यों के आनन्दवाद की विजय घोषणा ही इस अपूर्ण एवं अप्राप्य नाटक का विषय है। 'यशोधर्म देव' और 'इन्द्र' में प्रसाद के द्वारा नवीन नाटकीय रूपरेखा का संयोजन मात्र हुआ था। उसे स्वरूप नहीं प्राप्त हो सका था। कोई विशेष संकेत उपलब्ध न रहने के कारण इन कृतियों का विवेचन कर पाना नितान्त कठिन कार्य है।

---

१. डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १३२।

२. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० १६४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पाश्चात्य प्रभाव : आरोप-निराकरण

राज्यश्री

राज्यश्री की संरचना में प्रसाद ने आकस्मिक घटनाओं का सर्वाधिक सहारा लिया है। इन आकस्मिक घटनाओं के प्राधान्य पर शेक्सपीयर का ही प्रभाव प्रतीत होता है। जिस प्रकार समुद्री डाकुओं द्वारा जहाज के लूटे जाने पर भी संयोग से हेमलेट बच जाता है, क्योंकि लुटेरे दस्युओं का सरदार हेमलेट के पिता का ऋणी निकलता है, या जिस प्रकार 'आथेलो' में डिसडिमोना का रूमाल गिरना बिल्कुल एक आकस्मिक घटना है, उसी प्रकार 'राज्यश्री' नाटक में जब विकट घोष देवी की प्रतिमा के सामने ह्वेन सांग की बलि देने के उपक्रम में है, तब आंधी और अंधकार की आकस्मिक अवतारणा की गई है। इसी अन्धकार में संयोग से ह्वेनसांग भाग निकलता है। इसी प्रकार प्रसाद के प्रायः सभी नाटकों में आकस्मिक घटनाओं की अवतारणा शेक्सपीयर के नाटकों के समान है। देवगुप्त के साथ सुरमा अपने जीवन की अपरिमित लालसा की पूर्ति करती हुई अन्त में राजरानी का पद ग्रहण करती है। इस प्रकार एक साधारण पुष्पवाली स्त्री का रानी के रूप में कथा की संयोजना नाटककार की स्वच्छन्दतावादी भावना का उदाहरण है। इसका मूल कारण पाश्चात्य संसार की जनतन्त्रवादी भावना है जिसमें व्यक्ति अपने गुणों के कारण बड़े-से-बड़े पद का अधिकारी हो जाता है। एक सामान्य नागरिक से असामान्य होने की कल्पना पाश्चात्य संसार की वस्तु है। प्रसाद ने अपने नाटकों में इस विचारधारा को स्थान दिया है।[1]

डॉ० सिंह के इस मत से सहमत हो पाना कठिन है कि संयोग की योजना प्रसाद ने पाश्चात्य-शैली से उधार ली है। वस्तुतः अनेक प्राचीन भारतीय नाटकों का यह मूलाधार है। कालिदास के 'शकुन्तला' नाटक की पूरी भित्ति ही संयोग की आधार शिला पर स्थिर है। 'संयोग' ही है कि दुष्यन्त शिकार के पीछे-पीछे शकुंतला के तपोवन में पहुँचता है और उससे गन्धर्व विवाह करता है। संयोग का ही परिणाम है कि दुष्यन्त द्वारा दी गयी अँगूठी शकुन्तला खो देती है और पति-परित्यक्ता बनती है। 'संयोग' से ही अँगूठी मिलती है और दुष्यन्त विरह व्याकुल होता है। इसलिए यह कहना उचित नहीं कि 'संयोग' पाश्चात्य नाट्य—कला से उधार लिया हुआ तत्व है। साधारण से असाधारण पद प्राप्ति के भी

---

१. डॉ० उपेन्द्र नारायण सिंह : आधुनिक हिन्दी नाटकों में आँग्ल नाटकों का प्रभाव, पृ० ११०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उदाहरण प्राचीन भारतीय नाटकों में भरे पड़े हैं। शान्तनु से धीवर बाला का व्याह, राजरानी पद की प्राप्ति और भीष्म का आजीवन कौमार्य व्रत धारण करने का संकल्प इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। सरमा के निर्माण में प्रसाद भारतीय प्रभाव से अभिभूत हैं, यह न कहकर यह सिद्ध करना कि सरमा के चरित्र निर्माण के पीछे शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव है, बहुत संगत नहीं है।

जनमेजय का नागयज्ञ

अनेक विद्वानों के अनुसार इस नाटक के कथानक में जहाँ तक दो जातियों के संघर्ष का प्रसंग है, वह शेक्सपीयर के 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' के कथानक की तरह का है। उसमें भी ईसाई और यहूदी जाति का संघर्ष चित्रित है। शाइलाक आततायी यहूदी है जो ईसाई धर्म के समर्थकों को देखना नहीं चाहता। लेकिन, शाइलाक की पुत्री जेसिका उसकी इस भावना का घोर विरोध करती है और एक ईसाई युवक से विवाह कर जाति प्रथा की व्यर्थता को प्रमाणित करती है। जेसिका का यह विवाह 'जनमेजय का नागयज्ञ' नाटक में मणिमाला के विवाह की भाँति है, क्योंकि नागकन्या मणिमाला का विवाह आर्य सम्राट जनमेजय से होता है। इसी प्रकार आर्यकन्या सरमा का विवाह भी एक नाग युवक से होता है। ईसाई जाति के प्रति अपनी घृणा भावना के कारण ही वह शर्त के अनुरूप एण्टानियों की छाती की मांस काटना चाहता है। दूसरी तरफ एन्टानियों उदार चरित्र का व्यक्ति है जो नाटक के अन्त में शइलाक को क्षमा प्रदान करता है। शेक्सपीयर के अनेक नाटकों के संघर्ष एवं प्रतिशोध के भाव की तरह प्रसाद के उक्त नाटक में भी संघर्ष और प्रतिशोध के भाव उभर कर सामने आए हैं। इस नाटक में नियति की प्रमुखता शेक्सपीयर के नाटकों की तरह ही है। एक स्थल पर जनमेजय नियति की दुहाई देता है—"मनुष्य क्या है? प्रकृति का अनुचर और नियति का दास या उसकी क्रीड़ा का उपकरण।"[1] शेक्सपीयर की स्वच्छन्दतावादी शैली का प्रभाव प्रसाद के नाटकों में सर्वत्र परिलक्षित होता है। इस नाटक में जनमेजय और मणिमाला का प्रणय सम्बन्ध नाटककार की स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। सरमा आधुनिक जागरूक नारी की तरह नारी के अधिकार की रक्षा चाहती है।[2]

---

१. प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ४७।

२. डॉ० उपेन्द्रनारायण सिंह : आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आँग्ल नाटकों का प्रभाव, पृ० ११३-१४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद के नाटकों में आँग्ल प्रभाव के अन्वेषणकर्त्ता विद्वान् का यह मत पूर्णतया भ्रामक है। डॉ० सिंह ने अपने उपर्युक्त मत से नाटक की मूल कथावस्तु उसके शिल्प आदि सभी को पाश्चात्य प्रभाव से पूर्ण बता दिया है। डॉ० सिंह के इस मत से सहमत हो पाना कठिन है कि नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु की संरचना प्रसाद ने शेक्सपीयर के 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' के आधार पर की है। वस्तुतः भारत में स्वयं हिन्दू-मुस्लिम दो जातियों का संघर्ष अपने विकट रूप में प्रसाद के समक्ष था। हिन्दू-मुस्लिम जनता एक दूसरे के खून की प्यासी थी। महात्मा गाँधी इन दोनों जातियों में सौमनस्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। इस प्रकार प्रसाद ने अपनी युगीन ज्वलन्त समस्या का अतीत के पटल पर समाधान खोजने का प्रयत्न किया है। उन्होंने वर्तमान भारत में संघर्षरत हिन्दू-मुसलमान के समक्ष आर्य और नाग जाति का उदाहरण रखा जो अन्ततः अपने संघर्ष और द्वेष भाव को भुलाकर एक दूसरे से प्रेम में आबद्ध हो गई थीं। इसलिए इसकी समानता 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' में खोजना तथा यह सिद्ध करना कि प्रसाद ने कथावस्तु का संगठन उसी के अनुकरण पर किया और मणिमाला तथा सरमा के प्रणय सम्बन्धों की जेसिका से तुलना करना आदि नितान्त भ्रामक तथ्य हैं। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य में नियति के प्रभाव को देखा जा सकता है, इसलिए यह कहना उचित नहीं कि शेक्सपीयर के अनुकरण पर प्रसाद ने इस नाटक में नियति को स्थान दिया है। यह अवश्य है कि प्रसाद ने शेक्सपीयर के नाटकों को पढ़ा था, वे उनसे प्रभावित हो सकते हैं। पर सिर्फ शिल्प विधान, संघर्ष, प्रतिरोध, अन्तर्द्वन्द्व और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के ग्रहण में ही यह प्रभाव परिलक्षित होता है।

अजातशत्रु

'अजातशत्रु' के प्रथम संस्करण में पद्यात्मक संवाद विद्यमान थे जिन्हें अगले संस्करण में हटा दिया गया। विद्वानों को इस नाटक पर अंग्रेजी नाट्य-शैली का अत्यधिक प्रभाव दिखाई देता है। नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उभारने का प्रयत्न पाश्चात्य प्रणाली का अनुकरण माना जाता है। इसमें अनेक क्रान्तियों और षड्यन्त्रों का चित्रण पाश्चात्य नाटकों के प्रभाव को प्रमाणित करता है। शेक्सपीयर की नाट्य—कला का स्पष्ट प्रभाव इस नाटक पर दिखाई देता है। सम्पूर्ण नाटक में द्वन्द्व और संघर्ष का चित्रण शेक्सपीयर के नाटकों की तरह है। विरुद्धक का चरित्र इसी तरह संघर्षपूर्ण है। 'अजातशत्रु' की महत्वाकांक्षा 'मेकबेथ' से कम नहीं है। 'अजातशत्रु' के स्वगत कथन में 'मैकबेथ' के स्वगत कथन की छाप है। दोनों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही पात्रों के कथनों में उनके मानसिक संघर्ष का पता चलता है। शेक्सपीयर के किंगललियर की छाप इस नाटक पर है। राजा लियर की तीन पुत्रियाँ हैं–गानेरिल, रेगन और काडिलिया—गानेरिल और रेगन का पिता के प्रति दुर्व्यवहार होता है। राजा उनसे ऊबकर काडिलिया पर प्रेम रखता है। प्रसाद ने 'अजातशत्रु' के चरित्र में उक्त भाव को दर्शाया है। माता के कहने पर 'अजातशत्रु' भी पितृ-विरोधी बन जाता है। प्रसाद के इस नाटक की सम्पूर्ण कथा का विकास शेक्स-पीयर के 'किंगलियर' की तरह है जिस प्रकार शेक्सपीयर के उक्त नाटक में 'गानेरिल' और उसके पति एल्वनी का विरोध चित्रित है, उसी भाँति प्रसाद के इस नाटक में भी बिम्बसार, छलना, प्रसेनजित, शक्तिमती तथा उदयन मागंधी के विरोध का प्रदर्शन इस नाटक में हुआ है। इससे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय नाट्य सिद्धान्तों के अनुसार किसी भी नाटक का नायक मानवीय उच्च-शील गुणों से युक्त, सत्यव्रती और यशस्वी होना चाहिए। पर प्रसाद के इस नाटक के नायक अजातशत्रु में इन गुणों का अभाव है। वह पितृद्रोही, कपटी, क्रोधी और द्वेषी है। प्रसाद के इस तरह के चरित्रांकन का मूल कारण उन पर पाश्चात्य प्रभाव ही दिखाई देता है। शेक्सपीयर के 'मैकबेथ' के मैकवेथ की भाँति 'अजातशत्रु' लोभी, दुराचारी है। वस्तु विधान की दृष्टि से इस नाटक पर आँग्ल नाटकों का प्रभाव सर्वाधिक सिद्ध है।

मैं यहाँ भी उपर्युक्त मत से सहमत नहीं हूँ कि प्रसाद ने इस नाटक की कथावस्तु की संयोजना पाश्चात्य नाटकों के अनुकरण पर की। चरित्रों, और घटनाओं का साम्य एक संयोग मात्र है। छलना जैसी कुचक्र में लिप्त, द्वेष और ईर्ष्याभाव रखने वाली रानियों की भारत में कमी नहीं रही है। अजातशत्रु जैसे महत्वाकांक्षी चरित्र भी भारत में अनेक मिल जायेंगे। निश्चय ही मुगल साम्राज्य के संघर्ष की कथा इस नाट्य के निर्माण के समय प्रसाद के मानस पर अंकित रही होगी। अतः अजातशत्रु की पूरी समस्या भारत की अपनी समस्या है। हाँ मैं यह बात अवश्य मान सकता हूँ कि पात्रों के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, संघर्ष आदि में पाश्चात्य प्रभाव है। अजातशत्रु जैसे चरित्र को भी नाटक का नायक बनाने के पीछे पाश्चात्य प्रभाव हो सकता है। पर प्रसाद ने अजातशत्रु को एक साधारण चरित्र के रूप में उपस्थित किया है जिसमें मानवीय गुण और दोष दोनों विद्यमान हैं। मल्लिका के शील और शान्ति के उपदेश से वह अपने विरोधी प्रसेनजित को छोड़ देता है पर माँ छलना के धिक्कार से पुनः उसमें दुर्वृत्तियाँ जन्म ग्रहण करती हैं। उसके हृदय में प्रेम के अंकुर भी हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ध्रुवस्वामिनी

चन्द्रगुप्त के विजयोद्दीप्त आकृति के प्रति ध्रुवस्वामिनी का आकृष्ट होना एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इस मनोवैज्ञानिकता पर पाश्चात्य मनोविश्लेषण का प्रभाव भी हो सकता है। अन्त में ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करके प्रसाद ने आधुनिक नारी जीवन की एक प्रधान समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। ऐसा करके वस्तुतः प्रसाद ने अपने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का ही परिचय दिया है। नाटककार की इस स्वच्छन्दतावादिता पर आधुनिक बुद्धिवादी पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव है। ध्रुवस्वामिनी विधवा है, विधवा विवाह या पति के क्लीव होने पर स्त्री का पुनर्विवाह प्रसाद ने धर्माधिकारी के मुख से धर्म-संगत बता कर भारतीयता का भी परिचय दिया है। धर्म के ठेकेदार पुरोहित के सामने आते ही ध्रुवस्वामिनी प्रश्न करती है—"आपका कर्मकाण्ड और आपके शास्त्र क्या सत्य हैं,जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है।"[1] सचमुच विश्व में सदा ही नारी का यह अपमान होता रहा है। यह प्रश्न अतीत काल से ही बुद्धिवादी महिला संसार में गूँजता रहा है। अन्त में पुरोहित के उत्तर में प्रसाद ने युग-युग की इस महती समस्या का समाधान प्रस्तुत कर दिया है—"यह रामगुप्त, जिसे अपनी स्त्री को दूसरे की अंकगामिनी बनने के लिए भेजने में संकोच नहीं, यह क्लीव नहीं तो और क्या है? मैं स्पष्ट कहता हूं कि धर्मशास्त्र रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की आज्ञा देता है।"[2]

प्रसाद को नारी के इस मोक्ष-तत्व का बीज भारतीय परम्परा के इतिहास में चाहे जो मिला हो, पर इसके अतिरिक्त उन्हें पाश्चात्य आधुनिक नाटककारों की रचना में भी यह तथ्य मिला। योरप की उन्नीसवीं शती में नारी समस्या लेकर इब्सन की रचनाओं का बहुत नाम हुआ। "हिन्दी नाटककारों को इब्सन के 'दि डाल्स हाउस' में यह विचार मिला कि पुरुष स्त्री को किस मात्रा में स्वतन्त्रता दे सकता जिससे नारी का व्यक्तिगत विकास अवरुद्ध न हो सके।"[3] प्रसाद के इस नाटक की तरह जार्ज बर्नार्ड शॉ की 'मैन एण्ड सुपर मैन' नामक रचना में भी स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य जीवन की अनेक समस्याओं का विवेचन किया गया है। हो सकता है शॉ और इब्सन का सम्मिलित प्रभाव प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी' पर हो। लेकिन उक्त आँग्ल नाटककारों में जहाँ सिर्फ आधुनिक

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६४।

२. वही, पृ० ७८।

३. डॉ० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक : उदभव और विकास, पृ० ४८२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाग्रत नारी की समस्या का चित्रण है, वहाँ प्रसाद ने भारतीय मत की पुष्टि करते हुए उक्त समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है।[1] डॉ० पुरोहित ने ठीक ही लिखा है—"आधुनिक अंग्रेजी समस्या नाटकों से इसमें यही भेद है कि यहाँ समस्या का हल भी प्रस्तुत कर दिया गया है। यह परम्परावादी नाटकों और समस्या-नाटकों के बीच की सीढ़ी के रूप में दिखाई देता है।"

कोमा का अन्तर्द्वन्द्व बहुत ही उच्च धरातल पर इस नाटक में प्रकाशित है। यह प्रेम के क्षेत्र में अपनी हार स्वीकार कर पश्चात्ताप भी करती है तथा पाश्चात्य आधुनिक समस्या नाटकों के नारी चरित्र की भाँति अन्त में कामुक शकराज को छोड़कर चली भी जाती है। इब्सन की 'दि डाल्स हाउस' की नायिका जिस प्रकार पति के अत्याचार से ऊब कर घर छोड़ कर चली जाती है, उसी भाँति कोमा भी गृह त्याग करती है। आचार्य मिहिरदेव की भविष्यवाणी 'मेकवेथ' की भविष्यवाणी की तरह ही सत्य होती है। 'जूलियस सीजर' के सीजर को भी भविष्यवक्ता आने वाले १५ मार्च के दिन होने वाले उसके अनिष्ट की भविष्य-वाणी सुनाता है, लेकिन सीजर भी 'ध्रुवस्वामिनी' के शकराज की भाँति उस भविष्य-वाणी की परवाह नहीं करता। शेक्सपीयर के अलौकिक पात्र की भाँति ही मिहिरदेव भी है। मिहिरदेव की भविष्यवाणी की उपेक्षा के कारण शेक्सपीयर के सीजर की भाँति ही शकराज भी पतन के गर्त में जा गिरता है। उसकी हत्या होती है।

नाटक के पात्रों के मनोवैज्ञानिक संघर्ष-चित्रण में प्रसाद ने आँग्ल नाटकों के प्रभाव को भी ग्रहण किया है। 'हेमलेट', 'आथेलो', 'मैकवेथ', 'डिसडिमोना' आदि का द्वन्द्व-चित्रण आँग्ल नाटक में देखा जा सकता है। आधुनिक युग की नारी समस्या ध्रुवस्वामिनी नाटक का प्रधान विषय है। युग-युग से भारत में नारी उपेक्षित रही है। पुरुष सदा से उसे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक दासता की बेड़ी में बाँधता रहा है। प्रसाद ने अपने नाटकों में नारी उद्धार की समस्या चित्रित कर उसका निदान भी प्रस्तुत किया है। आधुनिक योरप के बुद्धिवादी नाटककारों में इब्सन इस दिशा में सबसे आगे माने जाते हैं। उसके 'दि डाल्स हाउस' और 'घोस्ट्स' में नारी समस्या ही प्रधान है। प्रसाद के कई निबन्धों से पता चलता है कि उन्होंने शेक्सपीयर, इब्सन, जार्ज बर्नार्ड शा आदि नाटककारों का विशेष अध्ययन किया था। इसलिए उनके नाटकों का प्रभाव प्रसाद के नाटकों पर मिल जाना स्वाभाविक है।

---

१. डॉ० सिंह : आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आँग्ल प्रभाव, पृ० १३१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पाश्चात्य नाटकों की तरह ध्रुवस्वामिनी नाटक में भी कई वर्जित दृश्य दिखाए गए हैं। रामगुप्त और शकराज की हत्या का दृश्य रंगमंच पर दिखाया गया है। शेक्सपीयर के नाटकों की भाँति ही प्रसाद ने भी स्वगत कथनों के माध्यम से पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डाला है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में ध्रुवस्वामिनी, रामगुप्त, कोमा आदि के कथनों में यह सत्य मुखरित है।

चन्द्रगुप्त

इस नाटक में संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व अपने चरम रूप में प्रस्तुत है। लेखक ने इसमें पूर्वी और पाश्चात्य दोनों नाट्य शैलियों का सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है। पाँच अंकों के स्थान पर इसमें चार अंक रखे गए हैं।

प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक पर बँगला साहित्य के नाटककार द्विजेन्द्र लाल राय के नाटक का सीधा प्रभाव माना जाता है। स्वयं राय के नाटकों पर आँग्ल प्रभाव स्पष्ट है। फलस्वरूप प्रसाद के इस नाटक पर भी आँग्ल प्रभाव है।[1]

राजनीतिक कुचक्र की आँधी में भटकती हुई नारी का चित्रण विदेशी साहित्य की विशेषता रही है। चन्द्रगुप्त में अलका, सुवासिनी आदि नारी पात्रों का जो राजनीतिक उलझनपूर्ण चित्रण हुआ है, वह आँग्ल प्रभाव ही है। . . .शेक्सपीयर के नाटकों में मानसिक द्वन्द्व का जो चित्रण हमें मिलता है वह चन्द्रगुप्त नाटक में भी वर्तमान है। 'हेमलेट', 'मैकवेथ' आदि नाटकों में हेमलेट, मेकवेथ आदि पात्र जितने दुर्बल चरित्र हैं, प्रसाद का चन्द्रगुप्त भी उतना ही दुर्बल चरित्र है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। एक स्थल पर चन्द्रगुप्त अलका से बातें कर रहा है और दूसरी तरफ से चाणक्य आकर कहता है—"अभी छोकरियों से बातें करने का समय नहीं है।" वह भीगी बिल्ली बन जाता है। मैकवेथ के समान ही चन्द्रगुप्त भी मानसिक द्वन्द्व में पड़ा दीखता है। एक स्थल पर वह मालविका से कहता है—"संघर्ष ! युद्ध देखना चाहती हो, तो मेरा हृदय फाड़कर देखो मालविका आशा और निराशा का युद्ध ! भावों का अभाव से द्वन्द्व। कोई कमी नहीं।"[2] जिस प्रकार 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' में पोर्सिया पुरुष वेश में न्यायालय में प्रविष्ट होती है, उसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त' की कल्याणी भी नर वेश में युद्ध स्थल में पहुँचती है। . . . प्रसाद ने दाण्ड्यायन मुनि का सृजन 'शेक्सपीयर' के अलौकिक पात्र की तरह किया

---

१. डॉ० सिंह : आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आँग्ल नाटकों का प्रभाव, पृ० १२४।

२. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १६०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है, जिस प्रकार 'मैकवेथ' की जादूगरनियाँ मैकवेथ के बारे में भविष्यवाणी करती हैं, कि एक दिन वह स्काटलैण्ड का राजा बनेगा, उसी प्रकार 'चन्द्रगुप्त' में दाण्ड्यायन मुनि भी चन्द्रगुप्त के बारे में भविष्यवाणी करते हैं—"अलक्षेन्द्र सावधान! देखो, यह भारत का भावी सम्राट् तुम्हारे सामने बैठा है।"[1] दाण्ड्यायन और जादूगर-नियाँ, दोनों की भविष्यवाणियाँ सच होती हैं। दोनों सम्राट् बनते हैं। पाश्चात्य आधुनिक नाटकों की ही भाँति यहाँ भी स्त्रियाँ गुप्तचर बनती हैं। मालविका, अलका, सुवासिनी आदि प्रमुख स्त्री पात्र प्राय: गुप्तचर का काम करती हैं। पाश्चात्य नाटकों की भाँति इस नाटक में भी अनेक वर्षों की घटनाओं का संचय है। इसमें लगभग २५ वर्षों की घटनाओं का संयोजन है। शेक्सपीयर के नाटकों की कालावधि भी इतनी ही लम्बी पायी जाती है। नियति का प्रभाव भी नाटक पर बड़ा तीव्र है।

पाश्चात्य आधुनिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का प्रभाव भी इस नाटक पर है। चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अलका, सुवासिनी का वहुत सुन्दर मनोविश्लेषण हुआ है। प्रसाद ने गीत-योजना के सहारे भी पात्रों का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया है। शेक्सपीयर ने भी गीत के सहारे अपने पात्रों के मनोभावों को स्पष्ट किया है। रचनातंत्र और शैली की दृष्टि से भी नाटककार ने पौर्वात्य और पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्तों का समन्वय प्रस्तुत किया है। प्राच्य-पाश्चात्य नियमों से नाटक में कम-से-कम पाँच अंक होने चाहिए। प्रसाद ने उक्त नाटक में चार अंक रखकर अपनी मौलिकता प्रतिपादित की है। पाश्चात्य नाटकों की भाँति प्रसाद ने भी अपने इस नाटक में रंगमंच पर कल्याणी, पर्वतेश्वर, नन्द आदि अनेक पात्रों की हत्याएँ करायी हैं। अनेक वर्जित दृश्यों को भी रंगमंच पर प्रस्तुत किया है। जहाँ नाटककार प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पाश्चात्य शिल्प-विधान के अनुरूप युद्ध, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा करता है वहीं अन्तिम क्षणों में वह नाटक को दुखान्त न वनाकर प्रसादान्त बनाता है। वह भारतीय आदर्शों का त्याग नहीं करना चाहता। उसे पाश्चात्य किस्म का अन्त अभीष्ट नहीं था। राक्षस और सुवासिनी के प्रेम-सम्बन्ध के सहारे नाटककार ने अपने स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण का परिचय दिया है। अत: चन्द्रगुप्त नाटक में प्राच्य पाश्चात्य नाट्य शिल्प का मणिकांचन योग प्रस्तुत है।

प्रसाद के इस नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव के सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। किन्तु सम्पूर्ण कथावस्तु और पात्रों को शेक्सपीयर के नाटकों से

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० ९५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रभावित भी सिद्ध करना युक्तिपूर्ण नहीं प्रतीत होता। उदाहरण के लिए दाण्ड्यायन ऋषि की शेक्सपीयर के नाटकों की जादूगरनियों से समता उचित नहीं प्रतीत होती। दाण्ड्यायन जैसे भविष्यवक्ता महात्माओं की भारत जैसी तपस्या की नगरी में कभी नहीं रही हैं। कल्याणी का युद्ध करना भारतीय क्षत्राणी के आदर्श की याद दिलाता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक नारियाँ पुरुषों के साथ युद्ध में भाग ले चुकी थीं। इसलिए कल्याणी के इस कार्य की 'मर्चेण्ट ऑफ वेनिस' की पोर्सिया के न्यायालय में पहुँचने के कार्य से तुलना करना उचित नहीं प्रतीत होता। संघर्ष, अन्तर्द्वन्द्व के मनोवैज्ञानिक चित्रण में निश्चय ही प्रसाद पाश्चात्य नाट्य कौशल से प्रभावित हैं। इसे नकारा नहीं जा सकता।

स्कन्दगुप्त

स्कन्दगुप्त में पाश्चात्य शैली पर विरोध को प्रधानता दी गई है और करुणा का समावेश किया गया है। इसका वस्तु संगठन अत्यन्त वैज्ञानिक, चरित्र चित्रण पूर्णतया स्वाभाविक और कथोपकथन अत्यन्त रोचक है। वातावरण मनोहारी और निष्कर्ष लोकोपयोगी है। आलोचकों का सर्वसम्मत मत है कि स्कन्दगुप्त नाटक में पौर्वात्य और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का सुन्दर समन्वय किया गयाहै।[1] स्कन्दगुप्त पाश्चात्य और पूर्वी नाट्य सिद्धान्तों के समन्वय का सचमुच अतिसुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। कथावस्तु, पात्र, सम्वाद, भाषा शैली, उद्देश्य आदि नाटक के सभी मूल तत्वों में पाश्चात्य और पूर्वी परम्परा का समन्वय द्रष्टव्य है। कथानक ऐतिहासिक है जो आँग्ल और भारतीय नाट्य सिद्धान्तों का मुख्य पक्ष है।

भारतीय नाटकों में पाश्चात्य प्रभाव के शोधकर्ता प्रसाद के इस नाटक के कथ्य, चरित्र निर्माण और पात्रों के क्रिया-कलाप आदि में सभी जगह पाश्चात्य प्रभाव को खोज निकालते हैं। स्कन्दगुप्त में गुप्तकालीन भारत का इतिहास और राजनीतिक परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से चित्रित हैं और इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का कारण शेक्सपीयर के नाटकों का प्रभाव माना जाता है जिनमें ऐतिहासिकता और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है। पाश्चात्य नाट्य-शैली के ढंग पर स्कन्दगुप्त में बाह्य और आभ्यान्तर दोनों संघर्षों का चित्रण सफल रूप में हो पाया है। उसके प्रमुख पात्र स्कन्दगुप्त, देव-

---

१. (क) डॉ० दशरथ ओझा : हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास, पृ० ३५,
(ख) डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा : प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन, पृ० १४०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सेना , विजया, भटार्क जहाँ बाह्य संघर्षों में लिप्त हैं वहीं उनके मानस में भी अन्तर्द्वन्द्व की ज्वाला धधक रही है, एक युद्ध की विभीषिका चल रही है। स्कन्द-गुप्त के चरित्र पर भी शेक्सपीयर के हेमलेट और मैकवेथ की छाप मानी जाती है। जिस प्रकार हेमलेट के वृद्ध पिता को मार कर उसके चाचा क्लाडियस ने गद्दी अधिकृत कर ली, उसी प्रकार वृद्ध राजा कुमारगुप्त की हत्या भी एक रात्रि के गहन अन्धकार में उनकी रानी अनन्तदेवी द्वारा होती है। वह क्लाडियस की भाँति महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर अपने पति की हत्या करती है और अपने लाड़ले पुत्र को राजा के रूप में देखना चाहती है। परिणामस्वरूप गृह-कलह की आग भड़कती है। गृह-कलह की इसी भूमिका से शेक्सपीयर के हेमलेट का कथानक भी आगे बढ़ता है। जिस प्रकार प्रसाद का स्कन्दगुप्त मानसिक पीड़ाओं से घिरा है उसी प्रकार शेक्सपीयर का हेमलेट भी—

"To be or not to be, that is the question,
Whether' tis nobler in the mind to suffer,
The slings and arrows of outrageous fortune,
Or to arms against a sea of troubles,
And by opposing end them ? To die, to Sleep."[1]

देवसेना जैसी प्रेम की गहराई शेक्सपीयर के 'रोमियो एण्ड जूलियट' की जूलियट में भी है। अन्तर सिर्फ इतना ही है कि प्रसाद का नाटक प्रसादान्त है और शेक्सपीयर का नाटक दुखान्त। वस्तुतः स्कन्दगुप्त में दुखान्त की पूरी सामग्री एकत्रित है, पर भारतीय आदर्शों के प्रति लेखक की रुचि ने कथानक को मोड़ दिया है। विजया की भोग-कामना पर पाश्चात्य प्रभाव माना जाता है और उसकी समानता 'मैकवेथ' की डोरा के सुखभोग की लालसा से की जाती है। डोरा साम्राज्ञी बनने के सुख लोभ से ही राजा डंकन की हत्या करवा देती है। अपनी कामना सिद्धि के लिए स्कन्दगुप्त को पाने के लिए ही तो विजया भी देवसेना को श्मसान में प्रपंचबुद्धि के हाथों बलिदान के लिए सौंप आती है।

नाटककार ने यहाँ सहसा स्कन्दगुप्त का प्रवेश कराकर देवसेना को बचा लिया है। इस प्रकार प्रसाद ने अपने कथानक के विकास के लिए इसी प्रकार अन्धविश्वास, आकस्मिक घटना, संयोग आदि का सहारा लिया है, जिस प्रकार पाश्चात्य नाटककारों ने लिया है। जब स्कन्दगुप्त और उस की सेना कुभा की क्रुद्ध लहरों को पार करने का प्रयास कर रही थी उसी समय भटार्क पुल काट

---

१. हेमलेट, एक्ट ३, सीन १।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देता है। फलस्वरूप सभी जल में बह जाते हैं यह एक संयोग ही है कि इस जल-प्लावन में स्कन्दगुप्त बच जाता है और अन्त में जब सैन्य संचालन के लिए स्कन्दगुप्त को धन की आवश्यकता होती है तो सहसा भटार्क के चरित्र में परिवर्तन होता है और एक रत्नगृह भी मिल जाता है। इस प्रसंग का आधार दैवयोग ही है।

प्रसाद नियतिवादी हैं और उनके सम्पूर्ण नाटक तन्त्र को नियति जिधर चाहती है उधर ही घुमाती है। और इस नियति पर भी पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव माना जाता है। 'आथेलो' की डिसडिमोना भाग्य के ही फेर से अपने स्वामी के हृदय को नहीं जीत सकी। रोमियो को अपनी जूलियस न मिल सकी इसमें नियति के छल के सिवाय और क्या है? नियति के परिणामस्वरूप ही हेमलेट का खोया राज्य पुनः मिलता है।

किन्तु, मैं यह मानने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूँ कि 'स्कन्दगुप्त' का सम्पूर्ण रचनातन्त्र पाश्चात्य प्रभाव से प्रभावित है; उसके सभी पात्रों के क्रिया-कलापों तथा उनके निर्माण में प्रसाद ने शेक्सपीयर के नाटकों के पात्रों के चरित्रों का सहारा लिया है। यह सत्य है कि प्रसाद ने शेक्सपीयर के नाटकों का अध्ययन किया था और उनके पात्रों से वे प्रभावित भी हो सकते हैं किन्तु उन्हीं के अनुकरण पर घटना और चरित्रों के निर्माण की बात मान्य नहीं है। स्कन्दगुप्त, देवसेना, विजया, भटार्क, अनन्तदेवी जैसे चरित्रों की भारत में कमी नहीं रही है। भारत का इतिहास छल-प्रपञ्च की राजनीति से पूर्ण रहा है, अनेक राजा अपने राज्यपद से अपदस्थ किए जाते थे, अनेक की हत्याएँ होती थीं, अनन्तदेवी जैसी महत्वाकांक्षिणी नारियों की भारत में कमी नहीं है, जो शासन तन्त्र में अपना प्रमुख हाथ रखती थीं और समय मिलते ही उसे उलट-पुलट डालती थीं। प्रेम और त्याग के आदर्शों की स्थापना की यह नगरी ही रही है, देवसेना जैसे अनेक चरित्र यहाँ मिलते हैं—इतिहास इसका साक्षी है। स्त्री-सुलभ द्वेषभाव से पीड़ित विजया जैसे चरित्रों की भी कमी इस देश में नहीं रही है। स्कन्दगुप्त, त्याग, तपस्या और आदर्श की प्रतिमूर्ति है। निस्पृह भाव से जनता की रक्षा के लिए राज्य के प्रति अपने कर्तव्य निर्वाह के लिए आजीवन खड्ग लेकर रण संग्राम को अपना कर्मक्षेत्र बनाने वाले स्कन्दगुप्त जैसे चरित्र से भी इस देश का इतिहास भरा पड़ा है। नियति प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य की ही नियन्ता है—नाटक, उपन्यास, कहानी, कविताएँ कोई भी इसके प्रभाव से अछूती नहीं हैं। उनका नियतिवादी स्वरूप पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम नहीं अपितु भारतीय दर्शन के अध्ययन का परिणाम है। हाँ, अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष की अवतारणा में मैं पाश्चात्य प्रभाव को अवश्य स्वीकार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करता हूँ। प्रसाद के नाटकों के पात्र, चरित्र घटनाएँ आदि सभी भारतीय हैं। और उनके संयोजन, संगठन तथा प्रस्तुतीकरण में प्रसाद ने अपनी निराली पद्धति का आविष्कार किया है जो भारतीय है और पाश्चात्य से अलग होकर भी उनके प्रभाव क्षेत्र से दूर नहीं है। वस्तुतः भारतीय सिद्धान्तों की रक्षा करते हुए पाश्चात्य सिद्धान्तों का ग्रहण लेखक का अभीष्ट रहा है।

प्रसाद के नाटकों का वैशिष्ट्य

(१) रोमाण्टिक दृष्टिकोण

प्रसाद के प्रख्यात् ऐतिहासिक इतिवृत्त को देखकर अधिकांश विद्वान् उन्हें अतीतोन्मुखी मान बैठते हैं। ऐसे लोगों के मत से प्रसाद सांसारिक जीवन के प्रति उदासीन थे। पर उनके नाटकों और कविताओं को देखने से यह धारणा पूर्णतया भ्रामक सिद्ध होती है। प्रसाद को अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था, इसलिए उन्होंने भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग को अपने अधिकांश नाटकों का उपजीव्य वनाया। उनके नाटक जहाँ स्वर्णिम अतीत के ऊपर पड़ी अन्धकार की पर्तों को हटाकर उसे आलोकमय वनाते हैं वहीं वे उनमें वर्तमान की समस्याओं का समाधान भी खोजने में सफल दिखाई देते हैं। रोमाण्टिक दृष्टिकोण ने उसे नयी अर्थवत्ता में पिरोया, ठीक उसी तरह जिस तरह भारतीय पुनर्जागरण ने अपने गौरवशाली सांस्कृतिक परम्परा को युगानुरूप नया अर्थ दिया। मौर्य-कालीन कथानक में इनका अपना युग बोलता है, गुप्तकालीन कथानक में इनके समय की प्रतिच्छवियाँ देखी जा सकती हैं। "इन प्रतिच्छवियों में भारतीय संस्कृति का गत्यात्मक और आदर्शात्मक स्वरूप अंकित हुआ। गत्यात्मक इसलिए कि वह युग से बद्ध है, आदर्शात्मक इसलिए कि रोमांटिक आदर्शवादी होता है।"[१]

सामाजिक निषेधों के प्रति विद्रोह भाव एवं वैयक्तिकता के प्रति आग्रह, आवेगमयता, जीवन के प्रति अमिट उल्लास, साहस आदि रोमाण्टिक आन्दोलन की विशेषताएँ हैं। रोमांटिसिज्म ने विषय की दृष्टि से अतीतोन्मुखी होकर प्रायः जीवन के प्रति अनुराग दिखाया, सामान्य की अपेक्षा विशेष को अपनाया; अतीन्द्रिय और अर्थ प्राकृत तत्वों तथा भावनाओं के प्रति आग्रह का भाव प्रकट किया; दुःख आँसू और करुणा को विशेष प्रश्रय दिया।

प्रसाद के सभी नाटक सामाजिक निषेधों के प्रति विद्रोह भाव से पूरित एवं वैयक्तिकता से प्रदीप्त हैं। उनके पात्र अपनी अलग चारित्रिक विशेषताएँ

---

१. डॉ० बच्चनसिंह : हिन्दी नाटक, पृ० ५०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रखते हैं। यह रोमाण्टिक दृष्टिकोण का ही प्रभाव है। अन्यथा पूर्ववर्ती नाटकों के पात्रों के समान उनके भी पात्र टाइप चरित्र होते। चन्द्रगुप्त, चाणक्य, सिंहरण (चन्द्रगुप्त नाटक); देवसेना स्कन्दगुप्त (स्कन्दगुप्त नाटक); चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी (ध्रुवस्वामिनी नाटिका), मल्लिका, राज्यश्री आदि पात्र इसके उदाहरण हैं। उनके नाटक अत्यधिक आवेगमय हैं। यह आवेगमयता कथा के प्रारम्भ से लेकर पात्रों की क्रिया-प्रतिक्रिया और कथोपकथन में हर जगह विद्यमान हैं। स्कन्दगुप्त जैसा उदासीन पात्र भी इस आवेग से आक्रान्त है। वह अकेले ही साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अविचल खड़ा दिखाई देता है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक रोमाण्टिक दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 'चन्द्रगुप्त' अपने विशृंखलित संरचना के बावजूद भी जीवन की आवेगमयता से अभिभूत है। "विशालदत्त का 'मुद्राराक्षस' यथार्थवादी है और द्विजेन्द्रलाल राय का चन्द्रगुप्त लिजलिजी भावुकता से पूर्ण है। प्रसाद का चन्द्रगुप्त व्यष्टि और समष्टि की समन्वित चेतना से संयुक्त है। पर उसमें चित्रित सांस्कृतिक विचारों, देश प्रेम, स्त्री-पुरुष पात्रों के प्रणय लीला में रोमाण्टिक आदर्श और आवेग हैं।"[१]

प्रसाद के नाटकों के संवाद भी रोमाण्टिक भावना से ओतप्रोत हैं। देवसेना का निम्न कथन उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है—"भाभी! सर्वात्मा के स्वर में आत्मसमर्पण के प्रत्येक ताल में अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का विस्मृत हो जाना एक मनोहर संगीत है। क्षुद्र, स्वार्थ, भाभी जाने दो, भइया को देखो कैसा उदार, कैसा महान और कितना पवित्र।"[२] देवसेना का यह स्वर यथार्थवादी नहीं रोमाण्टिक है और इसमें व्यक्तित्व के विसर्जन का लक्ष्य और आत्मप्रसार की भावना है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठने से अधिक मानवतावादी दृष्टि और क्या हो सकती है। उदारता, महानता और पवित्रता वे मूल्य हैं जिनमें रोमाण्टिक लेखकों की गहरी आस्था रहती है।

प्रसाद ने अपनी रोमाण्टिक दृष्टि के अनुरूप ही अपने नाटकों के लिए भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धति का समन्वय करके एक नवीन नाट्य शिल्प का विकास किया। वस्तुतः संस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थों में निर्धारित नाट्य नियमों का पूरा-पूरा पालन किसी भी संस्कृत के नाटक में नहीं मिल पाता है और न यूनानी नाटकों में अन्विति-त्रयी का नियामानुसार समावेश ही हो सका है। इसलिए यह कल्पना से परे की बात है कि प्रसाद इन नियमों को अपने नाटकों

---

१. डॉ० बच्चन सिंह : हिन्दी नाटक, पृ० ५१।

२. स्कन्दगुप्त, पृ० ६६-६७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में पूर्ण योजना करते। प्रसाद ने वस्तु-योजना से लेकर चरित्र-चित्रण, संवाद, अभिनेयता सभी को अत्याधुनिक स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया।

प्रसाद के सभी पात्रों में जीवन के प्रति अमिट उल्लास उत्कट रूप में विद्यमान है। चाहे वे ऐतिहासिक हों या काल्पनिक। यह दूसरी बात है कि प्रसाद ने अपने सिद्धान्त के अनुसार जीवन की एक नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। उनका जीवन दर्शन पूर्णतया भिन्न जीवन दर्शन है। एक तरफ चन्द्रगुप्त सत्ता को ही जीवन का सब कुछ स्वीकार करता है और दूसरी तरफ स्कन्दगुप्त का स्कन्द तथा ध्रुवस्वामिनी का चन्द्रगुप्त जीवन के प्रति एक अलग विचार लेकर खड़े दिखायी देते हैं। सत्ता अथवा राज्य को वे महत्व नहीं देते।' "अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है। उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकार-लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं? (ठहरकर) उंह जो कुछ हो, हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।"[१] . . . "पर्णदत्त : तुम्हारे युवराज अपने अधिकारों से उदासीन हैं। वे पूछते हैं "अधिकार किसलिए?"[२] यही नहीं अन्त में स्कन्दगुप्त सम्पूर्ण राज्य को निष्कंटक बनाकर अपने विरोधी भाई पुरगुप्त को निस्पृह भाव से सौंप देता है। 'ध्रुवस्वामिनी' का चन्द्रगुप्त यह जानकर भी कि उसके पिता सम्राट समुद्रगुप्त ने उसे ही सिंहासन का उत्तराधिकारी बनाया था, फिर भी शील और मर्यादा की रक्षा के लिए वह अमात्य के विधानों को स्वीकार कर लेता है—"कुटिलता की प्रतिमूर्ति, बोलो। मेरी वाग्दत्ता पत्नी और पिता द्वारा दिए हुए मेरे सिंहासन का अपहरण किसके संकेत से हुआ? और छल से . . .।"[३]

स्कन्दगुप्त अपने बाहुबल द्वारा निर्मित साम्राज्य अपने विद्रोही भाई पुरगुप्त के लिए छोड़कर संसार से विराग लेता है। और चन्द्रगुप्त अपने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य और वाग्दत्ता पत्नी के छिन जाने पर भी उन दोनों के प्रति कोई राग नहीं दर्शाता। लेकिन दोनों पात्र जीवन के महत्व को स्वीकार करते हैं और उसकी उपयोगिता सार्थक कार्यों में मानते हैं। स्कन्दगुप्त सत्ता और राज-लोभ से विमुख होने पर भी साम्राज्य और जनता की रक्षा के लिए सन्नद्ध दिखाई देता है। चन्द्रगुप्त अवसर मिलने पर ध्रुवस्वामिनी की रक्षा का भार अकेले ग्रहण

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त : पृ० ९।
२. वही, पृ० ११।
३. वही, : ध्रुवस्वामिनी : पृ० ६२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करता है और 'अजातशत्रु' का कुछ दूसरा ही स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। ठीक यही स्थिति प्रसाद के नारी चरित्रों की भी है। देवसेना, ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री आदि इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

प्रसाद के नाटकों में साहस वह तत्व है जो कथासूत्र को तीव्र गति प्रदान करता है उसमें नाटकीयता लाता है और पाठक की रुचि को तीव्र बनाता है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' की सरमा अपने साहस द्वारा ही नाग और आर्य-कुल में समन्वय स्थापित करती है। 'अजातशत्रु' के बुद्धदेव अनेक विरोधों के बावजूद भी अपना साहस नहीं छोड़ते और संघर्ष में लिप्त साम्राज्य, परिवार तथा पिता पुत्र में शान्ति की स्थापना में अन्त तक प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। 'स्कन्दगुप्त' का स्कन्दगुप्त, भटार्क, चक्रपालित तथा विजया, 'चन्द्रगुप्त' का चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त और 'ध्रुवस्वामिनी' का चन्द्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी, 'राज्यश्री' का हर्षवर्द्धन आदि पात्र साहस की प्रतिमूर्ति हैं।

प्रसाद ने अपने नाटकों की कथावस्तु भारत के स्वर्णिम अतीत से चुनकर यह सिद्ध कर दिया है कि उनका उस स्वर्णिम अतीत के प्रति विशेष अनुराग था। 'राज्यश्री', 'जनमेजय' का नागयज्ञ', 'विशाख', 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि सभी की कथावस्तु का आधार लेखक ने भारतीय अतीत को बनाया है। पर इसके साथ-साथ वे वर्तमान की समस्याओं से विमुख नजर नहीं आते। उनके सभी नाटक दुःख-आँसू और करुणा से आप्लावित हैं। 'राज्यश्री', 'चन्द्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', 'स्कन्दगुप्त' आदि नाटकों में ऐसे प्रसंगों की भरमार है। पर इस दुःख, आँसू और करुणा में भी इनके पात्र विशेष तृप्ति की अनुभूति करते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

"तीसरी सखी : हैं. . हैं. क्या तुम रोती हो ? मेरा अपराध क्षमा करो।

देवसेना (सिसकती हुई) नहीं प्यारी सखी ! आज ही मैं प्रेम के नाम पर जी खोलकर रोती हूँ; बस, फिर नहीं। यह एक क्षण का रुदन अनन्त स्वर्ग का सृजन करेगा।

दूसरी सखी : तुम्हें इतना दुःख है, मैं यह कल्पना भी न कर सकी थी।

देवसेना : (सम्हलकर) यही तू भूलती है। मुझे तो इसी में सुख मिलता है, मेरा हृदय मुझसे अनुरोध करता है, मचलता है, रूठता है, मैं उसे मनाती हूँ। आँखें प्रणय-कलह उत्पन्न करती हैं, चित्त उत्तेजित करता है, बुद्धि झिड़कती है, कान कुछ सुनते ही नहीं ! मैं सबको समझती हूँ, विवाद मिटाती हूँ। सखी !

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

फिर भी मैं इसी झगड़ालू कुटुम्ब में गृहस्थी सम्हाल कर स्वस्थ होकर, बैठती हूँ।"[१]

इन पंक्तियों में जहाँ देवसेना की करुण मूर्ति उभरी है, वहीं उसका दूसरा स्वरूप भी है, जिसमें असीम सन्तोष का भाव है, वह रुदन में ही स्वर्ग का सृजन करती है। सारी इन्द्रियाँ, उसके विरोध में खड़ी हैं, पर वह उन्हें साध कर स्वस्थ है।

संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व प्रसाद के नाटकों का प्राण है। इन दोनों की अवतारणा करके प्रसाद ने अपने नाट्य कौशल को निखार प्रदान किया है। 'स्कन्दगुप्त' 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व की अवतारणा के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

गीतात्मकता रोमाण्टिक दृष्टिकोण की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रसाद स्वयं कवि थे; उनके कवि हृदय ने उचित स्थलों पर अनेक सुन्दर गीतों की सृष्टि की है। वस्तुतः प्रसाद जहाँ पात्रों की मनःस्थिति को अभिव्यक्त करने में अपने को असमर्थ पाते हैं, वहाँ पर उन्होंने गीतों का सहारा लिया है, और यह प्रसाद की सबसे बड़ी विशेषता है। इसका विस्तृत विवेचन आगे चलकर अलग से किया गया है। इसलिए यहाँ अधिक विस्तार अपेक्षित नहीं है।

सौन्दर्यानुभूति और प्रेम-व्यञ्जना

प्रसाद मूलतः प्रेम और सौन्दर्य के गायक कवि हैं। सम्पूर्ण साहित्य में उनके इस स्वरूप की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। उनका सम्पूर्ण साहित्य मानव की इन्हीं कोमल वृत्तियों के विविध घात-प्रतिघातों के उद्घाटन से भरा पड़ा है। वस्तुतः प्रसाद को मानव-मन के भीतर चलने वाले गूढ़ रहस्य व्यापार, उसकी संवेदना और आकांक्षाओं का बहुत सुन्दर अनुभव था। प्रसाद के अनुसार नारी-पुरुष का मधुर सम्बन्ध ही सृष्टि का लक्ष्य है। और इस सम्बन्ध के मूल आधार स्तम्भ दो हैं—सौन्दर्य और प्रेम। सौन्दर्य ही आकर्षण को जन्म देता है जो प्रेम का स्वरूप ग्रहण करता है। सौन्दर्य और प्रेम ही उनकी सम्पूर्ण साहित्य की प्रेरक शक्ति है। 'काव्य और कला' निबन्ध में भी उन्होंने साहित्य के सृजन के मूल में सौन्दर्य की सत्ता स्वीकार की है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से प्रेम के बहुविध पक्षों को व्यञ्जित किया है। प्रसाद के अनुसार प्रत्येक हृदय में प्रेम का महोत्सव एक बार अवश्य आयोजित होता है। कोमा का यह कथन कितना

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० ९२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मर्मस्पर्शी है—"तुम्हारे भी जीवन में वह आलोक का महोत्सव आया होगा, जिसमें हृदय-हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है।"[१]

यौवन और प्रेम को क्या समझती हो ? कार्नेलिया के इस प्रश्न पर सुवासिनी का उत्तर अत्यन्त मर्मस्पर्शी है जो प्रेम के गूढ़ रहस्यों को खोल कर रख देता है :

"सुवासिनी : अकस्मात् जीवन कानन में, एक राका-रजनी की छाया में छिप कर मधुर वसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल—"कौन ?" कहकर सबको रोकने-टोकने लगता है, पुकारने लगता है। राजकुमारी ! फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू भरी स्मृतियाँ मकरन्द-सी उसमें छिपी रहती हैं।"[२] लेखक ने यहाँ यौवन और प्रेम की आकस्मिक अनुभूति का बड़ा सटीक शब्द-चित्र खींचा है ?

प्रसाद के हर-एक नाटक में प्रेम और सौन्दर्य का स्वरूप मुखरित है। स्कन्दगुप्त भी विजया के सौन्दर्य को देखकर आर्कषित हो उठता है और कह पड़ता है—"यह —यह कौन ?" अजातशत्रु की 'बाजिरा' अजात के सौन्दर्य आकर्षण में आवद्ध होकर उससे प्रेम कर बैठती है—"सुन्दर राजकुमार ! कितनी सरलता और निर्भीकता इस विशाल भाल पर अंकित है ! अहा ! जीवन धन्य हो गया है।"[३] यह प्रेम उसके अंतस् में नवीन स्फूर्ति उत्पन्न करता है। प्रेम को वह जीवन की अनिवार्यता स्वीकार करती है। "अन्तःकरण में एक नवीन स्फूर्ति आ गयी है। एक नवीन संसार इसमें बन गया है। यही यदि प्रेम है तो अवश्य स्पृहणीय है, जीवन की सार्थकता है। कितनी सहानुभूति, कितनी कोमलता का आनन्द मिलने लगता है।"[४]

प्रेम का दूसरा स्वरूप भी इस नाटक में प्रत्यक्ष हुआ है। इस रूप में वह मात्र छल-प्रपंच होता है और उससे ऐश्वर्य, विलास की गन्ध आती है। श्यामा शैलेन्द्र से प्रेम करती है, पर शैलेन्द्र बना विरुद्धक उसको अपने हितसाधन का माध्यम बनाता है और उसकी सहायता से अपने षड्यन्त्रों को सफल बनाता है। पर वह प्रत्यक्ष रूप में श्यामा के समक्ष प्रवञ्चनापूर्ण कथन करता है, उसे भुलावे में रखता है। "नहीं श्यामा ! तुम्हारे सौन्दर्य ने तो मुझे भुला दिया है कि मैं

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५५।
२. वही : चन्द्रगुप्त, पृ० १८८।
३. वही : अजातशत्रु, पृ० १०७।
४. वही, पृ० १०८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डाकू था ! मैं स्वयं भूल गया हूँ कि मैं कौन था, मेरा उद्देश्य क्या था, और तुम ! एक विचित्र पहेली हो। हिंस्र पशु को पालतू बना लिया, अलसपूर्ण सौन्दर्य की तृष्णा मुझे किस लोक में ले जा रही है ! तुम क्या हो सुन्दरी ?"[१] स्वार्थ साधन के पश्चात् उसकी कोई उपयोगिता न देखकर तथा अपने मार्ग की बाधक समझ कर वह उसकी हत्या तक कर देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। दूसरी तरफ श्यामा का चरित्र है जो डाकू शैलेन्द्र से प्रेम करती है और उसकी जीवन-रक्षा तक करती है और अपना सब कुछ उसे समर्पित कर देती है।

'चन्द्रगुप्त' नाटक में नन्द का एक कथन द्रष्टव्य है—"तुम्हारी आँखों में काम का सुकुमार संकेत नहीं। अनुराग की होली नहीं। मैं ब्रह्मास्त्र से अधिक सुन्दरियों के कुटिल कटाक्ष से डरता हूँ. . .मगध की नागरिकाओं का शासन मेरे ऊपर है।"[२]

प्रसाद ने प्रेम का चित्रण अत्यन्त पवित्र धरातल पर प्रस्तुत किया है। उनमें विलास और ऐश्वर्य की गन्ध का अभाव ही है। पुरगुप्त, नन्द ऐसे एकाध पात्र हर नाटकों में मिल जाएंगे जिनके प्रेम से विलास और ऐश्वर्य की गन्ध आती है पर नाटक में इनकी योजना सप्रयोजन है। वस्तुतः प्रसाद के प्रत्येक पात्र के हृदय में प्रणय का स्पन्दन है और प्रत्येक स्त्री-पात्र सुकुमार सौन्दर्य से सम्पन्न है। यहाँ तक कि चाणक्य, राक्षस, तक्षक, अजातशत्रु, विरुद्धक, भटार्क जैसे कठोर व्यक्तित्व और क्रूरकर्मा पात्र भी प्रेम माधुरी से सिक्त हैं।

प्रायः एक पात्र के प्रति अनेक पात्राओं के तथा एक पात्रा के प्रति अनेक पात्रों के प्रकट या अप्रकट अनुराग हैं। चन्द्रगुप्त की विनयशीलता से जहाँ कल्याणी प्रभावित है वहीं उसके पूर्ण मनुष्यत्व के प्रति मालविका और उसके शौर्य तथा सौन्दर्य से कार्नेलिया मुग्ध है। स्कन्दगुप्त विजया और देवसेना दोनों के प्रति आसक्त है।

प्रसाद की प्रणय-भावना की परिणति लोकादर्शों की स्थापना में होती है। प्रसाद की प्रणयवंचिता पात्राएँ या तो परिष्कृत हुई हैं, या अधोगति को प्राप्त हुई हैं। स्कन्दगुप्त की विजया, अजातशत्रु की श्यामा, नागयज्ञ की दामिनी और राज्यश्री की सुरमा ऐसी ही पात्राएँ हैं। प्रसाद के प्रेम में उच्छृंखलता और अश्लीलता का नामोनिशान नहीं है।

प्रसाद ने प्रेम के विविध स्वरूपों—दाम्पत्य, प्रेम, वात्सल्य, राष्ट्र प्रेम आदि

---

१. प्रसाद : अजातशत्रु, पृ० ९१।
२. वही, : चन्द्रगुप्त, पृ० ६४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का स्वरूप उपस्थित किया है। प्रसाद ने प्रकृति सौन्दर्य को मानव सौन्दर्य से अधिक महत्व दिया है। सुकुमारता सौन्दर्य का गुण है। सौन्दर्य की कोमल अभिव्यक्ति सुकुमारता द्वारा ही व्यञ्जित होती है। मालविका का प्रस्तुत कथन इसी सुकुमारता को व्यञ्जित करता है—

"फूल हँसते हुए आते हैं, फिर मकरन्द गिराकर मुरझा जाते हैं, आँसू से धरती को भिगोकर चले जाते हैं! एक स्निग्ध समीर का झोंका आता है, निश्वास फेंककर चला जाता है क्या पृथ्वीतल रोने ही के लिए है? नहीं, सब के लिए एक ही नियम तो नहीं है। कोई रोने के लिए है तो कोई हँसने के लिए।"[1]

प्रसाद के पात्र वज्र के समान कठोर और कुसुम सदृश मृदु हैं। वीर सेनानी चन्द्रगुप्त रणभेरी के पहले मधुर मुरली की एक तान सुनना चाहता है। प्रकृति का सौन्दर्य प्रेममयी रमणी के हृदय में रस सञ्चार करता है। उसकी भयानकता में भी सौन्दर्य का समावेश है। अजातशत्रु की वार विलासिनी श्यामा भयानक रात्रि में विरुद्धक से अभिसार करने के लिए आती है। प्रकृति की भयानकता उसके नारी हृदय में यहाँ सशब्द हो उठी है—"रात्रि चाहे कितनी भयानक हो किन्तु प्रेममयी रमणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती।. . .पवन मानों किसी डर से धीरे-धीरे साँस ले रहा है। किसी आतंक से पक्षिवृन्द अपने घोंसलों में जाकर छिप गए हैं। आकाश में ताराओं का झुण्ड नीरव-सा है, जैसे कोई भयानक बात देखकर भी वे बोल नहीं सकते, केवल आपस में इंगित कर रहे हैं। संसार की किसी भयानक समस्या में निमग्न-सा प्रतीत होता है।"[2]

प्रसाद प्रेम की परिधि को संकुचित नहीं करते। उनके अनुसार प्रेम अन्तरात्मा का प्रसन्न गम्भीर उल्लास है।

स्कन्दगुप्त से हताश देवसेना प्रतिदान की इच्छा से दूर अपना निरीह आत्मोत्सर्ग करती है। देवसेना कहती है—"हृदय की कोमल कल्पना सो जा. . . आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा सबसे मैं विदा लेती हूँ।"[3] वह कर्म के अवसान में बचे हुए जीवन के शेष दिन एकान्त सेवा में व्यतीत करती है, कष्ट को वह हृदय की कसौटी मानती है और तपस्या को अग्नि—सब क्षणिक सुखों का अन्त है। जिसमें सुखों का अन्त न हो इसलिए सुख करना ही न चाहिए। वह 'इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य' स्कन्दगुप्त से क्षमापूर्वक विदा

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १०४।
२. वही, : अजातशत्रु, पृ० ६७-६८।
३. वही, : स्कन्दगुप्त, १४७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लेती हैं। स्कन्दगुप्त को अकर्मण्य बनाने के लिए वह जीवित नहीं रहना चाहती। उसके जीवन में स्कन्द के अतिरिक्त किसी का प्रवेश नहीं हुआ है और न होगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर उसी की उपासना में वह दत्तचित्त रही है। अब कामना भँवर में फँसकर उसे कलुषित नहीं करना चाहती। अजातशत्रु में वाजिया का प्रेम भी बहुत ही तीव्र है। उसका प्रेम दो राज्यों के पारस्परिक द्रोह को पराजित करता है। उसके अन्तःकरण में नवीन स्फूर्ति का विकास हुआ है। प्रसाद के पात्रों का यह प्रेम स्पृहणीय है। वह प्रत्येक जीवन की सार्थकता है। उससे सहानुभूति एवं कोमलता का आनन्द मिलता है। कुमार चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी का प्रणय भी पारस्परिक राग-भावना से प्रणीत है। 'विशाख' का प्रेमानन्द जो कि शाश्वत संघ का अनुयायी है, वह भी प्रेम की सत्ता को संसार में जगाना ही अपना कर्त्तव्य घोषित करता है।[१] 'प्रसाद' की प्रणय-भावना अत्यन्त उदात्त और पुष्ट है। उसकी परिणति लोकादर्शों की ओर होती है। 'स्कन्दगुप्त' की विजया 'अजातशत्रु' की श्यामा, 'नागयज्ञ' की दामिनी और 'राज्यश्री' की सरमा आदि ऐसी पात्राएँ हैं, जिनका या तो पूर्ण परिष्कार हुआ है या वे अधोगति को प्राप्त हुई हैं।

प्रसाद के नाटकों में प्रेम का सर्वाधिक उज्ज्वल स्वरूप वहां व्यञ्जित है जहाँ राष्ट्रप्रेम, कर्तव्य प्रेरणा या किसी अन्य भाव-विशेष के साथ व्यक्तिगत प्रेम के द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न की गयी है। देवसेना का स्कन्दगुप्त के प्रति प्रेम इसी प्रकार है। उसके समक्ष एक तरफ राष्ट्रोद्धार है, दूसरी तरफ अपना प्रेम।

जीवन-दर्शन

प्रसाद पर नियतिवाद का प्रबल प्रभाव है। उन्होंने प्रकृति और लोकोत्तर शक्ति की महत्ता स्वीकार की है। वैदिक दर्शन से इन्होंने अद्वैतवाद को ग्रहण किया और बौद्ध धर्म से करुणा और क्षमा। भारतीय चिन्तकों का प्रतिनिधि दाण्ड्यायन ऐसा ही आदर्श भारतीय दार्शनिक है जो लोभ से, भय से या सम्मान से संत्रस्त नहीं होता। जो "फल मूल खाकर अञ्जलि से जलपान कर तृणशय्या पर आँख मूँद कर आत्म आनन्द" ग्रहण करता है। महत्वाकांक्षाओं का इतना संक्षिप्त स्वरूप उसके व्यक्तित्व की गरिमा का परिचायक है। "भूमा का सुख और उसकी महत्ता का जिन्हें आभास हो गया है उसे ये नश्वर चमकीले पदार्थ अभिभूत नहीं कर पाते।" एकान्त तृणकुटीर में दाण्ड्यायन की चिन्ता-

---

१. प्रसाद : विशाख, पृ० ३५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धारा का निरायास प्रवाह कितना अद्भुत हैं—"पवन एक क्षण विश्राम नहीं लेता, सिन्धु की जलधारा बही जा रही है। बादलों के नीचे पक्षियों का झुण्ड उड़ा जा रहा है, प्रत्येक परमाणु न जाने किस आकर्षण से खिंचे चले जा रहे हैं। जैसे काल अनेक रूपों में चल रहा है।"[१] उसका कथन स्वयं से है, कथन का कोई लक्ष्य नहीं है—"कहो तो अपने आपसे कहो, जिसे आवश्यकता होगी सुन लेगा . . . कोई किसी की सुनता है। मैं कहता हूँ सिन्धु के एक विन्दु ! धारा में न वहकर मेरी एक बात सुनने के लिए ठहर जा ! वह सुनता है, ठहरता है ?—कदापि नहीं।"[२]

दाण्ड्यायन का दृढ़ संकल्प है—"मनुष्य स्वयं प्रदत्त शक्ति है दूसरों के प्राण लेने की स्पर्धा केवल उसके दम्भ के कारण है, क्योंकि समस्त आलोक चैतन्य और प्राणशक्ति प्रभु की दी हुई है। मृत्यु के द्वारा वही उसको लौटा देता है।"[३] वस्तुतः दाण्ड्यायन नैतिक आत्मवल का प्रतीक है। उसके कथनों में आत्मा का ओज है जैसे—"विजय-तृष्णा का अन्त पराभव में है।" "साधक या योगी चारणों की भाँति जयघोष करके रक्तपात के उपकरण नहीं जुटा सकता।" "राजसत्ता विजयों से नहीं सुव्यवस्था से बढ़ती है"—इस सदुपदेश का मर्म ग्रहण कर विदेशी आक्रान्ता भी नतशिर हो जाता है। यहाँ भारतीय संस्कृति का चरम विजयोल्लास है।

'जनमेजय का नागयज्ञ' में प्रसाद की नियतिवादी धारणा अधिक मुखरित हुई है—"दम्भ और अहंकार से पूर्ण मनुष्य अदृष्ट शक्ति का क्रीड़ा-कन्दुक है। अन्ध नियति कर्तृत्व मद से मत्त मनुष्यों की कर्मशक्ति को अनुचरी बनाकर अपना कार्य कराती है और ऐसी ही क्रान्ति के समय विराट का वर्गीकरण होता है।"[४] नागयज्ञ में 'प्रसाद' की नियतिवादी विचारधारा निर्वाध रूप से मुखरित हुई है। प्रत्येक पौरुषवान पात्र स्वीकार करता है कि "अदृष्ट की लिपि ही सब कुछ कराती है . . . मनुष्य केवल प्रकृति का अनुचर और दास है।"[५] जनमेजय कहता है—"मनुष्य क्या है ? प्रकृति का अनुचर और नियति का दास या उनकी क्रीड़ा का उपकार है। फिर क्यों वह अपने आपको कुछ समझता है ?"[६] . . किन्तु मनुष्य

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १०५।

२. वही, पृ० १०५।

३. वही, पृ० १०८।

४. वही, जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ९३।

५. वही, पृ० ३९-४०।

६. वही, पृ० ४३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है । क्या वह कर्म करने में स्वतंत्र है ?[१] अजातशत्रु में भी यही भावना दृढ़ है। "प्रकृति मनुष्य को प्रतिदिन अंधकार की गुहा में ले जाकर उसका रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा खोलती है।"[२]

स्कन्दगुप्त का 'स्कन्दगुप्त' भी इसी नियति के चक्र में उलझा दिखाई देता है। पर, प्रसाद के ये पात्र कहीं भी हाथ-पर-हाथ धरे बैठे नहीं दिखाई देते, अपितु कर्मक्षेत्र में अन्तिम क्षण तक, एक तरह से, नियति को भी अपने पक्ष में कर डालने के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं।

प्रसाद की दार्शनिक विचारधारा की चरम परिणति आनन्दवाद है। प्रसाद के अनुसार संसार दुःखमय है तथापि इस क्षणिक जीवन को प्रसाद सुखी बनाने के पक्षपाती हैं। इसके लिए वे आत्मसन्तोष और धैर्य की अनिवार्यता पर बल देते हैं। प्रसाद के सभी आदर्श पात्र उनके इस जीवन दर्शन से आप्लावित हैं। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, देवसेना, राज्यश्री आदि ऐसे ही पात्र हैं। चाणक्य और अजातशत्रु जैसे क्रूरकर्मा पात्र भी अन्ततः त्याग और निष्काम का पथ ग्रहण करते हैं।

कथानक

प्रसाद ने मूलतः इतिहास के बिखरे पृष्ठों को अपने नाटकों का कथानक बनाया है। उन्होंने यत्र-तत्र पुराणों, वेदों, उपनिषदों और इतिहासों से सामग्री एकत्रित कर उसे इतिहास का स्वरूप प्रदान किया है और कल्पना का मिश्रण कर उसमें प्राणवत्ता भरी। यह थी प्रसाद की कला। प्रसाद की इन अनेक खोजों और धारणाओं का विवरण उनके नाटकों के प्रारम्भ में उपलब्ध विशद भूमिका से प्राप्त होता है। वस्तुतः ऐतिहासिक वृत्ति-भूमि को युगीन सन्दर्भ देना प्रसाद का एक निजी गुण है।

स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु, राज्यश्री, जनमेजय का नागयज्ञ का कथानक ऐतिहासिक है। ऐतिहासिक नाटकों की रचना के लिए इतिहास को ही उठा कर रख देना न तो नाटककार के लिए अभीष्ट रहता है, और न पाठक ही के लिए। ऐसी स्थिति में तो नाटक की साहित्यिकता ही समाप्त हो जाएगी। इसलिए उसे साहित्यिक स्तर प्रदान करने के लिए उसकी घटना में कुछ परिष्कार करना पड़ता है। कुशल कल्पनाशील लेखक अपनी कल्पना का

---

१. प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ५१।
२. वही, अजातशत्रु, पृ० २८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपयोग कर उसे ऐसे रूप में प्रस्तुत करता है कि एक तरफ वह वर्तमान सन्दर्भों से अछूता न रहे, दूसरी तरफ अपने मूल प्रसंग से दूर न हटने पावे। प्रसाद इस कला में पारंगत थे। उन्होंने अपनी कल्पना के द्वारा अतीत के धरातल पर वर्तमान की सारी समस्याएँ और उसका समाधान प्रस्तुत कर दिया है। उनके युग का राष्ट्रीय जागरण उनकी सभी प्रमुख कृतियों में पात्रों और घटनाओं के माध्यम से प्रतिबिम्बित होता रहा है। जनतन्त्र की उद्दाम लहर, नारी के जाग्रत स्वाभिमान की तेजोमयी मुद्रा, वैज्ञानिक सभ्यता की बौद्धिकता एवं गाँधीवादी समाजदर्शन की छाप उनके नाटकों में अपनी औचित्यपूर्ण वास्तविकता के साथ उभरती रही है। चन्द्रगुप्त और स्कन्दगुप्त के माध्यम से वे अतीत का इतिहास प्रस्तुत करते हुए भी वर्तमान काल में राष्ट्रीय भावना को तीव्र करते हैं, एकता के महत्व का प्रतिपादन करते हैं। चन्द्रगुप्त के माध्यम से वे यह आदर्श सामने रखते हैं कि जिस भाँति चन्द्रगुप्त के काल में सभी राजाओं ने अपने द्वेष और ईर्ष्या भाव भुला कर विदेशी आक्रान्ताओं का सामना किया उसी प्रकार आज भी आवश्यकता है कि हम अपने द्वेष और ईर्ष्या को भूल कर, एक होकर, अंग्रेजी सत्ता से जूझें। चाणक्य के रूप में वे गाँधी की सृष्टि करते हैं। आम्भीक उन गद्दारों का प्रतीक है जो भारतीय होकर भी विदेशी सत्ता को अपना समर्थन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दे रहे हैं। अलका उस नारी जागृति की प्रतीक है जिसे गाँधी ने उस काल में जगाया था। 'स्कन्दगुप्त' में भी यह नारी जागृति तथा राष्ट्र-प्रेम की भावना उभर कर सामने आयी है। राष्ट्र के लिए स्कन्दगुप्त अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। देवसेना, भारतीय नारी के त्याग और तपस्या के चरम आदर्श को प्रस्तुत करती है; राष्ट्र रक्षा के लिए वह भिक्षावृत्ति तक को अपनाती है।

प्रसाद के नाटकों का देशकाल इतना विस्तृत है, और परिस्थितियाँ इतनी दुर्लंघ्य हो गई हैं कि उनका संकोचन कठिन दिखाई देता है। इसीलिए उसकी कथावस्तु बोझिल-सी है, साथ ही यत्र-तत्र उसकी एकता खण्डित प्रतीत होती है। वस्तु विधान में असन्तुलन के कारण विशृंखलता का आ जाना स्वाभाविक है। घटनाओं की विविधता के कारण नाटकों में विस्तार आ गया है। 'चन्द्रगुप्त' इसका उदाहरण है। कार्य व्यापारों का जमघट अनभिनेयता भी ला देता है। यही हुआ है प्रसाद के प्रमुख नाटकों के साथ जिन्हें अनेक विद्वान् अनभिनेय कहते हैं। यह कथन सत्य ही है पर प्रसाद के समक्ष लक्ष्य रंगमंच नहीं था, उनका अभीष्ट था हिन्दी को नव-नाट्य-विधान देना। 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', और 'अजातशत्रु' तीनों नाटकों का देशकाल इसी प्रकार विस्तृत है। परन्तु इनके संगठन में शैथिल्य नहीं आने पाया है, और इन्हें रंगमंच पर सफलतापूर्वक अभिनीत भी किया जाता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद के नाटकों के कथानकों में अनेक विद्वानों ने भारतीय नाट्य शास्त्र की सन्धियाँ, कार्यावस्थाएँ, अर्थ प्रकृतियों की योजना भी सिद्ध की हैं। यह बात तथ्य से परे नहीं है कि प्रसाद को संस्कृत नाट्य पद्धति का अच्छा ज्ञान था और वे उसके अच्छे अध्येता थे, पर उन्होंने अपने इन नाटकों को एकदम नवीन नाट्य-शैली में प्रस्तुत किया, जिसकी उस समय हिन्दी को सर्वाधिक आवश्यकता थी। और यह सम्भव है कि अवस्थाएँ, अर्थ प्रकृतियाँ और संधियाँ ढूँढ़ने से मिल जायँ पर सिद्धान्त रूप में प्रसाद इस प्रकार के प्रयोग के पक्षपाती नहीं थे। इसलिए उन्होंने विभाजन अंकों और दृश्यों में किया।

प्रसाद के विकासकालीन नाटक 'राज्यश्री' और 'विशाख' के कथानक सरल और सीधे हैं। किन्तु कलात्मक दृष्टि से इनमें अनेक दोष मिलते हैं। कला की दृष्टि से अजातशत्रु अत्यन्त विशृंखलित नाटक है। इसमें तीन समानान्तर कथानक हैं और तीनों का मुख्य कथा से वहुत अधिक सम्बन्ध नहीं रहता। पहला उप-कथानक कौशाम्बी से सम्बद्ध है जिसकी केन्द्रविन्दु पद्मावती है। दूसरे उपकथानक का केन्द्र विरुद्धक है और कोशल के राज परिवार से इसे सम्बद्ध कर प्रसाद ने मल्लिका जैसा महनीय और अनुकरणीय आदर्श चरित्र उपस्थित किया है। इन दोनों उपकथाओं की समन्विति अजातशत्रु की कथा में होनी चाहिए पर हो नहीं पाती। विरुद्धक अजात की अपेक्षा अधिक वीर और साहसी दिखायी देता है। मल्लिका सारे नाटक को अपने साथ समेट लेना चाहती है। इन पारिवारिक और राजनीतिक संघर्षों के साथ-साथ परोक्ष रूप से सारे नाटक में गौतम और मागन्धी तथा गौतम और देवदत्त की प्रतिद्वन्द्विता के कथासूत्र भी चलते रहते हैं। "सारांश में इस नाटक की कथावस्तु अत्यन्त बोझिल, जटिल, विशृंखल एवं शिथिल है। आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं में अंगांगिभाव सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया है।"[१]

वस्तु-विधान की दृष्टि से **'जनमेजय का नागयज्ञ'** अत्यन्त शिथिल है। जातीय और वर्ग संघर्ष को इतनी व्यापक समस्या के रूप में चित्रित करने के कारण अनावश्यक प्रसंगों और पात्रों की अवतारणा हो गई है। जिससे लेखक को अनेक अनावश्यक घटनाओं और कार्य व्यापारों की योजना करनी पड़ी है जो कलात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण हैं। **'कामना'** में विरोधी भावनाओं के संघर्ष की योजना द्वारा अच्छी वक्रता उपस्थित की गई है।

---

१. डॉ० शान्ति मल्लिक : हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० १०८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'स्कन्दगुप्त' प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ रचना है। कतिपय त्रुटियों के बावजूद भी इस नाटक का वस्तु-विन्यास, अन्य नाटकों की अपेक्षा अधिक संगठित एवं सुसम्बद्ध है। इस नाटक में दो प्रासंगिक कथाएँ—गृह कलह का ऐतिहासिक सूत्र एवं प्रेम सम्बन्धी काल्पनिक सूत्र—आधिकारिक कथा से पूर्णतया आबद्ध है उसी की अभिन्न एवं अविभाज्य अंग सी प्रतीत होती हैं। प्रसाद ने कथावस्तु में गतिशीलता लाने के निमित्त गहन अन्तर्द्वन्द्वों की सृष्टि सफलतापूर्वक की है। विजया और भटार्क आदि पात्रों का आन्तरिक विक्षोभ मानसिक स्तर तक ही सीमित न रहकर, विभिन्न कुकृत्यों को जन्म देता है। प्रसाद ने अत्यन्त कुशलतापूर्वक इतिहास तत्वों की रक्षा करते हुए और संघर्ष को चरम रूप प्रदान करते हुए भटार्क की पराजय अंकित की है। आकस्मिक संयोगों का सहारा लेकर प्रसाद ने इस नाटक में अनेक गत्यात्मक मोड़ उपस्थित किए हैं। ये स्थल पाठकों और प्रेक्षकों पर तीव्र प्रभाव डालकर तीव्रतम भावावेश उत्पन्न करते हैं।

'चन्द्रगुप्त' प्रसाद की प्रौढ़ रचना है। इस नाटक की वस्तु योजना 'स्कन्दगुप्त' की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। तीन प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं पर यह नाटक आधृत है—सिकन्दर का भारत आक्रमण, नन्द कुल का उन्मूलन तथा सिल्यूकस की पराजय। इन तीन प्रमुख घटनाओं के साथ-साथ आठ कथासूत्र जुड़े हुए हैं—चन्द्रगुप्त और कल्याणी, चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया, चन्द्रगुप्त और मालविका, सिंहरण और अलका, राक्षस और सुवासिनी, पर्वतेश्वर और कल्याणी, शकटार और नन्द तथा राक्षस और चाणक्य। चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व द्वारा इन सभी कथा-सूत्रों को एकसूत्रता प्रदान करने का यह प्रयास विषय की दृष्टि से उचित होते हुए भी रचनातन्त्र की दृष्टि से दोषपूर्ण है। यही कारण है कि कथा संकलन एवं रस विचार की दृष्टि से इस नाटक में कथानक संबंधी पर्याप्त दोष मिलते हैं। पहली बात तो यह है कि इस नाटक की घटनाओं तथा क्रिया व्यापारों में अन्विति नहीं हो पाती। प्रथम अंक की घटनाओं का द्वितीय अंक से सम्बन्ध नहीं स्थापित हो पाता और द्वितीय अंक के अनेक पात्रों का सम्बन्ध तृतीय अंक की घटनाओं से नहीं रहता। चतुर्थ अंक की नाटक की कथा योजना १६ वर्षों तक चलती रहती है जो नाटकीय कौशल की दृष्टि से स्वयं ही दोषपूर्ण है। फिर भी प्रसाद ने बड़ी पटुता से इसके कथासूत्रों को सम्भाला है और उन्हें सुसंगठित स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। संयोग और अन्तः-संघर्ष की प्रबल भावना यहाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। प्रसाद ने मनोविज्ञान का सहारा लेकर पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है, जो परिस्थिति सापेक्ष्य है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'एक घूंट' प्रसाद की लघुतम श्रेष्ठ कृति है। आकस्मिकता के सहारे नाटक की श्रेष्ठ और कौतुक पूर्ण परिसमाप्ति आयोजित है।

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद की नाटकीय सृजनात्मक प्रतिभा का चरम विन्दु है। इसमें एक ही प्रधान कथानक हैं। अन्य कोई प्रासंगिक कथा नहीं। कालावधि भी इसकी छोटी हैं वस्तु संगठन की दृष्टि से यह नाटक सबसे सफल एवं पूर्ण है। इसका कथानक अत्यन्त सरल सीधा क्रमबद्ध और सुसंगठित है। घटना और क्रियाओं के बीच कार्य कारण का प्राकृत लगाव मिलता हैं। वास्तव में नाटककार ने सारी घटनाओं, क्रिया व्यापारों और नाटकीय स्थितियों को इतने सुन्दर ढंग से नियोजित किया हैं कि नाटकीय प्रभावान्विति में सघनता एवं प्रखरता आ गई हैं। कहीं भी कथावस्तु के क्रम में विश्रृंखलता एवं अव्यवस्था नहीं आने पायी हैं और न ही नाटकीय गति ही कहीं अवरुद्ध हुई है।[1] इस नाटक की सभी घटनाएँ एक ही स्थान पर घटित होती हैं। तीन अंकों का केन्द्र रामगुप्त और शकराज का शिविर है। कथावस्तु को गत्यात्मक बनाने के लिए गहन एवं तीव्र अन्तर्द्वन्द्वों की सृष्टि की गई है। यही कारण है कि इसका आकर्षण, कौतूहल एवं रोचकता बराबर वनी रहती हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हैं कि प्रौढ़युगीन नाटकों के कथानक अत्यन्त संघटित और वेगवान हैं। कहीं भी प्रवाह में वाधा नहीं उत्पन्न होतीं; भले ही कितना वड़ा देशकाल हो या परिवेश। इस प्रवाह को संघर्ष और तीव्र बना देता हैं। 'स्कन्दगुप्त' का एक दृश्य द्रष्टव्य है: भटार्क पर विश्वास नहीं किया जा सकता पर स्पष्ट रूप में स्कन्दगुप्त विरोध नहीं कर पाता। इसी समय बन्धुवर्मा के अवसान का सन्देश स्कन्दगुप्त को और शोक निमग्न बना देता है। रण-कर्त्तव्य से प्रेरित स्कन्दगुप्त युद्ध क्षेत्र में तत्पर हैं। उसे भटार्क से विश्वासघात मिलता हैं और विजयी होता सम्राट् सारी सेना के साथ कुभा के जल में बह जाता है। हूणों से पूरा देश आक्रान्त हो जाता हैं। स्कन्द के जीवित रहने की भी आशा नहीं थी पर वह एक दिन प्रत्यक्ष हो उठता है और पुनः सेना संगठित कर हूणों को पराजित करता है।

इन नाटकों की प्रासंगिक कथाएँ मूल कथा को उत्कर्ष प्रदान करती हैं। कहीं भी वे ऊपर से थोपी हुई नजर नहीं आतीं और न ही अलग-थलग दिखाई पड़तीं हैं। नाटक के कथानक का आदि, मध्य और अन्त पूर्णतया स्पष्ट है। पाश्चात्य

---

१. डॉ० शान्ति मल्लिक : हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० ११६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पद्धति पर संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के आयोजन से कथानक में प्रभावोत्पादकता और तीव्रता आ गई है। अन्तर्द्वन्द्व पद्धति पाश्चात्य पद्धति पर प्रसाद ने ग्रहण की है। यही कारण है कि इस क्षेत्र में इनके नाटक अद्वितीय हैं। मनःस्थिति का जितना अन्तर्सूक्ष्म विवेचन प्रसाद कर सके हैं उतना दूसरे के बूते की बात नहीं है। 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', 'अजातशत्रु' में ऐसे अनेक स्थल भरे पड़े हैं।

अंक-दृश्य योजना

प्रसाद के नाटकों में अंकों और दृश्यों का विभाजन आनुपातिक दृष्टि से अधिक संगत नहीं है। कहीं यह अधिक बड़ा हो गया है तो कहीं छोटा। उदाहरण के लिए 'चन्द्रगुप्त' के प्रथम अंक में ११, द्वितीय अंक में १०, तृतीय अंक में ९ और चतुर्थ अंक में १४ दृश्य हैं। इसकी अपेक्षा 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नागयज्ञ' और 'स्कन्दगुप्त' की अंक और दृश्य-योजना समान है। प्रथम दो में जहाँ सिर्फ ३ अंक हैं, वहीं स्कन्दगुप्त में ५ अंक हैं। 'स्कन्दगुप्त' के अंकों में दृश्य प्रायः समान ही हैं। प्रथम अंक में ७, द्वितीय अंक में ७, तृतीय अंक में ६, चतुर्थ अंक में ७ एवं पंचम अंक में ६ दृश्य हैं। 'अजातशत्रु' में तीन ही अंक हैं, उसके पहले अंक में ९, दूसरे अंक में १० और तीसरे अंक में ९ दृश्य हैं। स्पष्ट है कि 'चन्द्रगुप्त' की अपेक्षा इन नाटकों का अंक-विभाजन अधिक समान स्तर पर हुआ है।

अंक-विभाजन का आधार प्रसाद ने न तो संस्कृत नाट्य-परम्परा को बनाया और न पाश्चात्य नाट्य-विधान को। वस्तुतः प्रसाद ने अपनी स्वच्छन्द शैली के अनुरूप नाटकों के अंकों का विभाजन प्रस्तुत किया। नाटकों के अंक-विभाजन में प्रसाद की अपनी मौलिक देन है।

अभिनेयत्व

प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता पर विद्वान् आलोचक सबसे बड़ा प्रश्न-चिह्न लगाते हैं। अनेक लम्बे-लम्बे संवाद, लम्बे गीत, विषम घटनाएँ और सूक्ष्म दृश्य समाविष्ट हैं, जिससे एकान्विति में बाधा आती है; यद्यपि ये दोष कथानक की गम्भीरता और प्राचीनता में छिप जाते हैं। फिर भी इन्हें रंग-मंचीय दृष्टि से कष्टसाध्य मानने में संकोच नहीं होना चाहिए।

प्रसाद के नाटकों के अभिनय में उनका नितान्त नवीन अन्त भी बाधक बनता है। सारे राष्ट्र को एकसूत्र में आबद्ध कर चन्द्रगुप्त को सौंपकर चाणक्य सन्यास के लिए निकल पड़ता है, देवसेना (स्कन्दगुप्त) स्कन्दगुप्त से 'मेरे इस जीवन के देवता और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उस जीवन के प्राप्य' कहकर स्कन्दगुप्त को स्तब्ध करती हुई निकल जाती है। 'अजातशत्रु' में विच्छिन्न परिवार की एकता का सुख बिम्बसार नहीं सम्हाल पाते और गौतम बुद्ध की छत्रछाया में इस लोक से विदा होते हैं। इसी प्रकार 'ध्रुवस्वामिनी' में रामगुप्त मारा जाता है। 'राज्यश्री' की भी यही स्थिति है। अब प्रश्न उठता है क्या इन दृश्यों को रंगमंच पर दिखाया जाना चाहिए। वस्तुतः प्रसाद ने अपने अनुकूल एक नया अन्त, जिसे हम प्रसादान्त कहेंगे, दिया है। प्रायः कर्त्तव्य की इतिश्री पर कठोरकर्मा व्यक्तित्व पात्र जीवन की वास्तविक शान्ति एवं आनन्दवादी साधना की ओर उन्मुख हो जाते हैं। क्रूरकर्मा पात्र या तो नाटक के मध्य ही समाप्त हो जाते हैं या अन्त तक आते-आते प्रसाद उन्हें पाश्चात्ताप की अग्नि में खरा कर देते हैं और वे बन जाते हैं सुवृत्ति वाले पात्र। भटार्क, राक्षस इसी प्रकार के पात्र हैं।

प्रसाद के नाटकों की अभिनेयता में सबसे बड़ी आवश्यकता रिवाल्विंग स्टेज की होती है. साथ ही अन्य वैज्ञानिक साधनों की भी। मँगनी के दो-चार पर्दों से काम चला लेने वाले लोग प्रसाद के नाटकों में दृश्यों की भरमार कैसे सह सकते हैं। इसके अतिरिक्त नाटककार मंच को लक्ष्य कर रचना नहीं करता। वह नित नवीन नई टेकनीक निर्मित करने में प्रयत्नशील रहता है। वह प्राचीन मंच को छोड़ता जाता है। नाटक के अनुरूप मंच का निर्माण किया जाता है। प्रसाद के नाटकों के अनुरूप मंच-निर्माण रंगमंच निर्माताओं का काम है। पाश्चात्य राष्ट्रों में 'शॉ' और 'शेक्सपीयर' के घोर दुस्साध्य नाटक जब सुविधानुसार अभिनीत किए जा सकते हैं तो प्रसाद के नाटकों के प्रति शंका निर्मूल है।

प्रसाद अपने नाटकों की इस आलोचना से परिचित थे। उन्होंने इस पर विचार करते हुए अपने आलोचकों को करारा उत्तर दिया। यहाँ हम प्रसाद के ही मत को उद्धृत करना उपयुक्त समझते हैं। प्रसाद के अनुसार "रंगमंचों को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ता है और यह प्रत्येक काल में माना जाएगा कि काव्यों के अथवा नाटकों के लिए रंगमंच होते हैं। यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जायँ। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हों।"[१]

संवेदनशील एवं जीवन्त पात्रों की अवतारणा

नाट्य-क्षेत्र में प्रसाद ने पहली बार पात्रों को अधिक-से-अधिक सहानुभूति

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १०१, १०७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दी और उनके अन्तर्द्वन्द्वों एवं बाह्य संघर्षों को अत्यन्त मार्मिक ढंग से चित्रित कर उन्हें अमर बना दिया है। हर टाइप के चरित्रों से प्रसाद के नाटक भरे पड़े हैं। इसलिए उन्हें कई कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्येक चरित्र में अलग-अलग व्यक्तित्व प्रतिष्ठित हैं। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—"गम्भीर जीवन-दर्शन के तत्ववेत्ता आचार्य, कर्मभूमि के यशस्वी युवा सैनिक, राजनीति की भीषण ज्वाला से खेलने वाली कूटनीतिज्ञ स्त्रियाँ, त्यागमयी सकरुण प्रणय संवेदना की प्रतिनिधि सुकुमारियाँ—सभी प्रकार के चरित्र इन नाटकों में अवतरित हुए हैं।" दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रसाद के नाटक चरित्र-प्रधान हैं।

प्रसाद ने अपने नाटकों में इतिहास का बन्धन स्वीकार करते हुए भी ऐसे पात्रों और चरित्रों की योजना की है, जो ऐतिहासिक नहीं हैं। नाटकों में ऐतिहासिक घटनावली के अतिरिक्त जो अनुरंजकता आई है, वह वहुत कुछ इसी स्वतन्त्र कल्पना का परिणाम है। प्रसाद ने ऐतिहासिक घटनाक्रम का बोध स्वीकार करते हुए भी अपने पात्रों को सजीव व्यक्तित्व-सम्पन्न बनाया है। उनके सभी पात्र अपनी विशेषता रखते हैं। नाटकीय पात्रों में यह व्यक्तित्व-स्थापन या चरित्र-निरूपण का प्रयत्न हिन्दी-नाटकों के विकास की एक ऐसी कड़ी है जो हिन्दी के नाटककारों में प्रसाद जी का स्वतन्त्र स्थान निर्धारित करती है। उन्होंने ऐसे चरित्र रचे हैं, जो ऐतिहासिक परिस्थिति को चित्रित कर सकें और साथ ही जिनमें नाटकीय चरित्र बनने की क्षमता है। उन्होंने काल्पनिक पात्रों का ऐतिहासिक पात्रों से योग किया है। प्रसाद जी कवि थे, इसलिए वस्तु-विन्यास उनकी विशेषता नहीं है। चरित्रों की सजीवता और वहुरूपता उनका सर्वप्रथम गुण हैं। व्यक्ति के चित्रों के अंकन में उन्हें अधिक सफलता मिली है। चरित्र-निर्माण सम्बन्धी उनकी दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने सभी पात्रों में अलग व्यक्तित्व-योजना का ध्यान रखा है।"[१]

विकासकालीन नाटकों में प्रसाद पात्रों का रंगरूप देकर पूर्ण विकसित नहीं कर पाए हैं। पर प्रौढ़युगीन नाटकों में इनकी चरित्र-निर्माण कला का अनूठा प्रदर्शन हुआ है। प्रौढ़युगीन "नाटकों में सर्वाधिक आकर्षक, कलापूर्ण, प्रभावपूर्ण मौलिक एवं प्राणवान पक्ष चरित्र-निर्माण का है। पात्रों के चरित्र-निर्माण में नाटककार के असाधारण कलासौष्ठव के दर्शन सहज ही हो जाते हैं।"[२] मूलतः

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० १५२-५३।

२. डॉ० शान्ति गोपाल पुरोहित : हिन्दी नाटकों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० १२३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद ने दो प्रकार के चरित्र निर्मित किए : (१) प्रथम तो संस्कृत नाटकों के अनुकरण पर आदर्श चरित्र और (२) दूसरे यथार्थ भूमि पर खड़े चरित्र। प्रसाद के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक या पौराणिक हैं, इसलिए आदर्श चरित्रों का चयन उनके लिए अनिवार्य था। पर अपने पूर्ववर्ती या संस्कृत नाटककारों की भाँति उन्होंने इन चरित्रों को देवोपम न बनाकर उन्हें परिस्थितियों के घात-प्रतिघात में रखकर लोक-जीवन से दूर नहीं हटने दिया हैं। वे आदर्श चरित्र होकर भी मानवीय और यथार्थ प्रतीत होते हैं, इसलिए वे पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करते हैं। यथार्थ चरित्रों की अवतारणा अपेक्षाकृत अधिक मानवीय धरातल पर हुई है। इस वर्ग के पात्रों में उच्छृंखलता, प्रवंचना, कठोरता, हिंसा, आत्माभिमान, वासना, विलास, ईर्ष्या आदि प्रवृत्तियों की प्रधानता हैं। प्रसाद ने इन पात्रों की परिणति भी प्रायः आदर्श में ही की हैं। भटार्क, राक्षस, विजया आदि को हम उदाहरण के लिए ले सकते हैं। भटार्क अन्ततः एक विश्वसनीय वीर देश-सेवक सिद्ध होता है। राक्षस भी अपने द्वेष आदि भूलकर चन्द्रगुप्त के महामात्य का पद स्वीकार करता है और विजया का अन्त हो जाता है।

वस्तुतः चरित्र-चित्रण की पद्धति में प्रसाद बहुमुखी हैं। कहीं वे एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र के प्रति भाव व्यक्त कराकर चरित्र-चित्रण कर देते हैं और कहीं पात्र स्वयं ही अपना मनोविश्लेषण करके आत्म-परिचय दे देता है। यथा—"तुम्हारे मनोबल में स्वतन्त्रता है, तुम्हारी दृढ़ भुजाओं में आर्यावर्त्त के रक्षण की शक्ति है"[१]—इन शब्दों द्वारा अलका सिंहरण के वीर दर्प युक्त आनन का चित्र खींचती है।

और चाणक्य स्वयं अपने सम्बन्ध में गर्वोक्तियाँ करता हैं—"चाणक्य सिद्धि देखता है, साधन कैसे ही हों।"[२] "भला लगने के लिए मैं कोई कार्य नहीं करता, कात्यायन! परिणाम की भलाई ही मेरे कामों की कसौटी हैं।"[३] "चाणक्य की नीति में अपराधों के दण्ड से कोई मुक्त नहीं हैं—चाणक्य यह नहीं मानता कि कुछ असम्भव है। —"मैं क्रूर हूँ, केवल वर्तमान के लिए, भविष्य के सुख और शान्ति के परिणाम के लिए नहीं।"[४]

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० ५२।
२. वही, पृ० १२२।
३. वही, पृ० २१४।
४. वही, पृ० २३५-३६ एवं २३७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसके विपरीत एक तीसरा वर्ग भी मिलता है, जो उदासीनतावश अपने सम्बन्ध में सब कुछ बड़े सहज ढंग से कह उठता हैं। द्वन्द्व पर आधारित प्रसाद के ये सर्वाधिक प्रभावशाली जीवन्त चरित्र हैं। बाह्य-संघर्ष के अतिरिक्त एक और संघर्ष उनके आन्तरिक जीवन में चलता रहता है, जो उनके व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा में अपेक्षाकृत अधिक निर्णायक होता है। बाह्य-संघर्ष उनके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक व्यक्तित्व को उभारता है और आन्तरिक द्वन्द्व उनके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य को। स्कन्दगुप्त का एक वक्तव्य हमारे इस कथन को अधिक स्पष्ट कर देगा--"अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है। अपने को नियामक और कर्त्ता समझने की बलवती स्पृहा उससे बेगार कराती है। उत्सवों में परिचारक और अस्त्रों में ढाल से भी अधिकार-लोलुप मनुष्य क्या अच्छे हैं? (ठहर कर) उँह! जो कुछ हो, हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।"[१] और भी देखें—"वौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की-सी सम्पूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है कि तू राजा है—और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है—उसी खिलवाड़ी वटपत्रशायी बालक के हाथों का खिलौना है। तेरा मुकुट श्रमजीवी की टोकरी से भी तुच्छ है?"[२] प्रथम उदाहरण में जहाँ राज्य के प्रति स्कन्दगुप्त की उदासीनता का परिचय मिलता है, वहीं दूसरे में वह जीवन से ऊबा, थका-हारा व्यक्ति-रूप में चित्रित है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में स्कन्दगुप्त के चरित्र-निर्माण में प्रसाद ने इसी भित्ति को आधार बनाया है।

विजया का अपने प्रति उद्गार भी द्रष्टव्य है: "स्नेहमयी देवसेना का शंका से तिरस्कार किया, मिलते हुए स्वर्ग को घमण्ड से तुच्छ समझा, देव-तुल्य स्कन्दगुप्त से विद्रोह किया, किसलिए? केवल अपना रूप, धन, यौवन दूसरे को दान कर के उन्हें नीचा दिखाने के लिए? स्वार्थ पूर्ण मनुष्यों की प्रतारणा में पड़कर खो दिया—इस लोक का सुख, उस लोक की शान्ति! ओह!"[३] इस उद्धरण में जहाँ विजया के अन्तस् में चल रहे अन्तर्द्वन्द्व का आभास मिलता है, वहीं कुछ ही शब्दों द्वारा वह अपने सम्पूर्ण जीवन के कार्यों, उनके पीछे की प्रेरणा तथा उनमें प्राप्त असफलता का व्योरा प्रस्तुत कर देती है। इन पंक्तियों में उसका पश्चात्ताप भी झलकता है।

देवसेना का सम्पूर्ण चरित्र प्रसाद ने देवसेना के ही शब्दों में कितना उज्ज्वल बना दिया है—

---

१. प्रसाद: स्कन्दगुप्त, पृ० ९।
२. वही, पृ० १२३।
३. वही, पृ० १०५-६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"देवसेना : सो न होगा सम्राट ! मैं दासी हूँ। मालव ने देश के लिए उत्सर्ग किया है, उसका प्रतिदान लेकर मृत आत्मा का अपमान न करूँगी सम्राट।

स्कन्दगुप्त: देवसेना ! बन्धुवर्मा की भी तो यही इच्छा थी।

देवसेना : परन्तु क्षमा हो सम्राट। उस समय आप विजया का स्वप्न देखते थे, अब प्रतिदान लेकर मैं उस महत्व को कलंकित न करूंगी। मैं आजीवन दासी बनी रहूंगी; परन्तु आपके प्राप्य में भाग न लूंगी।

स्कन्दगुप्त: देवसेना ! एकान्त में, किसी कानन के कोने में, तुम्हें देखता हुआ, जीवन व्यतीत करूँगा। साम्राज्य की इच्छा नहीं—एक बार हाँ कह दो।

देवसेना : तब तो और भी नहीं; मालव का महत्व तो रहेगा ही, परन्तु उसका उद्देश्य भी सफल होना चाहिए। आपको अकर्मण्य वनाने के लिए देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट, क्षमा हो। इस हृदय में... आह ! कहना ही पड़ा स्कन्दगुप्त को छोड़ कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जाएगा। अभिमानी भक्त के समान निष्काम होकर उसी की मुझे उपासना करने दीजिए, उसे कामना के भँवर में फँसाकर कलुषित न कीजिए। नाथ ! मैं आपकी ही हूँ, मैंने अपने को दे दिया हैं, अब उसके वदले कुछ लिया नहीं चाहती।"[१]

इस उद्धरण में जहाँ देवसेना भारतीय त्याग और तपस्या का आदर्श प्रस्तुत करती है और यह बताती है कि प्रेम प्रतिदान नहीं चाहता, प्रतिदान से वह कलुषित हो जाता है, वहीं उसकी राष्ट्र प्रेम की भावना भी मुखर है। वह स्कन्दगुप्त को अकर्मण्य नहीं बनने देना चाहती इसलिए उससे दूर रहती है। लेकिन हृदय में एक मूर्ति आयी है, और वह निकलेगी भी नहीं। वह उसे भूल नहीं सकती और न उस स्थान को और किसी को देना चाहती है। वह अभिमानिनी भक्त के समान उसी की उपासना करने की छूट चाहती है। वह मूर्ति है स्कन्दगुप्त की। वह अपनी इस उपासना का प्रतिदान भी नहीं चाहती। उपर्युक्त उद्धरण में देव-सेना मानवीय धरातल से वहुत ऊपर उठी हुई प्रतीत होती है ; सम्भवतः प्रसाद को यह वात खटकी हो। वे उसे पाठकों के संसार से दूर न जाने देने के लिए उसकी चिन्ताधारा को नया मोड़ देते हैं ; जहाँ वह मानवीय कमजोरियों के साथ उपस्थित है। इस कर्मभूमि से विलग होते समय वह कहती है : "हृदय की कोमल कल्पना ! सो जा। जीवन में जिसकी सम्भावना नहीं, जिसे द्वार पर आए

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० १३४-३५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी बात है ? आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा सबसे मैं विदा लेती हूँ।"[1] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वह चाहकर भी स्कन्दगुप्त को भूल नहीं पाती, उसके हृदय में वेदना , अतृप्त प्रेम की एक टीस है। टीस इसलिए कि वह अपने द्वार से स्कन्द को लौटा देती है, पर उसके इस कृत्य पर उसका अंतस आन्दोलित हो उठता है। ये पंक्तियाँ उसकी असफलता को ही अधिक प्रकाशित करती हैं। पर उसका त्यागमय स्वरूप उसकी इस असफलता को तुच्छ बना देता है।

'ध्रुवस्वामिनी' के चरित्र-चित्रण में भी प्रसाद ने यही प्रणाली अपनायी है चन्द्रगुप्त का कथन है—"(आवेश से) यह नहीं हो सकता। महादेवि ! जिस मर्यादा के लिए—जिस महत्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने राजदण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया, उसका यह अपमान ! मेरे जीवित रहते आर्य समुद्र गुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पद-दलित न होना पड़ेगा। (ठहर कर) और भी एक बात है। मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण-सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया था, उसको भी मैंने केवल इसीलिए भूलने का प्रयत्न किया कि—"।[2]

इन पंक्तियों में चन्द्रगुप्त एक तरफ मर्यादा का पालन करने वाला धीर पुरुष है और दूसरी तरफ वह वीर, साहसी, मर्यादा की रक्षा के लिए मर मिटने वाला समुद्र गुप्त की शान को अपनी आन समझने वाला धैर्यवान पुरुष है। चन्द्रगुप्त के उपर्युक्त कथन द्वारा प्रसाद उसका सारा व्यक्तित्व उजागर कर देते हैं। चन्द्रगुप्त निर्भीक और स्पष्टवादी है : "अमात्य, तुम गौरव किसका कहते हो ? वह है कहीं ? रोग जर्जर शरीर पर अलंकारों की सजावट, मलिनता और कलुष की ढेरी पर बाहरी कुंकुम-केसर का लेप गौरव नहीं बढ़ाता। कुटिलता की प्रतिमूर्ति, बोलो . . .।

"रामगुप्त : यह उन्मत्त प्रलाप वन्द करो। चन्द्रगुप्त ! तुम मेरे भाई ही हो न। मैं तुमको क्षमा करता हूँ।"

"चन्द्रगुप्त : मैं उसे माँगता नहीं और क्षमा देने का अधिकार भी तुम्हारा नहीं रहा। आज तुम राजा नहीं हो। तुम्हारे पाप प्रायश्चित्त की पुकार कर रहे हैं। न्यायपूर्ण निर्णय के लिए प्रतीक्षा करो और अभियुक्त बनकर अपने अपराधों को सुनो।"[3]

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० १४७।

२. ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३०।

३. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ६१-६२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद ने अपने पात्रों में करुणा का जो उज्ज्वल रूप प्रस्तुत किया है वह बौद्ध दर्शन के प्रभाव का परिणाम है। उनके नारी पात्र करुणा की प्रतिमूर्ति हैं। 'मल्लिका' (अजातशत्रु नाटक) ऐसे पात्रों की नेत्री है।

मल्लिका अपने पति की हत्या के षड़यंत्र में सम्मिलित घायल राजा प्रसेनजित की सेवा लगन से करती है। भाई द्वारा आपत्ति उठाई जाने पर उसके द्वारा दिया गया उत्तर उसके विशाल हृदय और उसकी महत्ता तथा भारतीय नारी के आदर्श का सूचक है। "अपना कर्त्तव्य मैं अच्छी तरह जानती हूँ। करुणा की विजय-पताका के नीचे हमने प्रयाण करने का दृढ़ विचार करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है। अब एक पग भी पीछे हटने का अवकाश नहीं। विश्वासी सैनिक के समान नश्वर जीवन का बलिदान करूंगी—कारायण।"[१]

यहीं नहीं, उसका अजातशत्रु से यह कथन—"युद्ध में जब यशार्जन कर चुके, तब हत्या करके क्या अब हत्यारे बनोगे? वीरों को विजय-लिप्सा होनी चाहिए, न कि हत्या की।"[२] अजातशत्रु को अत्यन्त विनम्र बना देता है। इसी नाटक में चरित्र-चित्रण की प्रसाद की दूसरी विशेषता—दूसरों द्वारा दूसरे के चरित्र का चित्रण, भी मिल जाती है। प्रसेनजित का मल्लिका के प्रति निम्न कथन इसका स्पष्ट प्रमाण है:

"तुम्हारी शीतलता ने इस जलते हुए लोहे पर विजय प्राप्त कर ली है। बार-बार क्षमा माँगने पर हृदय को सन्तोष नहीं होता।...नहीं देवि! इस दुराचारी के पैरों में तुम्हारे उपकारों की बेड़ी और हाथों में क्षमा की हथकड़ी पड़ी है।" "देखो जननी की यह मूर्ति!—विपद में बच्चे की तरह उसने मेरी सेवा की है। क्या तुम इसमें भक्ति करते हो? यदि तुमने इन दिव्य चरणों की भक्ति पायी है, तो तुम्हारा जीवन धन्य है।"[३] प्रसेनजित के इन उद्‌गारों से मल्लिका की पवित्र मूर्ति अत्यन्त प्रकाशवान बन जाती है। वह क्षमा, करुणा, बलिदान, त्याग आदि की मूर्ति है, द्वेष, ईर्ष्या आदि से बहुत आगे बढ़ चुकी है।

अजातशत्रु में न तो नायक का उत्तरदायित्व है और न नायक का ओज, नायक-के-से तेज का भी उसमें अभाव है। उसकी प्रवृत्ति क्रूर और हिंसात्मक है। विरुद्धक में हम फिर भी ओज पाते हैं। उसमें तेज और महत्वाकांक्षा है, यौवन की लालसा और अवरुद्ध उत्साह है। सबसे अधिक उसे अपनी भुजाओं पर विश्वास

---

१. प्रसाद : अजातशत्रु, पृ० ८७।
२. वही, पृ० ९०।
३. वही, पृ० ८८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है। पर श्यामा के विरुद्ध उसकी क्रूरता क्षम्य नहीं। बिम्बसार एक विरत, दार्शनिक के रूप में हमारे सामने आता है और जो बुद्धि के संकेत पर राज्य त्याग देता है। बिम्बसार की अन्तःचेतना में हमें प्रसाद के भाग्यवाद का दर्शन होता है। पुरुष पात्रों की अपेक्षा इस नाटक में स्त्री पात्र अधिक सक्रिय हैं। छलना में महत्वाकांक्षा है। सपत्नीक द्वेष उसमें रोष का प्रमुख कारण नहीं, वह स्वभावजन्य है। उसमें तेज है, ईर्ष्या है, प्रतिद्वन्द्विता है। वासवी में संयम है, पति में भक्ति है। बन्दी अजात के लिए वासवी स्वयं उद्विग्न हो उठती है। उसका मातृत्व विकसित है। मागधी एक उलझा हुआ चरित्र है।

स्कन्दगुप्त का चरित्र विभिन्न गुणों से आभूषित, स्वाभाविक दुर्बलताओं सहित तथा व्यक्तिगत विचित्रताओं से समन्वित और गुण दोषों के ताने-बाने से बुना हुआ है। वीरत्व, परदुःख कातरता, शरणागत रक्षा, अपूर्व त्याग, क्षमा, करुणा, वचन पालन क्षमता आदि असाधारण विशेषताओं से परिपूर्ण और राजकीय अधिकारों के प्रति उदासीनता और विराग आदि दुर्बलताओं से युक्त स्कन्दगुप्त का चरित्र चरित्रोत्कर्ष के साथ मानवी दुर्बलता को लिए हुए है। मानवीय गुण-दोषों से युक्त प्रसाद की ऐसी चरित्र सृष्टियाँ ही पूर्ण मानव हैं न कि वे जिनमें देवोचित गुणों का समावेश किया गया हो। देवसेना के चरित्र से; जिसका जीवन आरम्भ में एक निरीह राजकुमारी और अन्त में एक त्यागपूर्ण, करुणामय कुमारी से अधिक कुछ भी नहीं है; नाटक की सुन्दरता में चार चाँद लग गए हैं। वह प्रेम, त्याग वेदना, कोमल आकार की सुन्दर मूर्ति है, जिसके हृदय की विशालता , मन की उदारता तथा जीवन की निःस्वार्थता ही उसके जीवन की करुणा के लिए उत्तरदायी है। यह उच्च भावना उसे अपने इस जीवन के देवता और उस जीवन के प्राप्य स्कन्द को प्रणय की उपलब्धि होने पर भी उसे ग्रहण नहीं करने देती। प्रथम स्कन्द को विजया की ओर आकृष्ट देख देवसेना ने विजया को 'हारकर भी जीती हुई' समझा था। अन्त में देवसेना अपने हृदय की अभिलषित वस्तु को अपने इस जीवन के देवता तथा उस जीवन के प्राप्य स्कन्द को स्वेच्छा से अस्वीकृत करने पर (केवल यह दर्शाने के लिए कि वह मानव के उत्सर्ग का प्रतिदान नहीं लेना चाहती) मेरे विचार में जीतने पर भी हार जाती है और इसी हार को उसने अपने अन्तिम विदा के गान में 'होड़ा-होड़ी' कहा है। उसका मन 'उसके निश्चय के प्रति तीव्र विरोध करता है और उसका हृदय डावाँडोल दिखाई पड़ता है। एक नारी के जीवन में इससे बड़ी ट्रेजडी और क्या हो सकती है?

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विजया देवी नहीं, नारी चरित्र की समस्त दुर्बलताओं को लिए सुख दुःख भोगिनी नारी है। चरित्र का क्रमशः अधोपतन तथा लक्ष्य से विफलता ही उसके जीवन-नाटक की कहानी है। उसका जीवन परिस्थितियों के साथ खिलवाड़ है। उसके चरित्र में नारी सुलभ कोमलता है, पर साथ ही एक निर्मूल आशंका उसे विजयगामिनी बना देती है। उसकी प्रतिहिंसा वृत्ति जगने के साथ उसका चरित्र उत्तरोत्तर अपकर्ष को प्राप्त होता हैं। देवकी के चरित्र में सच्चे स्त्रीत्व तथा मातृत्व की कल्पना तथा अनन्तदेवी के चरित्र में समन्वय ज्वाला तथा विमाता की कपट भावना का समावेश पाया जाता हैं। पटरानी देवकी के साथ कुचक्र करने के अपराध के पश्चात् जब वह इस पाप कृत्य के लिए अपने सौतेले पुत्र से उसके 'पिता की पत्नी' होने के सम्बन्ध के बल पर क्षमा याचना करती है, तब इस सम्बन्ध में व्यभिचार की ओर जितना संकेत मिलता है उतना मातृत्व की ओर नहीं। जयमाला में नारी-सुलभ नैसर्गिक स्वार्थ भावना तथा उसके पश्चात् उस स्वार्थ पर विजय के साथ स्त्रीत्व का उत्कर्ष बतलाया गया हैं। पुरगुप्त के चरित्र में वैमातृ भाई का सारा डाह, विरोध, क्रोध, कलह तथा समान भाव और चेष्टाएँ पाई जाती हैं। शर्वनाग के चरित्र में परीक्षा तथा उसमें असफलता तथा फिर उत्थान का दिग्दर्शन कराया गया है। और भटार्क के चरित्र में मानव का अधःपतन और बार-बार उठ कर गिरना द्रिखाया गया है। कुमार गुप्त के जीवन में विलास तथा व्यभिचार तथा बहु विवाह के दुष्परिणाम बताए गए हैं। वन्धुवर्मा में देश के लिए सर्वस्व त्याग का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

उनके सभी पात्र अपना स्वतन्त्र एवं प्राणवान व्यक्तित्व रखते हैं।—दार्शनिक बिम्बसार और उनके तत्वज्ञानी दाण्ड्यायन का व्यक्तित्व भी कितना साफ और तीखा है।

इससे स्पष्ट है कि प्रसाद के चरित्रों के वैशिष्ट्य स्वयं उन्हीं के वक्तव्यों से स्पष्ट हो जाते हैं। वैसे भी चरित्र-चित्रण का नाटक में अलग से अवकाश नहीं रहता है। कथोपकथन में हर पात्रों की विशेषताएँ स्पष्ट होती जाती हैं। प्रसाद इस कला में वेजोड़ हैं। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री चरित्र निर्माण में अधिक सफल हुए हैं। वस्तुतः उनके नारी पात्र उनकी स्वयं की सजीव अभिव्यंजनाएँ हैं। इनके चरित्रांकन में प्रसाद नारी हृदय की गहराइयों तक उतरे हैं। उनमें अपने हृदय की सम्पूर्ण विभूतियाँ—हृदय की कोमलता, कल्पना की रंगीनी एवं भावना की स्निग्धता उड़ेल दी है। गुलाब राय के अनुसार भी नारी पात्रों में आपको उनके हृदय का रूप-मोह और प्राणों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में बैठी हुई जिज्ञासा की टीस मिलेगी।"[1] प्रसाद स्वभाव से ही गम्भीर, भावुक एवं सौन्दर्य-प्रेमी कलाकार थे। नारी वैसे भी सौन्दर्य, रोमांस एवं करुणा की अद्भुत समष्टि हैं। भावुकता और सहृदयता उसके सहजात गुण हैं। इस अद्भुत साम्य के कारण प्रसाद को नारी हृदय की अभिव्यक्ति में अद्भुत सफलता मिली। प्रसाद ने अपने नाटकों में नारी के विभिन्न चित्र उकेरे हैं। जहाँ वपुष्टमा, पद्मावती, वासवी, राज्यश्री, मल्लिका, चन्द्रलेखा तथा जयमाला आदि भारतीय नारीत्व का प्रतिनिधित्व करने वाली और अतीत के गौरव तथा प्राचीन आदर्शों की रक्षा करने वाली महिमामयी नारी हैं, वहीं देवसेना, कल्याणी, कोमा, मालविका, कार्नेलिया तथा मणिमाला प्रेम में डूबी रहने वाली संघर्षशील अनुभूतिमयी नारियाँ प्रेम की जीवन्त प्रतिमाएँ हैं। इनका प्रणय वासना की पूर्ति के लिए नहीं है, अपितु आत्म बलिदान, आत्म समर्पण, त्याग एवं विसर्जन के लिए हैं। प्रणय की स्मृतियों से ओत-प्रोत ये पात्र अपने प्रेम को कहीं भी प्रकट नहीं करते, अवसर पाकर भी अपनी भावनाओं को समेटे ही रहते हैं। प्रसाद की नारियाँ केवल पुरुषों को ही सत्प्रेरणा नहीं देतीं अपितु स्वयं भी राष्ट्रीय हित के लिए, राजनैतिक द्वन्द्वों एवं युद्धों में सक्रिय सहयोग देती हैं।

प्रसाद की चरित्र निर्माण की इन्हीं विशेषताओं को लक्ष्य कर डॉ० नगेन्द्र ने कहा है—"प्रसाद में पात्रों में प्राण फूँक देने वाली प्रतिभा की सजीवता अद्वितीय थी।"[2] स्कन्दगुप्त, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, देवसेना जैसे इन्होंने अनेक सशक्त और अविस्मरणीय पात्रों का निर्माण किया है, जो हिन्दी नाटकों में दुर्लभ हैं।

विकट घोष, अजातशत्रु, विरुद्धक जहाँ महत्वाकांक्षी पुरुष पात्र हैं वहीं छलना, मागन्धी, शक्तिमती, सुरमा, अनन्तदेवी और विजया यथार्थ भूमि पर स्थित चरित्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं। स्कन्दगुप्त एक कर्मठ किन्तु निस्पृह सैनिक है। चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका, मातृभूमि के उद्धारक पात्र हैं।

वैयक्तिक संवेदनाओं और सामाजिक आदर्शों का संघर्ष तथा समन्वय

प्रसाद के नाटकों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता हैं कि उनके सभी नाटकों में वैयक्तिक संवेदनाओं और सामाजिक आदर्शों का संघर्ष मुखर हैं। यह अलग बात है कि अन्ततः प्रसाद इन दोनों का समन्वयात्मक रूप प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः प्रसाद के चरित्र वर्ग के प्रतिनिधि न होकर स्वतंत्र व्यक्तित्व

---

१. डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक नाटक, पृ० ११।

२. वही, पृ० ११।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रखते हैं पर समग्र रूप में वे अन्ततः प्रसाद की कला द्वारा सामाजिक बन जाते हैं।

'राज्यश्री' की राज्यश्री अपनी वैयक्तिक संवेदनाओं को लेकर पूरे नाटक में खड़ी दिखाई देती है। सम्पूर्ण नाटक उसी के इर्द-गिर्द घूमता है। वस्तुतः प्रसाद ने 'राज्यश्री' की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि इस नाटक में उनका लक्ष्य राज्यश्री के चरित्र को स्पष्ट करना है। पर राज्यश्री अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अनुभूति के साथ भारतीय नारी के आदर्श को भी प्रस्तुत करती है। जहाँ प्रारम्भ में प्रसाद राज्यश्री के वैशिष्ट्य को ही प्रकाशित करते हैं वहीं अन्त तक पहुँचकर उसमें भारतीय वीरांगना का स्वरूप खोज निकालते हैं। वह त्याग और तपस्या की मूर्ति दिखायी देती है।

'अजातशत्रु' की मल्लिका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व रखते हुए भी भारतीय नारी के क्षमा, और त्याग का आदर्श प्रस्तुत करती है। वह यह जानकर भी कि प्रसेनजित उसके पति की हत्या के षड्यन्त्र में शामिल था, उसकी रक्षा करती है। अजातशत्रु को वह क्षमा, शील का पाठ पढ़ाती है, विरुद्धक उसके पति का हत्यारा है, पर वह उसे क्षमा प्रदान करती है। वह वर्गगत चरित्र नहीं प्रतीत होती वह समाज की कटुताओं के विरुद्ध बड़ी वीरता से खड़ी है। प्रसाद ने भारतीय नारी के आदर्श स्वरूप उसे नाटक में उपस्थित किया है। इस प्रकार प्रसाद ने इस चरित्र में भी सामाजिक आदर्शों की प्रतिष्ठापना की है।

इसी नाटक की छलना नारी स्वभावगत ईर्ष्या, द्वेष से पूर्ण है। वासवी कोमल मातृत्व की भावना लेकर उपस्थित है। 'अजातशत्रु' एक विद्रोही राजकुमार है जिसमें स्वतन्त्र व्यक्तित्व का अभाव है। मल्लिका के क्षमा, शील के पाठ पर वह अकर्मण्य हो जाता है, पर छलना की ताड़ना से वह पुनः योद्धा बन जाता है। उसकी वैयक्तिक संवेदना तथा सामाजिक आदर्शों में संघर्ष स्पष्ट है। अन्ततः प्रसाद उसमें भी प्रेम का बीजारोपण करके पितृभक्त बना देते हैं।

'स्कन्दगुप्त' की देवसेना, अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के साथ नाटक में उपस्थित है। वह त्याग और तपस्या की मूर्ति है। 'स्कन्दगुप्त' से प्रेम करके भी वह उससे विवाह के लिए प्रस्तुत नहीं है। पर स्कन्दगुप्त की शुभेच्छा में वह हर क्षण लगी रहती है। वह स्कन्दगुप्त को राष्ट्रोद्धार की प्रेरणा देती है, उसे कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होने देती। मालव के समर्पण में वह प्रमुख भूमिका अदा करती है। राष्ट्र के प्रति उसमें अमिट प्रेम है। वह सामाजिक आदर्शों की स्थापना में लगी रहती है। देवसेना का व्यक्तित्व अपने में विलक्षण है। वह स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित करती है, उसकी संवेदनाएँ, अनुभूतियाँ कहीं भी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सामाजिक ढाँचे में फिट नहीं बैठती, पर प्रसाद अन्ततः उसे वर्गगत चरित्र बना ही देते हैं। वह भारतीय नारी की त्याग, तपस्या और वीरता की प्रतिमूर्ति है जिसमें भीषण संकट में भी धैर्य बनाए रख पाने की क्षमता है। वह प्रेम पथ पर असफल होकर भी त्याग से सफल बन जाती है।

'विजया' और अनन्तदेवी निश्चय ही वर्गगत चरित्र हैं। नारी सुलभ ईर्ष्या-भाव और द्वेष की धधकती भट्ठी में इनके हृदय सुलग रहे हैं, उसमें वह अपने सम्पूर्ण विद्रोहियों को भस्म कर देना चाहती है। पर इनमें भी वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता है। अपना विशिष्ट व्यक्तित्व ये पहले कायम रखती हैं, सामाजिक स्वरूप को बाद में।

स्कन्दगुप्त स्वयं अपनी विशिष्टताओं के साथ उपस्थित है। उसे राजकुमारों के वर्ग में आसानी से नहीं रखा जा सकता। एक तरफ उसमें साम्राज्य के प्रति उदासीनता का भाव है, दूसरी तरफ वह साम्राज्य की रक्षा के लिए सन्नद्ध भी दिखाई देता है और अपना सब कुछ समाप्त कर भी वह साम्राज्य की रक्षा करता है; विदेशी आक्रमणकारियों से उसका उद्धार करता है। पर वह साम्राज्य का निर्माण अपने लिए नहीं, अपने विरोधी और वैमातृ भ्राता पुरगुप्त के लिए करता है। स्कन्दगुप्त के चरित्र और उसके व्यक्तित्व वैशिष्ट्य से स्पष्ट है कि उसमें व्यक्तिगत संवेदनाओं की तीव्रता अधिक है अपेक्षाकृत सामाजिक आदर्शों की स्थापना के। वैसे अपनी कर्मठता और त्याग द्वारा वह अन्ततः सामाजिक आदर्श की प्रतिष्ठापना करता है। प्रसाद ने अन्ततः उसे सामाजिक आदर्श की स्थापना करने वाला सिद्ध किया है।

चन्द्रगुप्त की भी यही स्थिति है। उसका दुर्धर्ष व्यक्तित्व, उसकी कर्मठता, उसके विशाल साम्राज्य निर्माण की क्षमता निश्चय ही उसका व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य है, वह वर्गगत पात्र प्रतीत नहीं होता। पर प्रसाद ने उसमें भी मानवीय दुर्गुणों को खोज निकाला है, वह अपना स्वागत न किए जाने से रुष्ट होता है। यही नहीं मालविका से वह अपने अन्तस में चल रहे द्वन्द्व को स्पष्ट करता है। युद्ध से ऊबा हुआ, फिर भी उसको अपना लक्ष्य समझने वाला पात्र है।

चाणक्य तो अपनी वैयक्तिक संवेदनाओं के साथ ही उपस्थित है। वह कठोर छल, प्रपञ्च में लगा रहने वाला प्रेम भी कर सकता है, प्रसाद ने इस तरफ संकेत कर उसकी वैयक्तिक अनुभूतियों को उजागर किया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद के नाटकों के पात्र अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की विशिष्टता के कारण सामाजिक सन्दर्भ के अनुकूल अपने को सिद्ध नहीं कर पाते। पर प्रसाद अपनी कलात्मक क्षमता से उनमें कोई-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

न-कोई ऐसा मोड़ उपस्थित कर देते हैं कि वे अपना वैयक्तिक वैशिष्ट्य रखते हुए भी सामाजिक आदर्शों के वाहक बन जाते हैं।

संवाद

क्रिया व्यापार और चरित्र की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विशेषताओं को कथोपकथन द्वारा ही उद्घाटित करना सम्भव है। प्रसाद के कथोपकथन में उपर्युक्त दोनों विशेषताएँ एक सीमा तक ही दिखाई देती हैं।

वस्तुत: संवाद नाटकीयता का प्रमुख तत्व हैं। चरित्र-चित्रण और घटना विस्तार के लिए इसकी बड़ी उपयोगिता है। नाटक में लेखक जो कहना चाहता है वह सब उसे किसी-न-किसी पात्र के माध्यम से कहलाना होता है। उसे स्वयं कुछ कह पाने का अवकाश नाटक में नहीं होता, साथ ही इस प्रकार का प्रयत्न नाटक की गति में व्यवधान भी उपस्थित करता है। इसलिए संवादों की रचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि वे कथानक को अग्रसर करें और चरित्र-चित्रण में पूरा योग देते चलें। यही नहीं नाटककार भी कहीं-कहीं अपने अप्रत्यक्ष को पात्रों के संवादों के माध्यम से प्रकाशित करता हैं। देवसेना, मालविका और कोमा के माध्यम से पसाद ने अपने करुणापरक व्यक्तित्व की एकान्त गीतिमयता को मूर्त रूप दिया है।

प्रसाद ने अपनी प्रारम्भिक कृतियों में भावात्मक संवाद प्रयुक्त किए हैं। धीरे-धीरे प्रौढ़ रचनाओं में यह प्रवृत्ति समाप्त हो गई हैं। फिर भी कथनों में कवित्वपूर्ण शैली का प्रभाव स्पष्ट है। प्रसाद की भाषा पात्रानुकूल तो होती हैं पर यदा-कदा दार्शनिकता के कारण कथन कुछ दुरूह प्रतीत होते हैं तथापि इनमें संवेदनशीलता की वृद्धि होती है। काव्यात्मक भावुकता के कारण ऐसे संवाद बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं। उनमें एक ताजगी, स्निग्धता और तरलता दिखाई पड़ती है। कहीं-कहीं संवाद लम्बे हो गए हैं। उदाहरण के लिए अजातशत्रु में विम्बसार के स्वगत भाषण,। प्रसाद ने अपने पात्रों के लिए गीतों का भी सहारा लिया है जहाँ वह सब कुछ गीतों के माध्यम से कह जाते हैं। प्रसाद के अनेक पात्र अपने संवादों में कवित्वमय तथा संगीतात्मक भाव प्रकट करते रहते हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—"मैं संसार की भूली हुई वस्तु हूँ। न मैं किसी को जानना चाहता हूँ और न कोई मुझे पहचानने की चेष्टा करता है। तुमने कभी शरद के विस्तृत व्योममण्डल में रुई के पहल के समान एक छोटा-सा मेघ-खण्ड देखा है? उसको देखते-देखते विलीन होने या कहीं चले जाते भी तुमने देखा होगा। विशाल कानन की एक वल्लरी की नन्हीं-सी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पत्ती के छोर पर विदा होने वाली श्यामा रजनी के शोकपूर्ण अश्रु विन्दु के समान लटकते हुए एक हिमकण को कभी देखा है? और उसे लुप्त होते हुए भी देखा होगा। उसी मेघ-खण्ड या हिमकण की तरह मेरी भी विलक्षण स्थिति है।"[1]

चाणक्य के ओजस्वी कथन भी उसके तीव्र बुद्धि और अदम्य साहस के परिचायक हैं—"भिक्षोपजीवी ब्राह्मण। क्या बौद्धों का संग करते-करते तुम्हें अपनी गरिमा का सम्पूर्ण विस्मरण हो गया? चाटुकारों के सामने हाँ में-हाँ मिलाकर, जीवन की कठिनाइयों से वचकर, मुझे भी कुत्ते का पाठ पढ़ाना चाहते हो! भूलो मत, यदि राक्षस देवता हो जाय तो उसका विरोध करने के लिए मुझे ब्राह्मण से दैत्य बनना पड़ेगा।"[2]

नाटक के संवादों का सुबोध, व्यावहारिक, संक्षिप्त, मार्मिक एवं संवेगात्मक होना आवश्यक है। प्रसाद के नाटकों के अधिकांश संवाद इन विशेषताओं से युक्त हैं। सरल, सुबोध, व्यावहारिक संक्षिप्त संवाद की दृष्टि से राज्यश्री और ध्रुवस्वामिनी नाटक प्रथम स्थान के अधिकारी हैं। फिर क्रमशः कामना, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, विशाख, अजातशत्रु तथा जनमेजय का नागयज्ञ आदि नाटकों का स्थान है। प्रथम दो नाटकों में दार्शनिक शुष्क एवं नीरस प्रसंगों का अभाव है। प्रसाद के संवादों में जीवन्तता है, परिस्थिति का चित्रण करने की क्षमता है और इससे भी अधिक है उनमें पाठक के मन में उत्सुकता जगाने की सामर्थ्य। ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

(माणवक का प्रस्थान। तक्षक का प्रवेश)

तक्षक : सुन्दरी, इस विजन में, इस बीहड़ स्थान में तुम क्यों आई हो?

दामिनी : क्या आप ही तक्षक हैं?

तक्षक : क्यों, कुछ काम है?

दामिनी : हाँ, पर पहले अपना नाम वतलाइए।

तक्षक : हाँ, मेरा ही नाम तक्षक है।

दामिनी : मैं प्रतिशोध लेना चाहती हूँ।

तक्षक : किससे?

दामिनी : उत्तंक से, जिससें आप मणिकुण्डल लेना चाहते थे।

तक्षक : तुम कौन हो?

दामिनी : मैं चाहे कोई होऊँ। जो उत्तंक को मेरे अधिकार में कर देगा, उसे मैं मणिकुण्डल दूंगी।

---

१. प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ४८।

२. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० ७३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तक्षक : ठहरो, तुम बड़ी शीघ्रता से बोल रही हो।

दामिनी : क्या विश्वास नहीं होता ?

तक्षक : होता हैं, पर वह काम इसी क्षण तो नहीं हो जाएगा।

दामिनी : चेष्टा करो। शीघ्रता करो, नहीं तो तुम इस योग्य ही न रह जाओगे कि उसे पकड़ सको।

तक्षक : (हँसकर) क्यों ?

दामिनी : वह तुमसे बदला लेने के लिए जनमेजय के यहाँ गया हैं। बहुत शीघ्र तुम उसके कुचक्र में पड़ोगे।

तक्षक : इसका प्रमाण ? स्मरण रखना कि तक्षक से खेलना सहज नहीं हैं।"[1]

उपर्युक्त संवाद में प्रसाद ने जहाँ वातावरण की भयानकता का संकेत किया है वहीं, वह उनके वार्त्तालाप द्वारा तक्षक और दामिनी के चरित्र भी स्पष्ट कर देता है। दामिनी ईर्ष्या से तप्त नारी है, वह उत्तंक से बदला लेने के लिए तक्षक से समझौता करना चाहती हैं। तक्षक भी अपने विपक्षी को परास्त करना चाहता पर वह सोच-समझकर कदम उठाना चाहता है। तक्षक के कथन से ही उसकी क्रूरता उसकी सामर्थ्य और शक्ति तथा विवेक का परिचय मिल जाता है।

'चन्द्रगुप्त' में ऐसे स्थलों की भरमार है। छोटे-छोटे संवाद जहाँ कथानक को तीव्र प्रवाह प्रदान करते हैं वहीं वे पात्रों, परिस्थितियों, तथा परिवेश का पूर्ण संकेत दे जाते हैं। निम्नलिखित संवाद में पर्वतेश्वर के पश्चात्ताप से भरे हृदय का चित्र प्रस्तुत है—

"पर्वतेश्वर : तुम कौन हो ?

चन्द्रगुप्त : मगध राजकुमारी कल्याणी देवी।

पर्वतेश्वर : ओह पराजय ! निकृष्ट पराजय।"[2]

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है छोटे-छोटे संवाद किस भाँति चरित्र चित्रण में समर्थ होते हैं। प्रस्तुत उद्धरण में सिंहरण का कथन स्वयं उसके चरित्र की वीरता, धैर्य और देश रक्षा, जैसी विशेषताओं को स्पष्ट कर देता है :

"यवन : देवपुत्र ने आज्ञा दी है कि मालव-नेता मुझसे आकर भेंट करें और मेरी जलयात्रा की सुविधा का प्रबन्ध करें।

---

१. प्रसाद : जनमेजय का नागयज्ञ, पृ० ४९-५०।

२. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १०४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सिहरण : सिकन्दर से मालवों की ऐसी कोई सन्धि नहीं हुई है, जिससे वे इस कार्य के लिए बाध्य हों। हाँ भेंट करने के लिए मालव सदैव प्रस्तुत हैं—चाहे सन्धि परिषद् में या रणभूमि में।"[1]

मैं यहां एक और उद्धरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ। इस उद्धरण से एक तरफ चाणक्य की महिमा प्रतिपादित होती है। दूसरी तरफ पर्वतेश्वर के ग्लानिपूर्ण हृदय का आभास मिलता है और तीसरी तरफ चन्द्रगुप्त की विशेषताएँ भी प्रकाशित हो उठती हैं। साथ ही यह संवाद पाठक के मन में थोड़ी देर के लिए उत्कंठा भी जाग्रत करता है।

"पर्वतेश्वर : तुम अपनी बात मुझे स्मरण दिलाने आये हो? तो ठीक है। ब्राह्मण तुम्हारी बात सच हुई। यवनों ने आर्यावर्त को पद-दलित कर लिया। मैं गर्व में भूला था, तुम्हारी बात न मानी। अब उसी का प्रायश्चित्त करने जाता हूँ! छोड़ दो।

चाणक्य : पौरव! शान्त हो। मैं एक दूसरी बात पूछता हूँ। वृषल चन्द्रगुप्त क्षत्रिय हैं, कि नहीं, अथवा उसे मूर्धाभिषिक्त करने में ब्राह्मण से भूल हुई?

पर्वतेश्वर : आह, ब्राह्मण! व्यंग्य न करो। चन्द्रगुप्त के क्षत्रिय होने का प्रमाण यही विराट आयोजन है। आर्य चाणक्य मैं क्षमता रखते हुए जिस काम को न कर सका, वह कार्य निस्सहाय चन्द्रगुप्त ने किया। आर्यावर्त से यवनों को निकल जाने का संकेत उसके प्रचुर बल का द्योतक है। मैं विश्वस्त हृदय से कहता हूँ कि चन्द्रगुप्त आर्यावर्त का एकछत्र सम्राट होने के उपयुक्त है। अब मुझे छोड़ दो...।"[2]

'चन्द्रगुप्त' की अपेक्षा 'स्कन्दगुप्त' में छोटे-छोटे संवाद अधिक हैं।

"भटार्क : कौन?

शर्वनाग : नायक शर्वनाग

भटार्क : कितने सैनिक हैं?

शर्वनाग : पूरा एक गुल्म।

भटार्क : अन्तःपुर से कोई आज्ञा मिली है?

शर्वनाग : नहीं।

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० ११८।

२. वही, पृ० १२८-२९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भटार्क : तुमको मेरे साथ चलना होगा।
शर्वनाग : मैं प्रस्तुत हूँ, कहाँ चलूँ ?
भटार्क : महादेवी के द्वार पर।
शर्वनाग : वहाँ मेरा क्या कर्त्तव्य होगा ?
भटार्क : कोई न तो भीतर जावे और न भीतर से बाहर आने पावे।
शर्वनाग : (चौंककर) इसका तात्पर्य ?
भटार्क : (गम्भीरता से) तुमको महाबलाधिकृत की आज्ञा का पालन करना चाहिए।
शर्वनाग : तब भी क्या स्वयं महादेवी पर नियन्त्रण रखना होगा ?
भटार्क : हाँ।
शर्वनाग : ऐसा।"[१]

इस उद्धरण से जहाँ गूढ़ मंत्रणा और षड़यन्त्र का आभास मिलता है, वहीं शर्वनाग की स्वच्छ आत्मा का भी।

विजया का स्कन्दगुप्त के प्रति आकर्षण का एक कारण स्कन्द का राज-पद भी था। स्कन्दगुप्त की उससे उदासीनता देखकर उसका हृदय उधर से हटता नजर आता है। विजया का निम्न कथन उसके चरित्र के उस पक्ष को स्पष्ट कर देता है जो पद, मर्यादा, गौरव और सम्मान की पुजारिणी है।

"विजया : यह क्या राजकुमारी ! युवराज तो उदासीन हैं।
देवसेना : हाँ विजया, युवराज की मानसिक अवस्था कुछ बदली हुई है।
विजया : दुर्बलता इन्हें राज्य से हटा रही है।"[२]

और भी देखें—

"चक्रपालित : नहीं सम्राट ! उसे वन्दी कीजिए। वह देखिए...आ रहा है।
भटार्क : (प्रवेश करके) राजाधिराज की जय हो।
स्कन्दगुप्त : क्यों सेनापति ! यह क्या हो रहा है ?
भटार्क : आक्रमण की प्रतीक्षा सम्राट !
स्कन्दगुप्त : या समय की ?
भटार्क : सम्राट का मुझ पर विश्वास नहीं है, यह...।
चक्रपालित : विश्वास तो कहीं से क्रय नहीं किया जाता।
भटार्क : तुम अभी वालक हो।

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० ३०-३१।
२. वही, पृ० ४८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चक्रपालित : दुराचारी ! कृतघ्न ! अभी मैं तेरा कलेजा फाड़ खाता, तेरा . . . ।
भटार्क : सावधान ! अब मैं सहन नहीं कर सकता।"[१]

प्रसाद ने इस कथोपकथन के माध्यम से जहाँ स्कन्द के स्वच्छ हृदय, और धैर्य का परिचय दिया है वहीं वह भटार्क के कलुषपूर्ण हृदय का तथा उसकी वीर मूर्ति का चित्र अंकित किया है। चक्रपालित को उसने अत्यन्त साहसी, वीर, और कुचक्रों का भण्डाफोड़ करने वाले युवक के रूप में चित्रित किया है।

निम्नलिखित कथन में प्रवाह की तीव्रता, उत्तेजना और चरित्र पर प्रकाश डालने की प्रसाद की कला द्रष्टव्य है :

"अनन्तदेवी : क्यों ? इतनी उत्तेजना क्यों है ? सुनूं भी तो।
विजया : समझ जाओ।
अनन्तदेवी : नहीं, स्पष्ट करो।
विजया : भटार्क मेरा है।
अनन्तदेवी : तो ?
विजया : उस राह से दूसरों को हटाना होगा।
अनन्तदेवी : कौन छीन रहा है ?
विजया : एक पाप-पंक में फँसी हुई निर्लज्ज नारी। क्या उसका नाम भी बताना होगा समझो। नहीं तो साम्राज्य का स्वप्न गला दबा कर भंग कर दिया जाएगा।"[२]

उपर्युक्त कुछ उद्धरण इस बात के साक्षी हैं कि प्रसाद की भाषा पात्रानुकूल, अत्यन्त सार्थवान, गूढ़ व्यञ्जना युक्त तथा रससिक्त है। उसमें हृदय आकर्षित करने की सामर्थ्य है और हृदय पर तीव्र आघात की शक्ति भी। कहीं-कहीं छोटे-छोटे उत्तर या शब्दों के चयन भाव को अत्यन्त चुटीले बना देते हैं। उदाहरण के लिए ध्रुवस्वामिनी में शकराज द्वारा कोमा से नाराज होने का कारण पूछने पर वह कह उठती है—"रूठने का सुहाग मुझे मिला कब ?" अपने पर अभि-योग के कारण अलका पिता को सम्राट का सम्बोधन सिर्फ इसलिए नहीं देती है कि पिता कहने पर कहीं न्यायाधिकरण पक्षपाती न हो जाय। इसी 'सम्राट' शब्द से 'बिम्बसार' को घृणा है वह कहता है—'चुप रहो नाम लेकर नहीं पुकार सकते तो 'मनुष्य' कहो। मनुष्य होना सम्राट होने से कहीं श्रेष्ठ है।' ये कथन जहाँ बिम्बसार की मनःस्थिति के परिचायक हैं वहीं अत्यन्त हृदयस्पर्शी भी। नाटकों

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० ९९।
२. वही, पृ० १०३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में संवाद छोटे-छोटे होने चाहिए पर प्रसाद के नाटकों में प्रायः यह दोष आ गया है। इसका प्रमुख कारण है पात्रों की वाद-विवाद में भाव-शबलता, वक्ता अपना पक्ष एक साथ पूरा कह कर ही रुकता है, इससे प्रसाद को बचना चाहिए था। स्वगत भाषणों की भी भरमार है। इन स्वगत भाषणों से पात्रों की मनःस्थिति पर प्रकाश पड़ता है और पाठक उससे नैकट्य स्थापित करता है। संवादों में व्यंग्य, विनोद, विदग्घता तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि के छींटे प्रसाद की संवाद योजना कुशलता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

देशकाल

प्रसाद के नाटकों में देशकाल की सीमा बड़ी व्यापक है। एक छोर-पर 'जनमेजय का नागयज्ञ' का आख्यान है, जहाँ से कलियुग का प्रारम्भ होता है, दूसरे छोर पर पाश्चात्य प्रवृत्ति से प्रभावित 'एक घूंट' का भौतिक स्वच्छन्दतावाद है, जो विज्ञान एवं यंत्र युग के सत्य का पूर्वाभास है। इस अन्तराल में भारतीय इतिहास के अनेक गौरवपूर्ण प्रसंग अंकित हैं। जहाँ संस्कृतियों का संघर्ष या नए युग का प्रवर्तन हुआ है, वह सन्धिकाल प्रसाद की लेखनी पाकर अमर हो उठा है। गुप्तकाल, मौर्यकाल, बौद्ध युग और हर्षवर्द्धन युग तक का सर्वेक्षण इन नाटकों में उपलब्ध है। उन्होंने पात्रानुकूल भाषा तथा समयानुकूल वेशभूषा की सज्जा की। संकलन त्रय की स्थिति को प्रसाद ने पूरी तरह से निभाया है। जैसा विषय चुना है वैसा ही स्थान और तदनुकूल समग्र वातावरण। प्रसाद गहरे जीवन द्रष्टा थे। उनका आधुनिक जीवन का भी अध्ययन असाधारण था। अतएव उनके नाटकों में वर्तमान की समस्यायें स्पष्ट प्रतिबिम्बित हैं। 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' में राष्ट्रीयता एवं देशभक्ति का भव्य आदर्श है। युद्ध में सिकन्दर के आहत होकर गिरने पर सिंहरण के स्वर में प्रसाद बोल उठते हैं : "ठहरो, मालव वीरो ! ठहरो। यह भी एक प्रतिशोध है। यह भारत के ऊपर एक ऋण था ! पर्वतेश्वर के प्रति उदारता दिखाने का यह प्रत्युत्तर है। यवन ! जाओ, शीघ्र जाओ !"[१]

राष्ट्रीयता

प्रसाद का सम्पूर्ण नाट्य साहित्य तथा उनके पात्र राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत हैं। प्रसाद के काल में भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था। भारतीय जनता इस प्रभुत्व से मुक्ति पाने के लिए तड़फड़ा रही थी। इस समय आवश्यकता थी ऐसे

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १२३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नेता की जो उनका नेतृत्व कर उन्हें दासता की बेड़ियों से मुक्त करता। प्रसाद ने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय चेतना को उद्बुद्ध किया। उन्होंने स्वर्णिम अतीत का आदर्श सामने रखकर उसी के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान का समाधान ढूंढ़ने का उपक्रम किया। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, चाणक्य जैसे पात्रों का निर्माण किया और उनका आदर्श भारतीय जनमानस के समक्ष रखा जो आजीवन विदेशी शक्तियों से लड़ते रहे तथा उन्हें समाज और देश के बाहर खदेड़ा। यही नहीं बन्धुवर्मा, भीमवर्मा सिंहरण और मालव के समर्पण का आदर्श सामने रखकर उन्होंने देश में एकता का आंवाहन किया। और एक नेता की अनिवार्यता पर बल दिया जो स्वातंत्र्य संग्राम की लड़ाई को तीव्र बना सके।

जयमाला, देवसेना और अलका के रूप में उन्होंने त्यागमयी, तपस्या की मूर्ति नारियों का आदर्श सामने रखा। जिनका सम्पूर्ण राष्ट्रप्रेम में ओतप्रोत है। जयमाला, देवसेना मालव का अधीश्वर स्कन्दगुप्त को बनाकर राष्ट्रीय संकट के समय एकता की अनिवार्यता पर बल देती हैं। सम्पूर्ण राष्ट्र की रक्षा का महत्व उनके लिए अधिक है अपेक्षाकृत एक राज्य की रक्षा के। देवसेना जीवन साथी बनने के स्कन्दगुप्त के प्रस्ताव को इसलिए अस्वीकार कर देती है कि वह अकर्मण्य न वन जाय। प्रेरणा स्रोतस्विनी स्वयं भी अपने सर्वस्व के साथ इस पुनीत यज्ञ में आहुति वन जाती है। राष्ट्रीय चेतना की प्रखरता स्कन्दगुप्त नाटक में सर्वाधिक तीव्र है। 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक भी इसमें पीछे नहीं है। 'चन्द्रगुप्त' की अलका तो अपने भाई आम्भीक और पिता तक्षशिलाधीश के प्रति सिर्फ इसलिए विद्रोहिणी वन जाती है कि वे विदेशी आक्रान्ता सिकन्दर को अपने राज्य से होकर भारत में घुसने का पथ प्रदान करते हैं। अन्त में वह अपने भाई को भी सत्पथ पर खड़ा करती है। राष्ट्रसेवा में आम्भीक स्वयं को उत्सर्ग कर देता है।

'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'जनमेजय का नागयज्ञ' और 'राज्यश्री' आदि सभी नाटक राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत हैं।

संघर्ष

पाश्चात्य सिद्धान्तों के अनुसार संघर्ष नाटक का प्राण व आधार है। प्रसाद ने अपने नाटकों में संघर्ष की योजना अत्यन्त विकसित रूप में की है। यही कारण है कि इनके नाटक पाठकों पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं। प्रसाद ने अपने नाटक में बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के संघर्ष का स्वरूप उपस्थित किया है।

प्रसाद के अधिकांश नाटक राजतन्त्र से सम्बन्धित हैं और किसी-न-किसी राजकीय उथल-पुथल, अशान्ति एवं विद्रोह का उद्घाटन करते हैं। 'अजातशत्रु'

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाटक राजकीय संघर्ष पर ही आधृत हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'चन्द्रगुप्त, 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' की आधार भूमि, संस्कृति, जाति, राज्य, धर्म आदि का संघर्ष है। इसमें एक संस्कृति, एक जाति, एक राज्य और एक धर्म का दूसरी संस्कृति, दूसरी जाति, दूसरे राज्य और दूसरे धर्म के साथ संघर्ष प्रदर्शित है। आर्य और नाग जाति का संघर्ष जहाँ 'जनमेजय का नागयज्ञ' का प्राण है, वहीं आर्य और हूणों का संघर्ष 'स्कन्दगुप्त' की आत्मा। 'चन्द्रगुप्त' आर्य और ग्रीकों की संघर्ष भूमि पर आधारित नाटक है तथा 'ध्रुवस्वामिनी' में आर्य और शक का संघर्ष रूपायित है। 'राज्यश्री' की आधारशिला विभिन्न राज्यों के संघर्ष पर स्थित है। इसके अतिरिक्त इन सभी नाटकों में गृह कलह संघर्ष भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। 'अजातशत्रु', 'स्कन्दगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' में यह अधिक प्रकाशित है।

इन बाह्य संघर्षों के अतिरिक्त प्रसाद के नाटकों में आन्तरिक संघर्ष का स्वरूप भी उपस्थित है जो नाटकों को अधिक सफल बनाता है। अन्तःसंघर्ष बाह्य संघर्ष से अधिक प्रभावोत्पादक एवं महत्वपूर्ण है।

प्रसाद मानव मन के बड़े पारखी थे। अपने पात्रों को जीवन्त स्थिति में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में उन्होंने अनेक गूढ़ रहस्यों से पर्दा हटाया जिससे वे एक साथ आदर्शरूप में और अपनी मानवोचित कमजोरियों के साथ साधारण मानव सदृश्य हमारे समक्ष उपस्थित हो सकें। इसके लिए प्रसाद ने हर पात्रों के भीतर चल रहे झंझावातों को उन्हीं द्वारा रेखांकित करवा दिया है। उस अन्तर्द्वन्द्व ने उन्हें कहीं कर्म पथ से विचलित भी नहीं किया है पर द्वन्द्व की स्थिति तो है ही।

समस्त आर्यावर्त को निरापद वना कर चन्द्रगुप्त को सौंप देने वाला चाणक्य भी सुवासिनी को लेकर चल रहे मन के द्वन्द्व को रोक नहीं पाता। 'स्कन्दगुप्त' प्रारम्भ से ही उदासीन नजर आता है। "(ठहरकर) उँह! जो कुछ हो, हम तो साम्राज्य के एक सैनिक हैं।"[१] 'ध्रुवस्वामिनी' का 'चन्द्रगुप्त' भी अन्त में कह उठता है—"जिस मर्यादा के लिए जिस महत्व को स्थिर रखने के लिए, मैंने राजदण्ड ग्रहण न करके अपना मिला हुआ अधिकार छोड़ दिया, उसका यह अपमान। मेरे जीवित रहते आर्य समुद्रगुप्त के स्वर्गीय गर्व को इस तरह पद-दलित होना न पड़ेगा। (ठहर कर) और भी एक बात है। मेरे हृदय के अन्धकार में प्रथम किरण-सी आकर जिसने अज्ञात भाव से अपना मधुर आलोक ढाल दिया

१ प्रसाद : स्कंदगुप्त, पृ० ९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

था, उसको भी मैंने केवल इसलिए भूलने का प्रयत्न किया कि..(सहसा चुप हो जाता है।)"[१]

बिम्वसार इस मानव स्थिति से ही ऊब गया है। दूसरी तरफ विरोधी पात्र भी इसी प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व में लिप्त हैं।

अन्तर्द्वन्द्व की योजना से नाटक को गति मिली है। प्रसाद इस क्षेत्र में सबसे धनी कलाकार हैं।

पूर्वी तथा पश्चिमी नाट्यादर्शों का मिश्रण और नया नाट्य शिल्प

प्रसाद के पूर्व ही अनेक अंग्रेजी और बँगला के नाटक हिन्दी में अनूदित हो चुके थे। जिससे प्रभावित होना प्रसाद के लिए स्वाभाविक था। प्रसाद ने प्राचीन भारतीय वाङ्मय का बड़ा गहरा अध्ययन किया था। वे भारतीय नाट्य सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित थे। पश्चिमी नाट्य शिल्प के भी वे गहन अध्येता थे। मात्र भारतीय नाट्य सिद्धान्तों के आधार पर आधुनिक काल में नाटकों की रचना को उन्होंने उपयुक्त नहीं माना। अतएव उन्होंने भारतीय और पश्चिमी नाट्यादर्शों का समन्वय करके अपने तथा वर्त्तमान परिस्थिति के अनुकूल एक नए नाट्य शिल्प का विकास किया।

भरत के नाट्य शास्त्र में रंगमंच, अभिनेता, उनके वस्त्राभरण, संगीत आंगिक, वाचिक और आहार्य अभिनय आदि का विस्तृत वर्णन है। भरत के पश्चात् धनंजय का दशरूपक नाटक ग्रन्थ प्राप्त होता हैं। इसमें सिर्फ चार उपकरण वस्तु, नेता, रस और संवाद माने गए हैं। भारतीय मत से नाटक की वस्तु तीन प्रकार की हो सकती हैं—प्रख्यात्, उत्पाद्य और मिश्र। प्रख्यात् कथानक किसी प्राचीन पौराणिक या ऐतिहासिक व्यक्ति से सम्बन्धित होता है। उत्पाद्य नाटक में कवि अपनी कल्पना द्वारा पात्रों की सृष्टि करता है, मिश्र कथानक वह है जिसमें उत्पाद्य और प्रख्यात् कथानकों का मिश्रण है। इसमें कथानकों में प्रख्यात् कथानक सर्वश्रेष्ठ माना गया है। कथानक के दो विभाग किए गए हैं आधिकारिक और प्रासंगिक। प्रासंगिक के दो भेद होते हैं—१. पताका और २. प्रकरी। नाटक में कार्य की पाँच अवस्थाएँ होती हैं—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। 'आरम्भ' में नायक अपनी लक्ष्य प्राप्ति के लिए इच्छा प्रकट करता हैं। प्रयत्न में वह इष्ट प्राप्ति के लिए गम्भीर उद्योग करता हैं। 'प्राप्त्याशा' में इष्ट की प्राप्ति और अप्राप्ति का द्वन्द्व उस अवस्था पर

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ३०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहुँचता है जहाँ प्राप्ति की सम्भावना हो जाती है। नियताप्ति में इष्ट के प्राप्त करने में केवल मुख्य बाधा शेष रह जाती है जिसके दूर होते ही कार्य सिद्धि हो जाती है। इष्ट सिद्धि की अवस्था को फलागम कहते हैं। फलप्राप्ति के संबंध से वस्तु या कथानक को भी पाँच भागों में विभक्त किया जाता है। इन्हें अर्थ प्रकृति से अभिहित किया जाता है। इनके नाम हैं बीज, विन्दु पताका, प्रकरी और कार्य। वस्तु या कथानक सम्बन्धी तीसरा तत्व है सन्धियाँ। नाटक के वे चमत्कारपूर्ण स्थल जो सहसा सहृदयों की दृष्टि आकृष्ट करते हैं, तथा जिन स्थलों से कथानक एक नवीन मोड़ या दिशान्तर प्राप्त करता है, सन्धि कहलाते हैं। ये भी पाँच होती हैं।

कथानक के अन्य दो भेद भी किए जाते हैं, दृश्य और सूच्य। सूच्य का अर्थ है जो सूचित किया जाता है। सूच्य के पाँच भेद किए गए हैं। विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकमुख और अंकावतार।

नाटक में प्रधान पात्र नायक होता है। स्वभाव भेद से इसके चार प्रकार होते हैं—धीरोदात्त, धीर ललित, धीर प्रशान्त और धीरोद्धत। नायक का साथी पीठमर्द कहलाता है। प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' का मित्र सिंहरण पीठमर्द है। नायिकाएँ तीन प्रकार की मानी गयी हैं। स्वकीया, अन्या और गणिका। स्वकीया के आयु के हिसाब से तीन भेद होते हैं—मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा (प्रौढ़ा)। नायकों और नायिकाओं के सम्बन्ध के अनुसार नायिकाओं के आठ भेद होते हैं। नायक का अन्तरंग मित्र ब्राह्मण और विदूषक होता है। कवि या कलाओं का प्रेमी नायक का मित्र विट कहलाता है। रस नाटक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। नाटक में वीर, शृंगार रस प्रधान होते हैं। रसानुकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए वृत्तियों के प्रयोग का विधान है; ये चार मानी गयी हैं—कैशिकी, सात्वती आरभटी और भारती।

पश्चिमी परम्परा के अनुसार नाटक का प्रमुख तत्व 'वस्तु' है। अरस्तू ने वस्तु विन्यास की चर्चा बड़े विस्तार से की है। अरस्तु के अनुसार चरित्र के बिना नाटक बन सकता है, किन्तु वस्तु के बिना उसकी सत्ता नहीं रह सकती। वस्तु नाटक का सचेतन और गतिशील आधार है। नाटकीय वस्तु अपने में पूर्ण तथा निरपेक्ष होनी चाहिए साथ ही उसका एक समुचित आकार अथवा विस्तार भी आवश्यक है। वस्तु की पूर्णता के लिए उसका आदि, मध्य और अन्त निर्धारित होना चाहिए। अरस्तू के अनुसार नाटकीय कथावस्तु में प्रासंगिक कथा अथवा घटनाओं का बाहुल्य न होना चाहिए। पात्र के सम्बन्ध में उसका मत है कि उसे उदात्तमना होना आवश्यक है, परन्तु वह चरित्र अत्यन्त असाधारण या आदर्श

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि उस स्थिति में भी करुणा या भय की सृष्टि न होगी।

नाटक का अन्य तत्व पात्रों के संवादों में व्यक्त होने वाली देशकाल सम्बन्धी विचारधारा है। अरस्तू ने नाटक की भाषा योजना पर अत्यन्त विस्तारपूर्वक लिखा है। नाटक का पाँचवाँ और अन्तिम तत्व गीत है। इसके सम्बन्ध में अरस्तू का मुख्य वक्तव्य यह है कि नाटकों के गीत नाटक के अभिन्न अंग होने चाहिए। वे ऊपर से जोड़े हुए नहीं हो सकते। पश्चिमी नाटकों में विरोध, संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व को प्रधानता दी जाती है।

पूर्वी और पाश्चात्य नाट्य शिल्पों के विशद विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतः दोनों नाट्य शिल्पों में बहुत अधिक असमानता नहीं है। वस्तु के महत्त्व को दोनों स्वीकार करते हैं। भारतीय पद्धति में उसका अवस्थाओं के आधार पर पाँच भेद करते हैं तो पाश्चात्य पद्धति में भी उसके पाँच भेद किए गए हैं— प्रारम्भ, विकास, चरम सीमा, उतार और अन्त।

भारतीय आचार्यों ने सिर्फ तीन तत्व वस्तु, पात्र और रस को प्रधान माना है लेकिन पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्त के अनुसार मूल तत्व छह हैं—वस्तु, पात्र, कथोपकथन, देशकाल भाषा शैली और उद्देश्य। विस्तृत विवेचन से हम पाते हैं कि इन सभी ६ तत्वों को भारतीय मनीषी अपने तीन तत्वों में समाविष्ट कर लेते हैं। आंग्ल नाटकों की भाँति ही भारतीय नाटकों के भी तीन सोपान वर्णित हैं— आदि, मध्य और अन्त।

भारतीय नाट्य सिद्धान्तों के अनुसार नाटक के सभी पात्रों को अपने कर्म के अनुसार फल भोगना पड़ता है। अन्यायी को यहां दण्ड मिलना निश्चित है, पर पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्त में इसका अभाव है। दुष्ट से दुष्ट पात्र सफलता प्राप्त करते दिखाए जाते हैं। शेक्सपीयर के 'आथेलो' का इयागो इसी प्रकार का पात्र है। आंग्ल तथा भारतीय नाटकों के अवसान का अन्तर, वास्तव में दोनों देशों के नाटकों के उद्देश्य का अन्तर है, उनकी सांस्कृतिक विभिन्नता का अन्तर है।

विरोध तत्व को छोड़ देने से भारतीय तथा आंग्ल वस्तु में कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। अन्तर सिर्फ फलसिद्धि का रह जाता है। भारतीय नाट्य शास्त्र में अर्थ प्रकृति और सन्धि वस्तु विन्यास के अनिवार्य अंग हैं, पर पाश्चात्य नाट्य सिद्धान्त में इनका कोई स्थान नहीं। अरस्तू के अनुसार नायक को साधारण पात्र नहीं होना चाहिए। नायक किसी उच्च वंश का तेजस्वी तथा पराक्रमी होना चाहिए। यही तो भारतीय आचार्य भी मानते हैं। भारतीय नाटकों का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रतिनायक विदूषक क्रमशः आंग्ल नाटकों में खलनायक तथा जोकर के रूप में विद्यमान है।

रंगमञ्च की दृष्टि से भारतीय तथा आंग्ल नाटकों में पर्याप्त अन्तर है। आंग्ल रंगमञ्च पर मृत्यु, आलिंगन, चुम्बन आदि दृश्य दिखाए जाते हैं जबकि भारतीय रंगमञ्च सूच्य विधान द्वारा इन घटनाओं की मात्र सूचना देते हैं। उनका प्रदर्शन निषेधात्मक है।

प्रसाद का नवीन नाट्य-शिल्प

प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य नाट्य शैलियों के समन्वय से एक नवीन नाट्य शिल्प को जन्म दिया। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में पाश्चात्य शैली के अतिरिक्त पारसी ढंग के पद्यात्मक संवाद और गाने मिलते हैं तथा कहीं बंगला वालों की तरह लम्वे-लम्वे कथोपकथन और स्वगत भाषण भी दिखाई पड़ते हैं। प्रसाद का यह अभिनव प्रयोग 'सज्जन', 'प्रायश्चित्त' और 'विशाख' में प्रयोग रूप में ही है। पर 'अजातशत्रु' में इसका उज्ज्वल रूप उपस्थित है। एक प्रकार से प्राच्य और पाश्चात्य नाट्य-प्रणालियों के मुख्य एवं आवश्यक उपकरणों की यह सम्मेलन भूमि है, जिसे प्रसाद ने अपनी प्रतिभा के बल पर बहुत कुछ सन्तुलित, व्यावहारिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान किया। 'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', और 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद का यह नाट्य-शिल्प अपने चरम उत्कर्ष पर स्थित है। इनमें एक ओर संस्कृत नाट्य शैली के उपकरण वस्तु, नायक और रस का समुचित विनियोग है और दूसरी ओर पाश्चात्य पद्धति के संघर्ष, क्रियाशीलता, व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा अन्तर्द्वन्द्वात्मक चरित्रांकन पद्धति आदि नवीन उपकरणों को भी ग्रहण किया गया है। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि वस्तु चयन में प्रसाद संस्कृत नाट्य परम्परा से उतने अधिक प्रभावित नहीं हैं जितने वे अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति से प्रभावित हैं। स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रवृत्ति ही अतीतोन्मुखी होती है। इसीलिए प्रसाद की दृष्टि अतीत पर गई।

प्रसाद ने वस्तु विधान में पाश्चात्य पद्धति के अनुकरण पर बाह्य संघर्ष की योजना कर नाटक को कौतूहलवर्द्धक और अविस्मरणीय वना दिया है। इस नवीन शिल्प में उन्होंने भारतीय आत्मा को सुरक्षित रखा। दृश्यों और अंकों की भारतीय परिपाटी को कहीं उन्होंने स्वीकार किया है और कहीं अस्वीकार। विदूषक की भारतीय परम्परा को किसी-न-किसी रूप में कायम रखा। पाश्चात्य पद्धति पर उन्होंने नाटकों में मृत्यु भी दिखाई। नन्द, पौरव, शकराज,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

रामगुप्त आदि रंगमञ्च पर मारे जाते हैं। पाश्चात्य पण्डितों ने संघर्ष, सक्रियता और समष्टि प्रभाव को नाटक का सब कुछ माना है।

चरित्र-चित्रण में प्रसाद ने पात्रों का चुनाव तो भारतीय पद्धति पर किया किन्तु पाश्चात्य शैली की विशेषताओं को ग्रहण कर उन्होंने अविस्मरणीय चरित्र सृष्टि की। प्रसाद के सभी प्रधान पात्र जहाँ एक तरफ उच्च कुल से सम्वद्ध हैं वहीं पाश्चात्य द्वन्द्व मूलक वैशिष्ट्य का समावेश कर और नवीन मनोवैज्ञानिक प्रकाश उड़ेलकर उन्हें भू-लोक के प्राणियों से भिन्न नहीं होने दिया है। पाश्चात्य नाटकों की करुणा प्रसाद के नाटकों में आद्यन्त व्याप्त है। वेदना की यह सहज धारा स्त्री पात्रों में प्रायः असफल प्रेम के रूप में दृष्टिगत होती है। इन पात्रों के मूल में नियति और चरित्र दौर्बल्य को आधार वनाया गया है। प्रेम की वेदी पर मालविका और कोमा के मूक बलिदान, कल्याणी का आत्मघात और देवसेना की विषादपूर्ण विदाई में परिस्थिति का व्यंग्य और भाग्य का अट्टहास तो है, साथ में नारी स्वभाव की सामान्य दुर्बलता का भी हाथ है। पर नाटकों में आद्यन्त व्याप्त वेदना की सजल धारा अन्त में सुखपूर्ण हो जाती है। अतः सभी नाटकों का पर्यवसान भारतीय परम्परा के अनुसार सुखान्त ही हुआ है। किन्तु दुःख की छाया पाठक और दर्शक के मानस पटल से हट नहीं पाती। सुखान्त होने पर भी अजातशत्रु के अन्तिम दृश्य में बिम्बसार का आकस्मिक अवसान अवसाद को और घना बना देता है। इसी प्रकार हूणों को बाहर कर स्कन्दगुप्त एक कर्मठ योद्धा और विजेता के रूप में पाठकों के सामने सुख की छाया लेकर आता है पर देवसेना से उसका विछोह क्या इस सुख की रेखा को मलिन नहीं बना देता। वस्तुतः प्रसाद भारतीय अन्त के हिमायती थे, इसलिए वे भारतीय आदर्श को नहीं छोड़ पाते। दूसरी तरफ वे पाश्चात्य आदर्श का मेल कर एक अभिनव स्वरूप गढ़ने में लगे थे, तत्कालीन परिस्थिति में वे उसे छोड़ भी नहीं सकते थे। अतएव उन्होंने पूर्वी और पाश्चात्य परम्परा के मिश्रण से एक नितान्त नवीन अन्त की खोज की, जिसे हम प्रसादान्त की संज्ञा दे सकते हैं।

वस्तुतः उन्होंने अभिनव नाट्य शिल्प निर्माण के इस प्रयास में भारतीय नाट्यशास्त्र की वे सभी सीमाएँ तोड़नी चाहीं जो नई परिस्थिति में अपना महत्व खो चुकी थीं, और इनके स्थान पर उन्होंने यथावसर पाश्चात्य पद्धति को ग्रहण किया जो नाट्य शिल्प के लिए अधिक उपयोगी थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसाद ने आधुनिक और पाश्चात्य शैली के साथ भारतीय पद्धति के मूल रूप का सुखद समन्वय किया हैं जिससे उनके नाटकों का गौरव और महत्व अमिट हो गया है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नाटकीय गीत

पाश्चात्य नाटकीय तत्वों में गीतों को प्रधानता दी गयी है। अरस्तू ने कहा है कि ये गीत नाटक के अभिन्न अंग होने चाहिए ऊपर से जोड़े हुए प्रतीत न हों। प्रसाद के नाटकों के गीत उनकी तन्मयता, उनकी भाव-प्रवणता और कोमल कल्पना के प्रमाण हैं। वे कहीं भी नाटक से अलग या थोपे हुए नहीं लगते।

प्रसाद का गीत संसार प्रकृति के उस पार और नियति की दासता से बहुत दूर एक अलग ही क्षणिक उच्छ्वास है। पृथ्वी का ठोस आकर्षण मनुष्य का नियति कृत दुखमय, उसकी जन्मजात बर्बरता से उठी हुई कलुषता का सारा खिंचाव उन्हें बार-बार नीचे की ओर, प्रत्यक्ष की ओर, कठोर सत्य की सतह पर ला पछाड़ता है। परन्तु उतनी ही बार मानवता का स्वर्गीय अंश, कवि की कल्पना के थिरकते हुएं उस पार, उस ओर, उस ऊँचे संसार में ले जाते हैं। उनकी गगन-विहारिणी कल्पना शक्ति में वह हल्कापन, उड़नापन है जो मनुष्य की पाशविकता को यहीं छोड़ कर केवल उसके हृदय की सुकोमल भावना को ही अपने साथ ऊपर उठा पाता है। प्रसाद के गीत कल्पना यान पर विचरते हुए छाया चित्र हैं।[1]

प्रसाद के गीत विशेषकर उनके उन नाटकों में मिलते हैं जहाँ उनकी स्थानीय उपयुक्तता सिद्ध है। यह उन्हें भावों के घात-प्रतिघात से रंगमंच से सटाए रखता है, जो उन्हें पात्र विशेष की प्रकृति बन्धन में बाँध रखता है।

प्रसाद के गीतों में कोरी कल्पना ही नहीं है। अनुभूति, कल्पना लोक में प्रकृति सौंदर्य की व्यापकता लेकर देशकाल, पात्र की सीमित परिधि को प्रकृति की विश्व व्यापकता में परिणत कर के भी हमारे अनुभव से परे की नहीं बन पाती। कीट्स की भाँति ही प्रसाद की कल्पना में इन्द्रिय सुख का स्पंदन वर्तमान है। फर्क इतना ही है कि कीट्स की भाँति दैहिक न होकर कल्पनात्मक ही है। मालविका जब चन्द्रगुप्त से वास्तविक जगत में प्रेम नहीं कर पाती और चन्द्रगुप्त का सशरीर रहना भी उसके पास जब अभाव रूप ही रहता है तब उसकी वेदना चन्द्रगुप्त की शैय्या का सहारा लेकर अन्तिम क्षणों में ऐसे सुख का सृजन करती है जो सिर्फ कल्पना पर टिका हुआ है, परन्तु भावोद्वेग के कारण वह असम्भव नहीं प्रतीत होता। शैय्या का स्पर्श उसकी इन्द्रियों को स्पन्दित कर देता है—

ओ मेरी जीवन की स्मृति ? ओ अन्तर के आतुर अनुराग ?
बैठ गुलाबी विजन उषा में, गाते कौन मनोहर राग।

---

१. प्रसाद की कला : बाबू गुलाब राय, पृ० १४०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"चेतन सागर उर्मिल होता यह कैसी कम्पनमय तान;
यों अधीरता से न मोड़ लो अभी हुए हैं पुलकित प्रान।"[1]

और देखिए मादकता के रंग में डूबी उत्सर्ग के लिए प्रस्तुत मालविका के प्राण अपनी नस-नस में चन्द्रगुप्त की स्मृति, उसके शरीर से छुई उस शैय्या की मूर्छना उसे ऊपर बहुत ऊपर कहीं लिए चली जा रही है—इन्द्रिय जगत पीछे पड़ता जा रहा है—

"कहाँ ले चले कोलाहल से मुखरित तट को छोड़ सुदूर,
आह! तुम्हारे निर्दय डाँडों से होती है लहरें चूर।"[2]

देवसेना अपनी सूनी वेदना को हृदय की करुणा के आवरण में और अधिक देर नहीं छिपा सकती—

"लौटा लो यह अपनी थाती,
मेरी करुणा हा हा खाती?
विश्व? न सम्भलेगी यह मुझसे.
इसने मन की 'लाज' गवाई।"[3]

कहीं-कहीं प्रेम के ये कसक पूर्ण चित्र नाटक का अनिवार्य अंग नहीं हो सके हैं, किन्तु चरित्र के वैयक्तिक पक्ष के भावाकुल क्षणों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल हुए हैं।...पात्रों के उच्छ्वसित गीत सर्वत्र परिस्थिति सापेक्ष न होते हुए भी इन्द्र धनुषी रंगीनी से स्पन्दित और अपने में पूर्ण तथा अत्यन्त शोभन हैं। परिस्थिति सापेक्ष गीतों में नाटककार ने परिस्थितिगत अनेक मानसिक दशाओं का तथा मनःकल्पनाओं की सूक्ष्मातिसूक्ष्म धड़कनों को लय प्रदान किया है।"[4]

प्रसाद के गीतों की दूसरी महान विशेषता है मानव हृदय में उच्छ्वसित भावों को व्यक्त करना। भावोच्छ्वास को पूर्णता देने में प्रसाद 'सूर' से अधिक दूर नहीं हैं। पद्मावती (अजातशत्रु) उदयन के तिरस्कार से दुःखी होकर जब वीणा नहीं वजा सकती तब गाने लगती है—

"मींड़ मत खिचे बीन के तार।"

प्रसाद ने भाव ग्रन्थियों का जितनी कोमलता से उद्घाटन किया है, पीड़ा की कसक

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १६९।
२. वही, पृ० १६९।
३. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० १४८।
४. डॉ० बच्चन सिंह : हिन्दी नाटक, पृ० ९६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जितनी तीव्रता से और असमर्थता का दुःख जितनी करुणा से प्रकट किया है—वह अद्वितीय है—

"निर्दय अँगुली! अरी ठहर जा
पल भर अनुकम्पा से भर जा
यह मूर्छित मूर्छना आह-सी
निकलेगी निस्सार।"

देवसेना जब अपने निष्फल जीवन पर एक दृष्टि डालती है, जब भविष्य की आशा का त्याग करती है तो इन शब्दों में—"हृदय की कोमल कल्पना! सो जा! जीवन में जिसकी सम्भावना नहीं, जिसे द्वार पर आए हुए लौटा दिया था . . .आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा—सबसे मैं विदा लेती हूँ—में ही उसके उच्छ्वास का अन्त नहीं हो सका है। वह गाने लगती है—

"आह! वेदना मिली विदाई?
मैंने भ्रमवश जीवन सञ्चित,
मधुकरियों की भीख लुटाई।
छल-छल थे सन्ध्या के श्रमकण
आँसू-से गिरते थे प्रति क्षण।"

एक के बाद दूसरी पंक्ति देवसेना के असफल प्रेम की हूक को, अपने जीवन की असफलता को, जगत से बचाकर प्रेम के कोमल किसलय को पालने की थकान प्रकट करती है।

गीतों की नाटकीय उपयोगिता, समय, स्थल, पात्र और विषय के अनुसार उनकी उपयुक्तता उनकी कला के अंग हैं। कार्नेलिया जब भारत भूमि के वैभव और ज्ञान से आश्चर्यान्वित एवं पुलकित होकर उसकी प्रशंसा करती है, तो प्रसाद भी अपनी कल्पना के सहारे देश-प्रेम की सुन्दरतम भावना को कार्नेलिया के मुख से प्रकट करते हैं—

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर—मंगल कुंकुम सारा!

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लघु सुरधनु-से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुंह किए, समझ नीड़ निज प्यारा।"[1]

उस समय के भारतवर्ष का कितना सौम्य, प्रशान्त, स्निग्ध चित्र है जब भारत सब के आश्रय का नीड़ था। जहाँ आकर विजयी सिकन्दर भी इसकी उदारता पर मुग्ध हो गया था। कार्नेलिया भी यहाँ आकर यहीं की बन जाती है। इन गीतों में व्यंजित देश प्रेम की भावना द्रष्टव्य है। वस्तुतः इन गीतों की नाटकीय उपयोगिता की सार्थकता पूर्ण हो जाती है।

⊙⊙

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, (द्वितीय अंक प्रारम्भ)।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३ | प्रसाद के उपन्यास

प्रसाद ने हिन्दी साहित्य को दो पूरा और एक अधूरा उपन्यास दिया। इनके तीनों उपन्यास हिन्दी उपन्यास की तीन परम्परा का सूत्रपात करने वाले हैं। कंकाल यथार्थवादी उपन्यास है, तितली आदर्शवादी और इरावती में ऐतिहासिक उपन्यास धारा का सूत्रपात है। यदि यह पूर्ण हो पाया होता तो हिन्दी का पहला सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास होता। अतएव इन तीन उपन्यासों का अलग-अलग विवेचन अभीष्ट है।

सामाजिक यथार्थ की प्रखर चेतना : 'कंकाल'

यथार्थवाद की परिभाषा करते हुए स्वयं प्रसाद ने अपने यथार्थवाद निबन्ध में कहा है—"उसमें स्वभावतः दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है. . . उस व्यापक दुःख संबलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है। इस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंश प्रचुरता से आते हैं।"[१] —"वेदना से प्रेरित होकर जन-साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।"[२]

प्रसाद के उपर्युक्त मत इस बात को स्पष्ट करते हैं कि किसी भी साहित्य में व्यक्ति या समाज की वास्तविक दुखपूर्ण स्थिति का चित्रण यथार्थवादी साहित्य का प्रथम और महत्वपूर्ण कर्त्तव्य है।

---

१. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ११८।
२. वही, पृ० १२०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'कंकाल' का विशेष महत्त्व उसकी साहित्यिक उपलब्धि में नहीं वरन् एक नयी शुरुआत में है। 'कंकाल' प्रसाद और उनके काल की कृतियों के बीच यथार्थ का एक नया आयाम लेकर उभरता है। यह शुद्ध यथार्थवादी कृति है जिसमें बिना किसी महत्ता या आदर्श के आरोपण के समाज की विषमता को तटस्थ भाव से चित्रित किया गया है। यथार्थवाद का आरम्भ प्रेमचन्द कर चुके थे। 'कंकाल' से साल भर पहले ही प्रेमचन्द का सेवासदन आ चुका था, किन्तु 'कंकाल' अपनी प्रकृति में थोड़ा भिन्न ठहरता है—एक तो इसमें 'सेवासदन' या प्रेमचन्द की अन्यान्य कृतियों के समान यथार्थ पर आदर्श का आरोपण नहीं है, दूसरे इसके यथार्थ में लेखक की आत्मसंतृप्ति न होकर तटस्थता है, तीसरे इस उपन्यास ने प्रेमचन्द के आर्थिक वैषम्य को आधार न बना कर, वर्त्तमान काल की धार्मिक और सांसारिक मनोवृत्तियों के द्वन्द्व को आधार बनाया है।

'स्टेन्डेल' ने उपन्यास की तुलना किसी राजपथ पर स्वतः बढ़ते हुए विशाल दर्पण से की है, जिसमें यथार्थ जीवन की हर क्षण की छाया उभरती रहती है। मध्यवर्गीय समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, दुराचारों तथा उनकी कमजोरियों को, ठीक उसी रूप में रेखांकित करने की 'कंकाल' की प्रवृत्ति से यह तुलना अत्यन्त संगत प्रतीत होती है। 'कंकाल' एक सामाजिक व्यंग्य है, जो समाज की आवृत्त विकृतियों, कमजोरियों को उघाड़-उघाड़ कर उन पर अट्टहास करता है। आज के आदर्शच्युत, सदाचार की झूठ आड़ लेकर शोषण को प्रश्रय देने वाले धार्मिकों के प्रति यह सशक्त विद्रोह का स्वर मुखर करता है। प्रसाद ने बड़ी निर्भीकता से सामाजिक मूल्यों की कृत्रिमता और धर्म की ओट में पल रहे पाप का भण्डाफोड़ किया है तथा उसके प्रत्येक विधि-विधान पर गहरी चोट की है। यहाँ तक कि विवाह संस्था की भी बड़ी निर्भीकता से पोल खोली है और सच्चे प्रेम का समर्थन किया है। प्रयाग, काशी, अयोध्या, वृन्दावन, मथुरा और गंगासागर जैसे तीर्थ स्थानों में होने वाले पापाचारों की लेखक कलई खोल कर रख देता है। अपने इन उद्‌गारों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि जिसे हम धर्म समझते हैं, वह धर्म नहीं धर्म का शव है। हिन्दू धर्म के नाम पर उसके धर्म नायकों से विद्रोही विजय प्रश्न पूछता है कि—"क्यों क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है ? जब उस समाज का अधिकांश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची—उसकी संस्कृति विडम्बना, उसकी संस्था सारहीन और राष्ट्र-बौद्धों के शून्य के सदृश बन गया है, जब संसार की अन्य जातियाँ सार्वजनिक भ्रातृभाव और

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं, तब आपके इन खिलौनों से भला उसकी सन्तुष्टि होगी ?"[१]

डॉ० रणवीर रांग्रा के मत से "जीवन की तिक्त अनुभूतियों ने समाज के प्रति प्रसाद के विश्वास को झंझोड़ कर उन्हें व्यक्तिवादी बना दिया था। समाज की प्रचलित मान्यताओं, उसके निर्धारित मूल्यों तथा विधि-निषेधों के प्रति उन्हें और अनास्था हो गई थी। उन्हें विश्वास हो गया था कि अपनी रूढ़िबद्ध धारणा के वशीभूत समाज जिस वर्ग को उच्च, सम्मान्य और आदर्श समझकर प्रतिष्ठित किए हुए हैं, वह सच्ची मनुष्यता से कोसों दूर है तथा अपने पूर्वाग्रहों के कारण वह जिसे सड़ा-गला और निकृष्ट समझ कर बहिष्कृत किए हुए है, उसमें अभी मनुष्यता शेष है। अपने इसी विश्वास को व्यक्त करके छिन्नाधार, संघर्ष-पीड़ित मानव प्राणियों में स्वस्थ चेतना जगाने के लिए 'कंकाल' की रचना हुई। इसलिए 'कंकाल' का मुख्य विषय ये मानव-कंकाल बने। प्रेमचन्द की कोरी उपदेशात्मकता को न अपनाकर प्रसाद ने व्यंग्यात्मक शैली से काम लिया और कथानक को ऐसा रूप दिया कि रूढ़िबद्ध जातीय प्रतिष्ठा की कटु यथार्थताओं के चित्रण द्वारा यह दिखाया जा सके कि मानव को कंकाल बनाने वाला उस तथाकथित उच्च वर्ग का घृणित स्वार्थ ही है।"[२]

'कंकाल' को देखकर हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि प्रसाद नास्तिक हो गए हैं। वस्तुतः प्रसाद को दूसरी बातों से विरोध है—धर्म के नाम पर अनेक घर बर्बाद किए जा रहे हैं, धर्म के थपेड़ों से समाज के अनेक उज्ज्वल रत्न जबर्दस्ती पूजा की वेदी पर बलि के बकरे बनाए जा रहे हैं। प्रसाद समाज को कमजोर बनाने वाली इस व्यवस्था के हिमायतियों के विरोधी हैं। उन्हें गुस्सा है उन धर्मगुरुओं से जो तो स्वयं पापाचार में लिप्त हैं और जन साधारण को प्रायश्चित्त का भी मौका नहीं देते, तथा बार-बार पतन के लिए विवश करते हैं। उन्हें चिढ़ है समाज की उस पक्षपातपूर्ण नीति से जो सक्षम अक्षम का भेद रख कर न्याय की तराजू उठाती है। उनका मत है कि धार्मिक संस्थाएँ और लोग सांसारिक वासना से आक्रांत हो चुके हैं, अतः उनकी नैतिकता एक विचित्र द्वन्द्व और संशय की स्थिति से गुजर रही है। उन्हें यमुना के शब्दों से पाश्चात्ताप होता है—"हिन्दू समाज की अकारण निष्ठुरता पर जो भौतिक वस्तुओं में बंटा लगा ही चुका है, भगवान् पर भी स्वतन्त्र भाग का साहस रखता है।"[३]

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० ७०-७१।
२. हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शती, पृ० १८७।
३. प्रसाद : कंकाल, पृ० ७७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वस्तुतः "कंकाल की आत्मा व्यक्ति की मुक्ति की पुकार उठा रही है।"[1] "व्यक्ति स्वतन्त्रता की पुकार ही 'कंकाल' की पुकार है।"[2]

व्यक्तित्व स्वातन्त्र्य के सन्दर्भ में ही प्रसाद ने सच्चे प्रेम का समर्थन किया है और बड़ी निर्भीकता से विवाह संस्था की पोल खोली है। उपन्यास का नायक विजय घण्टी से कहता है : "जो कहते हैं कि अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृंखल है, वे भ्रान्त हैं। हृदय का सम्मिलन ही तो व्याह है। मैं सर्वस्व तुम्हें अर्पण करता हूँ, और तुम मुझे; इसमें किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यों—मन्त्रों का महत्व कितना ?—मैं स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूँ, समाज न करे तो क्या ?"[3] इस उपन्यास के कथानक तथा पात्रों के चरित्र-विकास द्वारा प्रसाद यह स्पष्ट दिखा देते हैं कि समाज जिस विवाह-सम्बन्ध की पवित्रता का बखान करते नहीं अघाता, उसकी पवित्रता व्यक्ति सापेक्ष है, नहीं तो विवाह की ओट में जारज सन्तानों का जमघट भी लग सकता है।

'कंकाल' एक व्यंग्यपूर्ण उपन्यास है। इसका व्यंग्य अपने उद्देश्य और स्वरूप दोनों में पूर्ण रूप से मुखर है। धर्म का ढोंग, समाज की रूढ़ियों, विकृतियों और आभिजात्य का अहं; मनुष्य की दुर्बल प्रवृत्तियों, शासन-तन्त्र—उसकी छद्म-पूर्ण व्यवस्था आदि के द्वारा वह अपने उद्देश्य को व्यक्त करता है। नियति के अलक्ष्य संकेत, संस्थाओं के निर्माण और उनकी विफलता, व्यक्तियों के उठने की इच्छा करने पर भी बार-बार गिर जाना तथा विदग्ध संवाद उसके स्वरूप के अभिव्यंजक हैं।

धर्म का ढोंग तथा उसका खोखलापन दिखाकर उस पर हँसना ही तो उपन्यास की मूल कथा है। प्रयाग मेले का सबसे बड़ा महात्मा देव निरञ्जन किशोरी के संसर्ग से विजय को और रामा के संसर्ग से तारा को उत्पन्न करता है। उसके जीवन प्रवाह की मूलधारा को बदलने का श्रेय भी तो इसी धर्माडम्बर को है; न चाहने पर भी, उसकी इच्छा के विपरीत अगली सन्तान के सुखी रहने की आशा से उसे मन्दिर में पूजा सामग्री की भाँति चढ़ा दिया जाता है। पादरी बाथम और लतिका की कथा भी धर्म के ढोंग पर क्रूर व्यंग है। परितप्त निरंजन के शब्द ही पाखण्ड पूजा की धारणा के कितने विरुद्ध हैं : "पुण्य का सैकड़ों मन धातु निर्मित घण्टा बजाकर जो लोग अपनी ओर संसार का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं, वे यह नहीं

---

१. वाजपेयी : प्रसाद, पृ० ४३।
२. डॉ० शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ० १२१।
३. प्रसाद : कंकाल, पृ० १६२।

८

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जानते कि बहुत समीप अपने हृदय तक (भी) वह भीषण शब्द नहीं पहुँचता।"[१] मंगल धर्म समाज पर प्रहार करता है।

तारा का 'गुलेनार' के रूप में व्यतीत जीवन, बाल-विधवा घण्टी की बाथम, विजय आदि के साथ की समूची कथा, तारा की माँ का लांछन लगाकर मेले में छोड़ी जाना और गाला की वेश्याकुलोत्पन्ना पितामही शबनम आदि चित्रित कथा सामाजिक रूढ़ियों, विडम्बनाओं और उसके खोखले-पन पर ही प्रकाश डालती है। कोई वैभव-विलास के सागर में डूब उतरा रहा है और किसी को पेट पालने की समस्या है। किशोरी के यहाँ साधु ब्राह्मणों के भण्डारे के बाद का एक दृश्य द्रष्टव्य है :

"दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी जाती थीं। नीचे अछूत डोम और डोमनियाँ खड़ी थीं, जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डण्डे थे—जिनसे वे कुत्तों को हटाते थे और आपस में मार-पीट, गाली-गलौज करते हुए उस उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे—वे पुश्त-दर-पुश्त के भूखे!"

मालकिन झरोखे से अपने पुण्य का यह उत्सव देख रही थीं। और देख रही थीं—एक राह की थकी हुई भूखी दुर्वल युवती भी। उसी भूख की, जिससे वह स्वयं अशक्त हो रही थी, यह बीभत्स लीला थी! वह सोच रही थी—क्या संसार भर में पेट की ज्वाला, मनुष्य और पशुओं को एक ही समान सताती है? ये भी मनुष्य हैं और इसी धार्मिक भारत के मनुष्य हैं—जो कुत्तों के मुँह के टुकड़े भी छीन कर खाना चाहते हैं! भीतर जो पुण्य के नाम पर—धर्म के नाम पर—गुलछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान्! तुम अन्तर्यामी हो।"[२]

यहाँ मनुष्य और कुत्ते दोनों समान हैं, दोनों ही उच्छिष्ट के लिए संघर्षरत हैं। वाक्य का अन्तिम अंश उनकी अविराम भूख की घोषणा करता है जो कभी भी पूरी नहीं हो सकी है। दूसरी तरफ खिड़की से मालकिन यह दृश्य देखकर पुण्य लाभ ले रही थीं—और इसी के साथ भूख से व्याकुल युवती खड़ी इस बीभत्स लीला को देख रही थी और सोच रही थी क्या संसार भर में पेट की ज्वाला मनुष्य और पशुओं को एक समान सताती है?

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० ६२।
२. वही, पृ० ६२-६३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गाला की माँ और मंगल की कथा से यह ऐतिहासिक तथ्य सिद्ध हो जाता है कि समाज की तह में संकरत्व की एक सुदीर्घ परम्परा चली आ रही हैं। विजय, और यमुना का जन्म, मोहन की उत्पत्ति, मंगल और गाला का विवाह देखकर लेखक वर्तमान जीवन में भी उस परम्परा का विकास दिखलाते हुए समाज से प्रश्न करता है कि ऐसी अवस्था में भी उसका आभिजात्य का दंभ कितना युक्ति और औचित्यपूर्ण है।

समाज की विकृतियों और विडम्बनाओं के मूल में वस्तुतः मानव की कमजोरियाँ ही वर्तमान रहती हैं, क्योंकि समाज तो मानव का ही समग्र रूप, व्यष्टि का समष्टि रूप है और उसकी रूढ़ परम्पराएँ कालक्रम से सुधर गईं व्यष्टि मानव की ही दुर्बलताएँ हैं। 'कंकाल' में व्यक्ति की इन कमियों की ओर भी व्यंग्य है। ये व्यंग विशेषकर मंगल और देव निरंजन के व्यक्तित्व के माध्यम से व्यक्त हुआ है। मंगल तारा जैसी सती-साध्वी-स्त्री को गर्भिणी अवस्था में सिर्फ इसलिए छोड़ आता है कि उसकी माँ के अपराध का वह फल थी। तारा का उद्धार करने जाकर मंगल तारा के जीवन की यंत्रणा और बढ़ा देता है। वही मंगल राम द्वारा सीता को दिए गए वनवास को 'इतिहास विश्रुत महान सामाजिक अत्याचार सिद्ध करता है।"

"दुर्बलता कहाँ से आती है?—लोकापवाद से भयभीत होकर स्वभाव को पाप कहकर मान लेना, एक प्राचीन रूढ़ि है। समाज को सुरक्षित रखने के लिए उसके संगठन में स्वाभाविक मनोवृत्तियों की सत्ता स्वीकार करनी होगी। सबके लिए एक पथ देना होगा। समस्त प्राकृतिक आकांक्षाओं की पूर्ति आपके आदर्श में होनी चाहिए। केवल—'रास्ता बन्द है!' कह देने से काम न चलेगा। लोकापवाद संसार का एक भय है, एक महान अत्याचार है। आप लोग जानते होंगे कि श्रीरामचन्द्र ने भी—लोकापवाद के सामने सिर झुका लिया।... सीता-निर्वासन एक इतिहास विश्रुत महान सामाजिक अत्याचार है, और ऐसे अत्याचार अपनी दुर्बल संगिनी स्त्रियों पर प्रत्येक जाति के पुरुषों ने किया है। किसी-किसी समाज में तो पाप के मूल में स्त्री का ही उल्लेख है, और पुरुष निष्पाप है। यह भ्रान्त मनोवृत्ति अनेक सामाजिक व्यवस्था के भीतर काम कर रही है।"[१]

शासन-तंत्र या उसकी व्यवस्था 'कंकाल' के मूल लक्ष्य के अन्तर्गत नहीं आती, फिर भी प्रकारान्तर से इन पर व्यंग के तीव्र आक्षेप हुए हैं। नवाब की हत्या के सम्बन्ध में यमुना पर अभियोग चलता है। वर्तमान न्याय-व्यवस्था की जर्जरता

---

१. प्रसाद: कंकाल, पृ० २६०-६१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर, लेखक अपना व्यंग कस ही देता है।—"यद्यपि उसने स्पष्ट स्वीकार नहीं किया, परन्तु शासन को तो एक हत्या के बदले दूसरी हत्या करनी ही है, न्याय को वही समीप मिली उसी पर अभियोग चल रहा है।

'कंकाल' में नियति सारे व्यक्तियों को एवं घटनाचक्र को अपने अनुरूप झंझोड़ कर रख देता है और अपने इंगित पर सबको नचाता है। किशोरी अपने बाल सहचर प्रसिद्ध तपस्वी निरंजन को पाकर पथभ्रष्ट होती है। यह नियति ही तो है कि वह जाती है संतान के आशीर्वचन के लिए और प्रारंभ होता है प्रेमालाप। संतान उसे मिलती है तो वह पति परित्यक्ता होती है। निरंजन पतन से बचने का प्रयत्न करता है, मेले से भाग जाता है, पर क्या वह पतन से बच पाता है। नियति उसे अपनी चपेट में ले ही लेती है। तारा का मेले में अपनी माँ से अलग होना फिर गुलेनार के रूप में लखनऊ के कोठे पर बैठना, मंगल द्वारा उसका उद्धार, व्याह के समय त्याग, फिर यमुना के रूप में उसकी मंगल, चाची आदि से भेंट नियति के थपेड़े नहीं तो और क्या हैं। यमुना का पूरा जीवन नियति की क्रूर कहानी है। बार-बार मरने का प्रयत्न करके भी वह मर नहीं पाती। तारा का एक कथन द्रष्टव्य है—"मैं कभी-कभी विचारती हूँ कि छायाचित्र-सदृश जन-स्रोत में नियति के पवन की थपेड़ें लग रही हैं, वह तरंग-संकुल होकर झूम रहा है। और मैं, चक्कर खाती हूँ, कभी लहरों में नीचे-ऊपर होती हूँ। कहीं कूल-किनारा नहीं!—कहते-कहते तारा की आँखें छलछला उठीं।"[१]

केवल तारा ही जीवन का कटु सत्य नहीं, पूरे 'कंकाल' और उसके सभी पात्रों के जीवन में कटु अनुभव है। यह नियति 'कंकाल' के प्रायः सभी पात्रों का संबंध तोड़ कर पुनः सबको एक झटके से ला मिलाती है। सरला का मंगल के रूप में अपना पुत्र पाना, नंदो चाची का घंटी के रूप में अपनी पुत्री पाना और यमुना का अपने पुत्र मोहन से मिलना तथा प्रायः सब पात्रों का किसी-न-किसी रूप में गोस्वामी जी के मठ में जा पहुंचना नियति की प्रेरणा से ही संचालित है।

सामाजिक सुधार तथा जन कल्याण के उद्देश्य से बनाई गई विभिन्न संस्थाओं के प्रति प्रसाद की अनास्था 'कंकाल' में अत्यधिक मुखर है। देव निरंजन के निरंतर अनुरोध पर भी कृष्ण शरण पहले किसी समाज सुधारार्थ संस्था की स्थापना के लिए तैयार नहीं होते। उनका विश्वास है कि "संस्थाएँ विकृत हो जाती हैं। व्यक्तियों के स्वार्थ उसे कलुषित कर देते हैं।"[२] धर्म और समाज की कुरीतियों

---

१. प्रसाद: कंकाल, पृ० ४०।

२. वही, पृ० २२३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को मिटाने का संकल्प लेकर स्थापित तथा बड़े-बड़े विज्ञापनों द्वारा अपनी नीति और लक्ष्य का ढिंढोरा पीटने वाला 'भारत संघ' भी अंततः असफल दिखाया गया है। उसके कार्यकर्त्ता अपना तक सुधार नहीं कर पाते। लम्बे-चौड़े भाषणों में ही उनका सारा कार्यक्षेत्र समाप्त हो जाता है। कुछ विद्वान 'भारत संघ' को प्रसाद के तथा 'कंकाल' के रचनात्मक कार्यक्रम का प्रतीक स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार 'भारत संघ' लेखक के सेवा कार्य और उसकी शिक्षण योजना को उपस्थित करता है —"उपन्यास के अंत में सेवा कार्य के शुभ फल फलित होते दीख पड़ते हैं।"[१] "अंतिम समय में यमुना और घंटी रूपी सौभाग्य देवियाँ विजय की अन्त्येष्टि का सुप्रबंध करती हैं, इस प्रकार, उपन्यास के अन्त में यद्यपि विजय का विकृत कंकाल ही नजर आता है, किन्तु आशा और शांति के वातावरण में ही उपन्यास का परदा गिरता है।"[२]

निरंजन द्वारा किशोरी को लिखा हुआ परिताप भरा पत्र भारत संघ की विफलता का पूरा भंडाफोड़ करता है : "इसमें मैंने बड़ा ढोंग पाया। गंभीर मुद्रा का अभिनय करके अनेक रूपों में उन्हीं व्यक्तिगत दुराचारों को छिपाना पड़ता है, सामूहिक रूप से वही मनोवृत्ति काम करती हुई दिखाई पड़ती है। संघों में, समाजों में, मेरी श्रद्धा न रही।"[३]

नारी यंत्रणा को दूर करना ही 'भारत संघ' का सबसे बड़ा लक्ष्य है पर विडंबना यह कि एक निरपराध साध्वी नारी के जीवन को नष्ट कर गाला से विवाह करने वाला मंगल इस संघ का नेता है। इस रहस्य को जानकर संघ का दूसरा उत्साही कार्यकर्त्ता निरंजन अत्यन्त दुखित होता है, वह सोच नहीं पाता कि "अनिच्छापूर्वक भी भारत-संघ की स्थापना में सहायक बन कर मैंने क्या किया है—पुण्य या पाप? प्राचीन काल के इतने बड़े-बड़े संगठनों में जड़ता की दुर्बलता घुस गई। फिर यह प्रयास कितने बल पर है!—वाह रे मनुष्य! तेरे विचार कितने निस्सम्बल हैं—कितने दुर्बल हैं।"[४]

एक तरफ संघ का प्रदर्शन निकला है और दूसरी तरफ समाज की कुरीतियों, विडंबनाओं से जन्म भर टक्कर लेने वाला विद्रोही विजय का कंकाल असहाय अवस्था में पड़ा है। समाज की अनेक यंत्रणाओं को मूक भाव से स्वीकार करने

---

१. नन्ददुलारे वाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० १०४।
२. वही, पृ० १०४।
३. प्रसाद : कंकाल, पृ० २६७।
४. वही, पृ० २६८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वाली यमुना अपने उस अभागे दीन भाई की अन्त्येष्टि के लिए दस रूपए उधार लेती है। कितना हृदयविदारक विद्रूप भरा व्यंग है—सपत्नीक धर्मध्वजी पाखण्डी मंगल धर्माडम्बर, पाखण्ड पूजा और हर प्रकार की रूढ़ियों के विरुद्ध आजीवन अविचल भाव से लड़ने वाले विजय के कंकाल के क्रिया कर्म में लगी घंटी को संबोधित करता हुआ कहता है—"अच्छा चलो, अभी बहुत सा काम बाकी है।" और उसके संकेत पर देखता है—"एक स्त्री पास ही मलिन वसन में बैठी है। उसका घूंघट आँसुओं से भीग गया है और निराश्रय पड़ा है एक कंकाल।"[१]

मंगल की पूरी कहानी उठने की इच्छा करने पर भी बार-बार गिर जाने की कहानी है जो समाज पर एक क्रूर व्यंग्य है। वह सत्प्रेरणा से प्रेरित होकर बार-बार सत्कार्यों में लगकर भी स्खलित होता है। प्रथम बार ही सत्कार्य करने जाकर स्खलित होता है यहीं से उसका पतन प्रारंभ होता है। इससे उठने के लिए वह ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना करता है, बालकों के शिक्षण के लिए पाठशाला खोलता है, संघ की स्थापना करता है, परंतु बार-बार चाहकर भी वह अपना परिष्कार नहीं कर पाता। उसकी वाणी कहती कुछ और है और वह करता है कुछ और। राम द्वारा सीता के वनवास को सामाजिक अत्याचार कहकर भी सती साध्वी तारा के रहते वह गाला से विवाह करता है। प्रथम दो खंडों में निरंजन का व्यक्तित्व भी इसी प्रकार का है।

संवादों द्वारा विभिन्न पहलुओं पर मार्मिक और हृदयस्पर्शी तीखे व्यंग्य के छीटे पूरे उपन्यास में मुखर हैं। विजय के प्रणय निवेदन के उत्तर में यमुना जो कहती है उससे समाज द्वारा सताई हुई अनाथ नारी के हृदय का कितना दारुण हाहाकार व्यक्त होता है—"किसी के हृदय की शीतलता और किसी के यौवन की उष्णता—मैं सब झेल चुकी हूँ; उसमें सफल नहीं हुई, उसकी साध भी नहीं रही। विजय बाबू! मैं दया की पात्री एक बहन होना चाहती हूँ—है किसी के पास इतनी निःस्वार्थ स्नेह-सम्पत्ति जो मुझे दे सके?—कहते-कहते यमुना की आँखों से आँसू टपक पड़े।"[२]

प्रसाद ने जीवन, परिस्थिति, समाज और धर्म पर जो व्यंग्य किए हैं, वे तीक्ष्ण और मन मोहित करने वाले होकर भी करुणा और दया से भरे पड़े हैं। वस्तुतः "उन्होंने व्यक्ति को नियति के हाथों की पुतली बनाकर ही उसके प्रति

---

१. प्रसाद: कंकाल, पृ० २७६।
२. वही, पृ० १०२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यंग किया है, जिसमें चोट करने की भावना उतनी नहीं है, जितनी संवेदना और सुधार की।"[१]

इस संसार के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान विडंबनाओं, विषमताओं और विकारों का कच्चा चिट्ठा खोलकर उनको दूर करने का संकल्प ले निर्मित संस्थाओं की असफलता का भण्डाफोड़ कर प्रसाद ने 'कंकाल' की समस्या और भी गंभीर बना दी है। प्रसाद यदि उसका सुधार कहीं देख पाए हैं तो व्यक्ति में। उनके अनुसार व्यक्ति के सुधरने की आवश्यकता है, सभी अपने को सुधारे—समाज स्वयं सुधर जाएगा। स्वामी जी के ये शब्द "मुझे व्यक्तिगत पवित्रता के उद्योग में विश्वास है" लेखक के विचारों के रूप में अभिव्यक्त है। स्वामी जी निरंजन की सारी पाप कथा सुनकर भी यही उपदेश देते हैं—"मनुष्य भूलें करता है, इसका रहस्य है मनुष्य का परिमित ज्ञानाभास। सत्य इतना विराट है कि हम क्षुद्र जीव व्यावहारिक रूप में उसे सम्पूर्ण ग्रहण करने में प्रायः असमर्थ प्रमाणित होते हैं। जिन्हें हम परम्परागत संस्कारों के प्रकाशन में कलंकमय देखते हैं, वे ही शुद्ध ज्ञान में यदि सत्य ठहरें, तो मुझे आश्चर्य न होगा।"[२]

यही उपन्यास भी सिद्ध करता है, जिस यमुना को सबसे बड़ी अपराधिनी और अपवित्र माना गया वही सबसे अधिक महान और पवित्र निकली। अंत में व्यक्तिगत रूप से घंटी का लतिका से तथा नन्दो चाची की यमुना से क्षमा याचना और धर्म के ठेकेदार निरंजन का आत्माधिक्कार की अग्नि में जलते हुए परमात्मा की क्षमा का विश्वास-संबल लेकर आतमशोधन में लीन होना—सब इसी व्यक्तिगत साधना के महत्व की ओर इंगित करते हैं। ईश्वर, धर्म, समाज व्यवस्था और हर परंपरा का विरोधी विजय भी अंत में भगवान के प्रति समर्पित होता है—"मैं तुमको स्मरण करता हूँ; आज तक कभी नहीं किया था, तब भी तुमने मुझे कितना बचाया—कितनी रक्षा की! हे मेरे देव! मेरा नमस्कार ग्रहण करो, इस नास्तिक का समर्पण स्वीकार करो! अनाथों के नाथ! तुम्हारी जय हो!"[३]

'कंकाल' हिन्दी साहित्य का पहला विचार-प्रधान उपन्यास है जिसमें मध्य-वर्गीय समाज के नित्य प्रति के जीवन को, उसकी विकृतियों और विडंबनाओं के मूल कारण को, उसके यथार्थ रूप में, देखने परखने का प्रयास किया गया है। इसमें जीवन और समाज के मध्य व्याप्त संघर्ष के केवल बाह्य रूप को ही नहीं

---

१. डॉ० शिवनारायण लाल श्रीवास्तव: हिन्दी उपन्यास, पृ० १४६।
२. प्रसाद: कंकाल, पृ० २६८।
३. वही, पृ० २७३-७४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दिखाया गया है अपितु उसके अंतर्प्रदेश में हलचलों की सृष्टि करने वाले मौलिक कारणों की ओर भी लेखक ने दृष्टिपात किया है। प्रसाद की यह व्यापक और सूक्ष्मभेदिनी दृष्टि उन्हें हिन्दी उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द से भी ऊपर उठा देती है। उनके साहित्य में आत्मा का पीड़न तथा जीवन की गंभीर और शाश्वत समस्याओं के चित्रण का अभाव है। प्रेमचन्द ने सिर्फ व्यावहारिक दृष्टि से ही जीवन को देखा है, दार्शनिक और आध्यात्मिक धरातल की ओर उनकी चेतना न बढ़ सकी। प्रसाद ने दोनों पहलुओं को पकड़ा—"प्रसाद के विवेचन जहाँ दार्शनिक चिंतन पर आश्रित हैं वहाँ प्रेमचन्द के विवेचन नैतिक व्यावहारिक विवेचन पर।"[१]

प्रसाद 'कंकाल' के माध्यम से ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जिसमें सभी इकाइयाँ स्वतंत्र हों, और प्रत्येक दायित्व का वहन स्वयं करें; प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपने निर्माण का अधिकार होना चाहिए। साथ ही "इस उपन्यास में समाज की गलन एवं सड़ांध के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया है, रूढ़ियों व जर्जरित मान्यताओं पर तीव्र व्यंग्य कसा गया है, नैतिक अनैतिक संबंधों के प्रति आँखें खोलने की चेष्टा की गयी है।"[२]

'कंकाल' पर यह दोष भी लगाया जाता है कि इसकी दृष्टि एकांगी है। लेखक ने इसमें केवल मानव दुर्बलताओं और सामाजिक भ्रष्टाचारों का ही सजीव चित्र खींचना चाहा है। एक अंश तक यह सत्य हो सकता है, पर जिस उपन्यास में यमुना सी सती साध्वी नारी और अपनी दुर्बलता में भी अनुपम महिमाशील विजय जैसे मुख्य पात्र हों, एवं सात्विक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले गोस्वामी कृष्णशरण एवं सरला जैसे पात्र उपस्थित हों, उसकी कथावस्तु पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता कि वह एकांगी है। लेखक सामाजिक अत्याचारों और अनाचारों के विवरण में कहीं भी अतिशयता नहीं दिखाता। यमुना नई नैतिकता के निर्माण का स्पष्ट लक्ष्य न रखती हुई भी, परंपरा से प्राप्त नैतिकता के सम्मुख अपने मूक और अतिशय सहिष्णु व्यक्तित्व के माध्यम से एक समस्या रख जाती है। और अंततः परंपराओं के धर्मगुरु निरंजन को यह स्वीकार करना पड़ता है कि वह पतिता नहीं, अपितु सर्वाधिक पवित्र चरित्र है। इस प्रकार 'कंकाल' का विचार पक्ष बहुत ही गंभीर, तलस्पर्शी, सूक्ष्म एवं व्यापक है। 'कंकाल' के पात्र, जिनका जन्म ही समाज निषिद्ध था तथा जिनके जीवन-संघर्ष का क्रम

---

१. डॉ० नगेन्द्र: विचार और विवेचन, पृ० १००।

२. डॉ० सुरेश सिनहा: हिन्दी उपन्यास, पृ० २१५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी सामाजिक दृष्टि से दुर्बलताओं से भरा हुआ था—लेखक की मानसिक विद्रोहात्मक भावना के प्रतीक हैं।

'कंकाल' में देशकाल के चित्रण की ओर भी यथेष्ट ध्यान दिया गया है। उसमें भौतिक और सूक्ष्म दोनों प्रकार के वातावरण का निर्माण किया गया है। तीर्थ, मेला-बाजार, मध्यवर्ग के लोगों का रहन-सहन, गूजरों का जंगली जीवन और मठों मंदिरों का लघु या विस्तृत चित्रण स्थूल वातावरण निर्मित करता है। साथ ही स्थान-स्थान पर मानव-भाव-रंजित प्रकृति के चित्रण से मानसिक वातावरण निर्माण की भी संघटना होती चलती है। समाज के विभिन्न स्तरों के रहन-सहन उनके आचार-विचार, प्रचलित रीति रिवाज, समाज और जन-जीवन से संबंध रखने वाली विभिन्न संस्थाओं का लेखक ने यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है।

वस्तुतः प्रसाद का काव्य-व्यक्तित्व औपन्यासिक विधा की यथार्थपरकता को पूर्णता नहीं ग्रहण कर पाता तथापि उसका उद्देश्य स्पष्ट है। 'कंकाल' में उन्होंने व्यंग्य और अतिरंजना के सहारे समाज में उपस्थित कुप्रवृत्तियों के उन्मूलन की मांग की है। यही कारण है कि प्रेमचन्द को 'कंकाल' अपने से भिन्न लगते हुए भी भाया था।. . . "यह प्रसाद जी का पहला ही उपन्यास है पर आज हिन्दी में वहुत कम ऐसे उपन्यास हैं जो इसके सामने रक्खे जा सकें।"[१]

हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रसाद जी ने इस उपन्यास में आर्थिक आधारों से परे हटकर संस्था या समाज और मनुष्य के संबंधों की छानबीन की है। वे मनुष्य की प्रवृत्तियों के संघटन-विघटन को धार्मिक और सामाजिक संघटनों की कुरूपता-सुरूपता के संदर्भ में देखते हैं। वे वास्तव में वर्त्तमान काल की समस्याओं की आर्थिक और समाजशास्त्रीय व्याख्या न प्रस्तुत कर सांस्कृतिक आलोक में मानव प्रवृत्तियों को परखना चाहते हैं। इस तरह जहाँ वे मनुष्य की चिरंतनता से जुड़ जाते हैं वहीं वे आधुनिक युग और उसके मनुष्य को सही अर्थ में उभारने में असमर्थ रह जाते हैं। आधुनिक युग की उनकी व्याख्याएँ अधूरी रह जाती हैं। प्रसाद ने समाज और व्यक्ति की समस्याओं को जिस किसी रूप में देखा उन्हें तटस्थभाव से बड़ी तीव्रता के साथ बिना किसी आदर्शारोपण के व्यक्त कर दिया। "किंतु जहाँ तक इसके कथा-गठन का प्रश्न है अपने युग के अन्य उपन्यासों या अपने ही उपन्यास 'तितली' के कथा-गठन से आगे नहीं बढ़ सका। आज के यथार्थवादी उपन्यासों की प्रकृति के प्रतिकूल इसमें आकस्मिकता

---

१. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही से, पृ० ४८६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और संयोगवादिता का अद्‌भुत घटाटोप है। कथा कहने का ढंग, वर्णन-शैली, चित्र निरूपण आदि रूमानी भंगिमा से मुक्त नहीं हो सके हैं।"[1]

आदर्श और यथार्थ का प्रसादीय समन्वय : तितली

प्रेमचन्द ने 'यथार्थ' और 'आदर्श' का संतुलित रूप ग्रहण किया; न तो उन्होंने यथार्थवाद के नाम पर समाज का कूड़ा करकट, नग्न, विकृत और गलित जीवन का चित्र ही उकेरा और न केवल आदर्शवाद के अतिरेक में आकर 'युटोपिया' की ही रचना की। गोदान के पूर्व के अपने सभी उपन्यासों में समाज की विडंबनाओं, उसके पतन का चित्र ही उपस्थित करके वे सब्र नहीं कर सके हैं। उन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम और रंगभूमि का आदर्श भी प्रस्तुत किया है। उन्होंने समाज के तल में प्रवेश कर उसके विभिन्न वर्गों और स्तरों की व्यावहारिक समस्याओं, प्रवृत्तियों एवं परंपराओं को चित्रांकित किया और अपनी दृष्टि से उनका तर्क-संगत समाधान प्रस्तुत कर उनकी असफलता भी चित्रित की। वे मानवतावादी कलाकार थे और उनका विश्वास था कि मनुष्य की बुराई परिस्थितिजन्य होती है। वह सद्‌गुणों से खाली नहीं रहता। प्रेमचन्द के इस आदर्शोन्मुख यथार्थवाद से उनके युग के सभी लेखक प्रभावित हैं। प्रसाद जी भी इससे अछूते न रह पाए। पर उन्होंने इसमें परिष्कार करके अपना रास्ता बनाया।

तितली : विचार पक्ष एवं सामाजिक दृष्टिकोण

प्राचीन भारतीय आदर्शों को भूल कर चमकीली पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण करने वालों को भारतीय संस्कृति द्वारा निर्दिष्ट व्यक्तिगत साधना की जीवनोपयोगिता दिखाने के लिए इस उपन्यास की रचना हुई है। 'तितली' का लक्ष्य 'कंकाल' के लक्ष्य से भिन्न नहीं। संस्थावाद की अनिवार्य बुराइयों से व्यक्ति की रक्षा के महान् लक्ष्य की पूर्ति की ओर 'कंकाल' यदि पहला कदम है तो 'तितली' दूसरा।[2] पर डॉ० रांग्रा के मत से सहमत हो पाना कठिन है।

वस्तुतः प्रसाद 'कंकाल' के बाद कई कदम आगे चलकर 'तितली' के साथ नए रूप में सामने आए। 'यह ग्राम्य जीवन पर आधारित आदर्शवादी उपन्यास है।"[3] विस्तार की दृष्टि से इन्होंने अपने मध्यवर्ग के नगर जीवन और मठों की

---

१. डॉ० रामदरश मिश्र : "हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा", पृ० ५९।
२. सं० डा० नगेन्द्र, हिन्दी : वाङ्मय : बीसवी शती, पृ० १८८।
३. (क) रामरतन भटनागर : साहित्य और समीक्षा, पृ० १७७।
(ख) शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ० १२८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुनिया के साथ-साथ निम्नवर्ग और ग्राम्य जीवन की विभिन्न समस्याओं को भी अपनाया और उनका समाधान प्रस्तुत किया। 'तितली' के माध्यम से प्रसाद ने नारी समस्या के विभिन्न पक्षों को उभारा है। इन्होंने विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, पर्दा, कुप्रथा आदि स्थूल समस्याओं को रूप न देकर, उन्हें व्यापक धरातल पर रखकर जाँचने परखने का काम किया। शैला, तितली दो नारी पात्रों के माध्यम से उन्होंने नई चिर-परिचित समस्या उपस्थित की कि नारी जीवन की सार्थकता अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाए रखकर पारिवारिक बन्धन को ठुकराते हुए, समाज सेवा का व्रत धारण करने में है या गृहस्थी के भीतर रहकर प्रेम और श्रद्धा के केन्द्र पति के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का सम्यक् निर्वाह करते हुए, समाज के रक्षण, निर्माण और विकास में योग देने में है।[1]

शैला भारतीय वातावरण से प्रभावित होकर भी अपने पाश्चात्य आदर्श के अनुरूप पारिवारिक जीवन में पति से पृथक् अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रख कर चलना चाहती है। वह इन्द्रदेव से विवाह करके भी मुक्ति की कामना करती है। दूसरी ओर तितली पारिवारिक जीवन में अपने को घोलकर पति-परायण बन जाती है। और तब तक अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने का प्रण करती है जब तक उसका पति वापस न आ जाय। इसी विश्वास और आशा के भरोसे वह समस्त अत्याचारों से संघर्ष करती रहती है और एक ऐसा आदर्श उपस्थित करती है जिससे शैला भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाती। लेखक स्वयं स्वीकार करता है कि —"मैं तो गृहस्थ नारी की मंगलमय कृति का भक्त हूँ। वह इस साधारण सन्यास (समाज सेवा के लिए सर्वस्व अर्पण) से भी दुष्कर और दम्भ-विहीन उपासना है।"[2]

सम्मिलित कुटुम्ब की जर्जर हो रही स्थिति से भी प्रसाद परिचित हैं और उसमें नारी की दुर्दशा का उन्हें पूर्ण ज्ञान है। इसीलिए तो वे कहते हैं—"स्त्रियों को जब उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण हम स्नेह के लिए विवश करते हैं, तब उनके मन में विद्रोह की सृष्टि भी स्वाभाविक है। आज प्रत्येक कुटुम्ब उनके इस स्नेह और विद्रोह के द्वन्द्व से जर्जर और असंगठित है। हमारा सम्मिलित कुटुम्ब उनकी इस आर्थिक पराधीनता की अनिवार्य सफलता है। उन्हें चिर-काल से वंचित एक कुटुम्ब के आर्थिक संगठन को ध्वस्त करने के लिए दिन-रात

---

१. डॉ० विजयशंकर मल्ल : तितली : एक दृष्टि ('आज', फरवरी १९५१ ई०)।

२. प्रसाद : तितली, पृ० १६८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चुनौती मिलती है। जिस कुल से वे आती हैं उस पर से ममता हटती नहीं, यहां भी अधिकार की कोई संभावना न देखकर, वे सदा घूमने वाले गृहहीन अपराधी जाति की तरह प्रत्येक कौटुम्बिक शासन को अव्यवस्थित करने में लग जाती हैं।"[1]

घर-घर में छाये नारी विक्षोभ का यह कच्चा चिट्ठा सामने रखकर जर्जरता दिखाकर भी लेखक उसके विघटन का पक्षपाती नहीं। वह तो केवल उसके जर्जर स्वरूप में कुछ सुधार करना चाहता है। तितली की सहयोग भरी गृहस्थी का चित्रण करके; जिसमें बिना किसी रक्त संबंध के भी रामजस, मलिया, रामदीन आदि सदस्य सुखपूर्वक रहते हैं; वह अपने इसी उद्देश्य की घोषणा करता है। सम्मिलित कुटुम्ब के प्रति उदासीन भाव रखने वाला इन्द्रदेव भी तितली के इस नवीन कौटुम्बिक संगठन को देखकर प्रभावित होता है और यह अनुभव करता है कि परस्पर प्रेम तथा सौहार्द्र-भाव ही कौटुम्बिक जीवन की सफलता के अनिवार्य साधन हैं। प्रसाद समन्वयवादी थे। पूर्व और पश्चिम की दार्शनिक चिंता का रामनाथ के शब्दों में उन्होंने जो समन्वय कराया, संभव है कि वह सर्वग्राह्य न हो फिर भी समन्वय की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है

प्रसाद ने तितली में श्रम की महत्ता प्रतिपादित की है। उसके इस प्रतिपादन में समाज की बदलती हुई स्थिति का जायजा मिलता है। अभिजात वर्गीय मधुवन निम्न-वर्गीय मजदूरों के साथ लोको आफिस में कोयला ढोता है। मधुवन और तितली वास्तव में दोनों ही श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधि हैं। पं० नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में तितली के ये नायक-नायिका यद्यपि कम्युनिस्ट लेखकों के इस श्रेणी के चरित्रों की भाँति कर्कश, संघर्षमय और घृणाभिभूत नहीं है, फिर भी अपनी वर्गगत चेतना से रिक्त नहीं है और भारतीय श्रमिक की संस्कारी परंपराओं से युक्त हैं।"[2]

लेखक ने इस उपन्यास में मुख्य आधार ग्रामीण कथा को ही बनाया है, पर वह शहरी सभ्यता के विभिन्न चित्र प्रस्तुत कर ग्रामीण सभ्यता को शहरी सभ्यता से श्रेष्ठ सिद्ध करता है। ग्रामीण चित्रण की कमी का आरोप लगाने वाले प्रसाद के इस चित्र को देखें : "महाराज, मुनुवां गुलौर झोंक रहा था, जब उसने सुना कि जमींदार का तगादा आ गया है, वह लोग गुड़ उठा कर ले जा रहे थे तो घबरा गया। जलता हुआ गुड़ उसके हाथ पर पड़ गया। फिर भी

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० १४८।
२. नन्ददुलारे बाजपेयी : जयशंकर प्रसाद, पृ० १८१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हत्यारों ने उसके पानी पीने के लिए भी एक भेली न छोड़ी। यहीं बाजार में खड़े खड़े बिकवाकर पाई-पाई ले ली। पानी के दाम मेरा गुड़ चला गया...।"

'तितली' का मधुवन भारतीय किसान की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है जो विचारशील है, पर सेवा-परायण हैं, फिर भी जो अपने और किसी अन्य अपरिचित तक के ऊपर अन्याय होते देखकर लाठी उठाने को तैयार हो जाता है। मधुवन और तितली—स्वाभिमान और अपनी भूमि के लिए दृढ़ता से लड़ने वाले हिन्द प्रदेश के वीर किसान हैं।"[1] प्रसाद ने ग्रामीणों और जमींदार का संघर्ष नहीं चित्रित किया है पर उन्होंने यह संकेत दे दिया है कि जब तक जमीन पर किसानों का अधिकार नहीं हो जाएगा तब तक उनके कष्ट की बदली नहीं छटेगी। तितली कहती है—"जमींदार साहब के रहते वह सब कुछ नहीं हो सकेगा... यदि आप लोग वास्तविक सुधार चाहते हों तो खेतों के टुकड़ों को निश्चित रूप से बांट दीजिए और सरकार उन पर माल गुजारी लिया करे।"

प्रसाद पर गांधी आन्दोलन का भी प्रभाव अवश्य पड़ा था। १९३० तक गांधी का नाम सारे जगत में छा गया था। तितली १९३४ में प्रकाशित हुई है। वह युगजीवन की नवचेतना से प्रभावित समस्याओं को लेकर सामने आई। रामनाथ का उपदेश महात्मा गांधी की याद दिलाता है।

सुदूर अतीत का अधूरा पुर्ननिर्माण : इरावती

हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा बड़ी क्षीण थी। वृन्दावन लाल वर्मा ही एक ऐसे उपन्यासकार हैं जिनके 'गढ़कुण्डार' (१९२०) और 'विराटा की पद्मिनी' (१९३६) को ऐतिहासिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। फिर भी इसमें ऐतिहासिक तथ्य अधिक हैं, ऐतिहासिक रस कम। 'इरावती' इस कमी को पूरा करने की दिशा में एक सफल प्रयत्न था। किन्तु लेखक की असामयिक मृत्यु के कारण अपनी महती संभावनाओं के साथ बीच में ही यह अवरुद्ध हो गया। इसमें इतिहास के सजीव वातावरण-निर्माण के अतिरिक्त अपनी सृजनशीलता एवं कल्पना के सहारे लेखक ने इतिहास के विशेष और परिमित सत्य के साथ साहित्य के नित्य और व्यापक सत्य का सामंजस्य स्थापित करना चाहा था। पर यह स्वप्न अधूरा ही रह गया। यदि यह रचना पूरी हो गई होती

---

१. प्रसाद का जीवन दर्शन : कला और कृतित्व में डॉ० रामविलास शर्मा के लेख से।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

तो निश्चय ही बंगला कृतियों; आनंदमठ, शशांक, करुणा आदि; के समकक्ष हिन्दी में भी एक ऐतिहासिक उपन्यास होता।

देशकाल चित्रण एवं विचारगत विवेचन

इरावती की मूल समस्या सांस्कृतिक है। इसकी पाण्डुलिपि के साथ प्राप्त लेखक का संकेतपत्र उसकी विचारधारा को अधिक स्पष्ट बना देता है—"मानवता ने अपने युगों के जीवन में सृष्टि का विनाश किया है और विनाश से सृष्टि की है। ...अति सुन्दर बनाने के लोभ में वस्तु को वीभत्स बना दिया जाता है, फिर तो उससे नाता तोड़ लेना आवश्यक हो जाता है। हमारी अहिंसा अब हमारी हिंसा करने लगी है। हमारा प्रेम हमीं से द्वेष करने लगा और देखो, धर्म पाप बनता जा रहा है।"[१]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि अशोक की धर्म विजय की लालसा ने उसकी साम्राज्य शक्ति को क्षीण कर दिया था। उसके पश्चात उसका साम्राज्य अधिक दिन स्थिर न रह पाया। साथ ही बौद्ध धर्म भी विनाश की तरफ दिन-प्रतिदिन अग्रसर होता रहा। उसकी अहिंसा हिंसा से भी घोर बनती गयी, उसका प्रेम घृणा से भी कटु होता गया। त्याग एवं करुणा के केन्द्र संघ, व्यभिचार तथा राजनीतिक दुष्चक्रों के अड्डे बन गए। लेखक ने अशोक की मृत्यु के पश्चात् की आर्य-साम्राज्य की डगमगाती स्थिति तथा बौद्ध धर्म के जर्जर स्वरूप को अपने इस उपन्यास में रूपायित करने का प्रयत्न किया है।

इतिहास के इसी आधार को लेकर प्रसाद ने 'इरावती' में बौद्ध धर्म के दुःखवाद के विरुद्ध आनंदवाद की, बौद्धों के विवेकवाद के विरुद्ध आर्य संस्कृति के कर्मवाद की प्रतिष्ठा की है। एक ओर विजयी सम्राट वृहस्पतिमित्र की कुत्सित नीति का प्रभुत्व बढ़ रहा है, दूसरी ओर महाकाल मंदिर का ब्रह्मचारी निराश आर्य जाति में शास्त्रों के अध्ययन से प्राप्त आनंदवाद के प्रचार के लिए उत्तरापथ की यात्रा कर रहा है। उसे कष्ट है कि बौद्धों ने आर्य धर्म के कर्मवाद के विरोध में जिस विवेकवाद और अहिंसा का प्रसार किया उसने आर्य जाति को अकमर्ण्य बना दिया। इसलिए वह कर्मवाद की स्थापना पर जोर देता है। प्रसाद ने कामायनी के आदर्शों एवं सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या 'इरावती' में कर देना चाहा था। 'इरावती' में भी कामायनी की भाँति सामरस्य सिद्धांत और आनंदवाद पर बल दिया गया है। आनंदवादी ब्रह्मचारी और अग्निमित्र के संवाद इस पक्ष को बल प्रदान करते हैं—

---

१. प्रसाद: इरावती।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"अग्निमित्र ने कहा—'ब्रह्मचारिन्।' मैं तुम्हारी बात समझ रहा हूँ। तुम प्रत्येक परिस्थिति से तादात्म्य कर लेना चाहते हो न?"

"हाँ, मेरी विचारधारा पंगु नहीं, उन्मुक्त नील आकाश की तरह विस्तृत सबको अवकाश देने के लिए प्रस्तुत। चारों ओर आनन्द की सीमा में प्रसन्न और वह प्रसन्नता प्रत्येक अवस्था में रहने वाले प्राणियों के विरुद्ध न होगी। चारों ओर उजला-उजला प्रकाश जैसा, जिसमें त्याग और ग्रहण अपनी स्वतंत्र सत्ता अलग बनाकर लड़ते नहीं। विश्व का उज्ज्वल पक्ष अंधकार की भूमिका पर नृत्य करता-सा दीख पड़े, सबको आलिंगित करके आत्मा का आनन्द स्वस्थ, शुद्ध और स्ववश रहे, यह स्थिति क्या अच्छी नहीं?"[1]

'इरावती' का संबंध आज से लगभग २ हजार वर्ष पूर्व मौर्य वंश के पतन काल से है। तत्कालीन साम्राज्य की लड़खड़ाती स्थिति, नई शक्तियों के उदय, बौद्ध धर्म के विनाश पर आर्य धर्म के नवोदय आदि के माध्यम से लेखक ने तत्कालीन धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को सजीव किया है।

कथा के दो रूप चलते हैं। उसका बाहरी पक्ष राजनैतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। अशोक द्वारा अर्जित साम्राज्य छायामात्र रह गया है। विषयी शतधनुष के पश्चात् वृहस्पतिमित्र मगध का अधिपति बनता है। बौद्ध धर्म की अहिंसा दुर्बलता में, एवं उसकी धर्म नीति पाखण्ड क्रीड़ा में बदल चुकी है। साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर कलिंग में खारवेल जिन की मूर्ति लेने के बहाने, अशोक से कलिंग विजय का बदला लेने के लिए तत्पर है। पश्चिम में गांधार से दिमित्र यवन पंचनद की ओर बढ़ रहा है। जलौक के पंचनद प्रदेश साम्राज्य से अलग कर लिए गए हैं। कान्य-कुब्ज की स्थिति संतोषजनक नहीं। आंध्र और विदर्भ के भी अलग हो जाने की आशंका बनी है। वेतन न मिलने के कारण सैनिकों में असंतोष है। कोष का अधिकांश भाग धर्म प्रचार में लग जाता है। सेना निष्क्रिय और अकर्मण्य हो चुकी है, उसके हथियार भोथे हो चुके हैं, इसलिए आशंका है कि वह युद्ध कर भी सकेगी या नहीं।

कथा का दूसरा पक्ष—अंतरंग—इरावती से संबद्ध है। वह एक अज्ञात कुल-शीला सुन्दरी है। विदिशा के कुलपुत्र अग्निमित्र से वह बाल्यकाल से ही प्रेम में आबद्ध हो जाती है। किंतु अग्निमित्र के गुरुजनों के विरोध के कारण यह प्रेम परिणय-सूत्र में नहीं बदल पाता। निराश इरावती स्वावलम्बन के लिए नर्तकी बन जाती है। एक दिन महाकाल मंदिर में नृत्यरत इरावती पर विषयी वृहस्पति

---

१. प्रसादः इरावती, पृ० १०४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मित्र की दृष्टि पड़ती है और वह अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उस पर विलासिता के प्रचार का आरोप लगाकर भिक्षुणी बनाकर बौद्ध बिहार में भेज देता है। वह अपने को बिहार में भी नहीं रोक पाती और एक दिन वहां नाच उठती है। उसे इस अपराव में बिहार से निष्कासित कर वृहस्पति मित्र के अंतःपुर में पहुँचाया जाता है जहां एक अन्य नारी कालिन्दी वृहस्पति मित्र की भोग वासना से उसे बचाती है। यह कालिन्दी विनष्ट नंदवंश की कन्या है, जो गंगाधर मंदिर में परिचारिका के रूप में रह कर स्वस्तिक दल के विद्रोहियों को प्रोत्साहन देती हुई उनकी सहायता से मौर्य सम्राट से प्रतिशोध लेना चाहती है। कालिन्दी भी साम्राज्य के महादण्डनायक पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र के प्रति आर्कषित होती है और उसके सहयोग से नंदवंश के कोष की चाभी प्राप्त करने में सफल हो जाती है। इरावती, कालिन्दी और अग्निमित्र का प्रेम त्रिकोण ही उपन्यास के अंतरंग का मूल केन्द्र-विन्दु है। इस मूल कथा से लिपटी हुई है श्रेष्ठि धनदत्त और उसकी स्त्री मणिमाला की प्रासंगिक कथा। महाकाल मंदिर के ब्रह्मचारी की उत्तरापथ की यात्रा भी उपन्यास की एक दूसरी प्रासंगिक कथा है। इन कथाओं के माध्यम से लेखक ने धार्मिक और सामाजिक वातावरण का सजीव अंकन किया है।

अंततः उपन्यास की सारी मूल कथाएं एवं प्रासंगिक कथाएं श्रेष्ठि धनदत्त के अतिथि आयोजन में समन्वित होने जा रही थीं कि सहसा उपन्यास का घटना-चक्र यहीं रुक जाता है। इस आयोजन में छद्मवेश में कलिंग सम्राट खारवेल वीणावादन कर रहा था, इरावती नृत्य कर रही थी। कालिन्दी और अग्निमित्र भी वहाँ उपस्थित थे। पर वीणा वादक और कोई नहीं सम्राट खारवेल ही है, यह रहस्य एकाएक प्रकट हो जाता है। साथ ही पता चलता है कि स्वस्तिक दल के विद्रोहियों ने श्रेष्ठि प्रासाद घेर लिया है। प्रारंभ में इरावती के प्रति लोलुप दृष्टि के कारण अग्निमित्र खारवेल का विरोधी बन गया था पर यह जानकर कि यह खारवेल है, वह उसकी प्राणरक्षा के लिए सन्नद्ध होता है। और यहीं उपन्यास भी समाप्त हो जाता है।

अनेक विद्वान 'इरावती' में अनेक ऐतिहासिक त्रुटियाँ खोज निकालते हैं। बाबू गुलावराय के अनुसार वृहस्पतिमित्र मौर्य वंश का राजा नहीं था, न वह शतधनुष के बाद सिंहासन पर ही बैठा। वे अनेक साक्ष्य के आधार पर वृहस्पति-मित्र का राज्य काल १९१ ई० पू० सिद्ध करते हैं और दिमित्र तथा खारवेल के आक्रमण को वे १७५ ई० में बताते हैं। काशीप्रसाद जायसवाल और बाबू कामता प्रसाद जैन के मत को उद्धृत करते हुए वे सिद्ध करते हैं कि वृहस्पति मित्र पुष्यमित्र के आठ बेटों में से एक था जो मगध का प्रान्तिक शासक रहा। वह शुंगवंशी था।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और इसी के काल में कलिंग सम्राट खारवेल तथा यवन सम्राट दिमित्र के आक्रमण होते हैं।[1]

अनेक इतिहासकार वृहस्पतिमित्र और पुष्यमित्र को एक ही व्यक्ति मानते हैं। पर प्रसाद ने पुराणों का सहारा लिया है। इसमें 'वृहद्रथ' नाम आता है जिसे शतधन्वा का पुत्र कहा गया है। प्रसाद ने 'शतधन्वा' को शतधनुष और 'बृहद्रथ' को वृहस्पति मित्र माना है। महामेघवाहन खारवेल के नाम से अनेक ताम्रपत्र भी मिले हैं और हाथीगुम्फा के शिलालेख से उसके संबंध में विस्तृत विवरण भी प्राप्त होते हैं। मगध नरेश को हराकर अशोक की कलिंग विजय का बदला लेना इतिहास समर्थित घटना है। पुष्यमित्र और अग्निमित्र भी इतिहास प्रसिद्ध पात्र हैं, जो बाद में शुंगवंश के क्रमशः प्रथम और द्वितीय सम्राट बने। इतिहास के अनुसार पुष्यमित्र वृहद्रथ का सेनापति था और उसने उसे समाप्त कर नए राज्यवंश की स्थापना की। इस प्रकार इरावती की सभी मुख्य घटनाएं इतिहास प्रमाणित हैं। उपन्यास के पात्रों में सर्वाधिक क्रियाशील और कर्मठ पात्र पुष्यमित्र ही है। वह वड़ी तीव्र गति से शक्ति संकलन करता दिखाई पड़ता है। ब्रह्मचारी, कालिन्दी, धनदत्त एवं मणिमाला का इतिहास विश्रुत आधार नहीं प्राप्त हो पाता। किंतु वातावरण और पृष्ठभूमि को सजीव, और आकर्षक बनाने के लिए इनकी अवतारणा तर्कसंगत और उपयुक्त है। ब्रह्मचारी 'इरावती' का दार्शनिक विवेचक है जो बौद्ध धर्म के कंकाल को हटाकर नए आर्य धर्म की प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील है। कालिन्दी जर्जर राजनैतिक स्थिति एवं उपन्यास की प्रमुख घटना इरावती-अग्निमित्र के प्रेम व्यापार को उत्कर्ष देने के लिए अवतरित की गई है। धनदत्त और मणिमाला भी सामाजिक वातावरण तथा तत्कालीन धनिक वर्ग की मनोवृत्ति से परिचित कराने के लिए चित्रित किए गए हैं। इरावती इतिहास सम्मत चरित्र है किन्तु स्वरूप की दृष्टि से कल्पित चरित्र है। मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र की द्वितीय रानी के रूप में इरावती का उल्लेख अवश्य मिलता है, किन्तु वहां वह 'इरावती' की भांति उस गरिमामय और कला सेवी गंभीर स्वरूप में नहीं अपितु एक ईर्ष्यालु और असंयत भाषिणी रमणी के रूप में उपस्थित है।

लेखक इसे पूर्ण नहीं कर सका फिर भी उसके माध्यम से ऐतिहासिक उपन्यास का एक आदर्श हमारे समक्ष उपस्थित करने में वह पूर्ण सफल रहा है। प्राचीन युग की प्रवृत्तियों के सजीव अंकन, उपाधियों के समुचित प्रयोग, प्रचलित रीति

---

१. बाबू गुलाब राय: प्रसाद जी की कला, पृ० १६२–६३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नीतियों का उपस्थापन एवं सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक उथल-पुथल का बिम्बात्मक चित्रण कर लेखक ने उपन्यास को अत्यन्त आकर्षक और प्राणवंत बना दिया है। उपोसथागार, चंक्रम, प्रवारणा, श्रामणेरी, संघाटी, उपसंपदा, शिक्षमाण तथा पापदेशना सदृश बौद्ध धर्म से संबद्ध शब्दावली, प्रतिहार, कुमारामात्य, बलाधिकृत, दण्डनायक, महादण्डनायक, व्यावहारिक, आमात्य, संधि विग्रहिक, आन्तर्देशिक प्रभृत् राजनैतिक शब्दावली, कलिंग, विदिशा, रोहिताश्च, राजगृह, मुद्गिरि आदि स्थानों के प्राचीन नाम एवं सर्वोपरि लेखक की सशक्त भाषा और गम्भीर शैली बौद्ध युगीन हिन्दूभारत के चित्रण के लिए वातावरण तैयार करने में सहायक सिद्ध हुई है। "और फिर प्रसाद अपने उन अंत:स्थित संस्कारों की प्रेरणा से रोमानी कल्पना द्वारा प्राचीन रीति-नीति, उत्सव आदि का इतना सटीक, अनुभूतिप्रवण वर्णन करते हैं कि समस्त वातावरण जगमग हो उठता है।"[१]

शिल्पगत विवेचन

कथावस्तु

आदर्श कथानक उसे माना जाता है जिसमें घटनाएं एक दूसरे से सम्बद्ध ही न हों, बल्कि प्रत्येक घटना अपने पूर्व की घटना से जन्म लेती एवं अपने बाद की घटना को जन्म देती भी दीखे और इस प्रकार सम्पूर्ण कथानक सुसंगठित रूप धारण कर ले कि उसमें किसी प्रकार के ढीलेपन तथा क्रमहीनता के लिए कोई गुंजायश न हो। प्रसाद के उपन्यासों का कथानक इसी प्रकार का है। कहीं भी उनमें शिथिलता नजर नहीं आती और न ही क्रम में अवरोध उत्पन्न हुआ है। मूल और प्रासंगिक घटनाएं एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

'कंकाल' की कथा उपन्यासकार द्वारा ही चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में किशोरी अपने पति श्रीचंद के साथ प्रयाग मेले में आती है पुत्र की लालसा से वह वहां के प्रख्यात् तपस्वी और महात्मा देवनिरंजन के दर्शनार्थ जाती है। देवनिरंजन उसका बालसखा निरंजन ही है। निरंजन किशोरी को पहचान लेता है। हरिद्वार में दोनों का पतन होता है। अपने परिवार से त्यागी जाकर विधवा ब्राह्मणी रामा किशोरी के संपर्क में आती है। आगे चलकर निरंजन का उससे भी अवैध संबंध स्थापित होता है और प्रत्यक्ष रूप से भण्डारी की

---

१. 'प्रसाद' मासिक पत्र का 'प्रसाद विशेषांक', इरावती लेख—-ले० डा० नगेन्द्र।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्त्री बन जाती है। किशोरी से विजय तथा रामा से तारा का जन्म होता है। बीच के १५ वर्षों के काल की घटनाओं को छोड़कर घटना-चक्र काशी के चंद्र-ग्रहण से पुनः मोड़ लेता है। तारा इस मेले में माँ बाप से छूटकर लखनऊ में 'गुलेनार' वेश्या बनने के लिए विवश की जाती है। मंगल उसका वहां से उद्धार करता है, उसी के संसर्ग से तारा गर्भवती होती है। जब दोनों इस प्रणय लीला को परिणय रूप में सामाजिक मान्यता देने जा रहे थे तभी चाची की कुटिलता से तारा के मातृपक्ष की अकुलीनता जानकर उसे अकेला छोड़कर मंगल चुपचाप खिसक जाता है। आगे किशोरी के यहाँ दोनों फिर एकत्र होते हैं—मंगल एक गरीब विद्यार्थी और विजय के मित्र के रूप में; तारा यमुना दासी के रूप में। विजय यमुना की तरफ आकर्षित होता है। बीमार पड़ने पर यमुना उसकी अनवरत सेवा करती है, मंगल इसे सह नहीं पाता, वह फिर वहां से खिसक जाता है। किशोरी और निरंजन पूजा-पाठ की आड़ में पति-पत्नी का जीवन बिता रहे हैं।

द्वितीय खण्ड में कथावस्तु का कुछ अधिक विस्तार है। किशोरी और निरंजन के साथ विजय भी वृन्दावन की तीर्थ यात्रा को जाता है। यहीं उसकी बाल विधवा घंटी से भेंट होती है। यमुना की ओर से निराश विजय घंटी की ओर बढ़ता है। भगोड़ मंगल यहां नए रूप से समाजोत्थान में लगा दिखाया जाता है। वह ऋषिकुल की स्थापना करके गरीब छात्रों को पढ़ाता है, उन्हीं को लेकर भीख मांगता है जो मिलता है, उससे संतोष करता है। विजय किशोरी के साथ नहीं लौटता। यमुना भी भीख मांगकर अपना दुखी जीवन बिताने की लालसा से किशोरी से अलग हो जाती है। विजय घंटी के साथ मथुरा जाता है, जहां वह एक नवाब द्वारा आहत होता है। घंटी भागकर जिस घर में शरण लेती है वह इसाई बाथम का घर है लतिका उसकी पत्नी है। वे सब विजय को उठा ले जाकर उसकी सेवा सुश्रुषा करते हैं। एक अंध भिखारी आकर घंटी और मंगल के अतीत जीवन पर पड़े रहस्य के परदे को हटाता है. फलस्वरूप सरला अपना पुत्र मंगल के रूप में पाती है, चाची नन्दो अपनी पुत्री के रूप में घंटी को पाती हैं। स्वामी कृष्णशरण और उनके आश्रम का भी यहीं घटना प्रवाह से संबंध होता है। यमुना मंगल फिर मिलते हैं। घंटी लतिका आदि भी इस आश्रम के संपर्क में आते हैं।

तीसरे खण्ड में घटना प्रवाह और भी तीव्र एवं विस्तृत है। विजय घंटी को गुंडों से बचाने के प्रयत्न में एक खून कर डालता है। यमुना इस हत्या के अभियुक्त के रूप में सामने आती है। निरंजन का भी गोस्वामी जी के आश्रम से संपर्क होता है। दाम्पत्य जीवन में घंटी के प्रवेश से बाथम और लतिका का संबंध-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विच्छेद हो जाता है। घंटी घोर मानसिक यंत्रणा में पागल बन जाती है। गाला, तथा उसके बर्बर डाकू पिता बदन का 'नये' रूप में खूनी विजय से परिचय होता है। अवान्तर रूप से गाला की माँ तथा उसकी पितामही शबनम की कथा है। यहीं गाला का परिचय मंगल से भी होता है।

चौथे खण्ड में घटना का प्रवाह धीमा हो जाता है, घटना चक्र के बिखरे हुए सूत्र एक-एक कर मिलने लगते हैं और संगठित होकर कथानक को विश्राम की दिशा में अग्रसर करते हैं। यमुना के परित्यक्त पुत्र को किशोरी और श्रीचंद अपना दत्तक पुत्र बनाते हैं। घंटी अपनी मां नन्दो चाची से मिलकर स्वस्थ हो जाती है। गाला मंगल की पाठशाला में आ जाती है और दोनों एक दूसरे की तरफ आर्कषित होते हैं। घंटी और नन्दो भी गोस्वामी जी के आश्रम में आ जाती हैं। मंगल और निरंजन के अनुरोध से गोस्वामी जी भारत संघ नामक समाज सुधारक संस्था की स्थापना करते हैं। खून के मुकदमे में यमुना के अभियुक्त ठहराए जाने की बात सुनकर विजय अदालत में जाकर अपने अपराध को स्वीकार करता है, पर लोग उसे पागल समझकर उसकी बात पर ध्यान नहीं देते। सबूत के अभाव में यमुना भी छूट जाती है। गाला के साथ आश्रम में मंगल का विवाह होता है। मंगल के इस ढोंग से क्षुब्ध होकर यमुना विजय को लेकर आश्रम से चली जाती है। किशोरी को निरंजन आत्म-धिक्कार भरा पत्र लिख कर भेजता है। विद्रोही विजय दशाश्वमेघ घाट पर भीख मांगता है और यमुना पुनः किशोरी के यहां सेवा करती है और अपने पुत्र मोहन की दाई बन जाती है। वहीं से वह सूखी रोटियाँ ले जाकर विजय की क्षुधा-पूर्ति करती है। यमुना के प्रयत्न से विजय को मरणासन्न किशोरी के दर्शन होते हैं। और वह उसके आंसू पोंछता है। निरंजन के पत्र से यह रहस्य जानकर कि व्यवहार में नहीं वरन् सचमुच तारा से उसका भाई का संबंध है, जन्म का नास्तिक विजय उसके साथ पतन से बचाने वाले भगवान के प्रति श्रद्धावनत हो जाता है और अपनी जीवन लीला भी समाप्त कर देता है। यमुना मोहन की सिफारिश पर श्रीचंद से दस रुपए उधार पाकर उसके कंकाल का अंतिम संस्कार कराती है। संघ के समारोह में व्यस्त सपत्नीक मंगल भी उस कंकाल के पास आता है और उसके पास बैठी रोती हुई यमुना को देखता है पर बिना पहचाने आगे बढ़ जाता है।

कथावस्तु के उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय से यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें दो मूल कथाएं हैं—(१) किशोरी और निरंजन के कार्य व्यापार तथा (२) यमुना, विजय और मंगल के कार्य व्यापार। घंटी बाथम, लतिका, वदन और गाला आदि की कथाएं इनमें आकर मिलती हैं। कथाओं की अधिकता के कारण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कथानक में कहीं भी ढीलापन नहीं आने पाया है। यद्यपि मूल कथा में अनेक जोड़ों की स्थिति उत्पन्न है। नंदो, चाची, चन्दा, सरला, लतिका और बाथम, गोस्वामी जी, बदन गूजर आदि की कथाएं इसी प्रकार हैं। किंतु ये जोड़ या पैबन्द के रूप में न होकर मूलकथा के हृदय हो गए हैं, उनमें घुल मिल गई हैं। बाथम की कथा को निकाल देने से उपन्यास में दोष नहीं आएगा किन्तु उपन्यास के मूल लक्ष्य–विभिन्न धर्मों में बढ़े हुए मिथ्याचार और उनमें नारी की स्थिति का चित्रण— के लिए इस उपकथा की अत्यन्त आवश्यकता थी। मूल कथा से इसका संबंध जोड़ने के लिए लेखक ने मंगल की माँ सरला को खड़ा किया है। गाला की अवतारणा से मंगल और विजय की चरित्रगत विशेषताएं पुनः नई कसौटी पर कसी गई हैं। किशोरी और निरंजन तथा यमुना, विजय, मंगल आदि की कथा दो होकर भी एक-साथ चलती है, विलग होकर भी ये दूर नहीं जा पातीं।

'कंकाल' की कथावस्तु में सिर्फ एक ही खटकने वाली बात है। वह है इसके संयोजन में संयोग और आकस्मिकता का बहुत अधिक सहारा लेना। पूरी कथा का आधार इन्हीं दो स्तंभों पर स्थित है। किशोरी का निरंजन से संयोग, घंटी का और मंगल का अपनी मां से मिलना, तारा के कहीं भी जाने पर मंगल का वहां पहुंच जाना यमुना का अपने त्यक्त पुत्र मोहन से पुनः संयोग आदि सभी कथाएं उदाहरण के लिए ली जा सकती हैं। पर लेखक की कला-कुशलता से ये खटकने वाले तत्व प्रकट होकर भी रोचकता की ही अभिवृद्धि करते हैं, यह अलग बात है कि इनसे उपन्यास की स्वाभाविकता पर आंच आती है।

प्रसाद के 'कंकाल' का कथानक अत्यन्त सुसंगठित तीव्र गति वाला है। इसमें अनावश्यक रूप से आया हुआ प्रवाह को अवरुद्ध करने वाला कोई तत्व नहीं है। उसकी संघटना और क्रमविकास आदि अत्यन्त कलात्मक ढंग से आयोजित हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों की कथावस्तु जैसा ढीलापन, अनावश्यक विस्तार और मूल एवं अवान्तर कथाओं के बीच पड़ी हुई चौड़ी दरार, कंकाल में नहीं दिखाई देती।

'कंकाल' के समान **'तितली'** की कथावस्तु भी चार खण्डों में विभाजित है। लेखक ने इस उपन्यास में वस्तु संगठन और कार्य व्यापारों के संचालन में नया प्रयोग किया है। प्रथम खण्ड में ही परिचयात्मक रूप से सभी प्रमुख पात्रों की मौलिक विशेषताओं का निर्देश मिल जाता है। उपन्यास की मूल समस्या का भी परिचय लेखक यहीं दे जाता है। इन्द्रदेव, शैला शहरी सभ्यता की प्रतीक हैं और मधुबन तथा तितली और रामनाथ ग्रामीण सभ्यता के। इन्द्रदेव धामपुर के जमींदार हैं, रामनाथ बनजरिया गांव का एक शिक्षित ब्राह्मण, तितली उसकी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पालित पुत्री और मधुवन उसके यहां पढ़ने वाला एक उच्चवर्गीय नवयुवक। शैला इंगलैण्ड की अनाश्रित लड़की थी, भीख मांग कर जीवन-यापन करती थी, इन्द्रदेव को उस पर दया आई और वे उसे अपने साथ भारत लेते आए। आगे बढ़ने पर इन्द्रदेव का कलह से जर्जरित भरा पूरा परिवार चित्रित है। परिवार की इस स्थिति से दोनों खिन्न दिखाई देते हैं। मधुवन की बहिन राजकुमारी और उनके कुल वैभव विनाश की सूक्ष्म झांकी देकर सातवें परिच्छेद में तितली के जीवन का पूर्ण वृत्त सामने आता है। इन विवरणों के साथ धामपुर के बनजरिया और शेरकोट में फैले विस्तृत ग्रामीण जीवन और वहां के रहन-सहन का भी इसी खण्ड में सजीव चित्रण हो जाता है।

चरित्रों के विकास का एक चरण यहीं पूरा हो जाता है। सबके अतीत जीवन का आभास और उनके चरित्र की मूल वृत्तियों का परिचय प्रथम खण्ड में मिल जाता है।

दूसरे खण्ड में ग्राम सुधार योजना, बैंक की स्थापना तथा मधुवन के शेरकोट छिन जाने की संभावना दिखती है। दूसरी ओर शैला को नील कोठी के साथ अपनी माँ का संबंध ज्ञात होता है। अनवरी के षड्यंत्र और माधुरी की महत्वाकांक्षा से इन्द्रदेव का कौटम्बिक जीवन भी राष्ट्रनीति के गुप्त दांव-पेंचों से भरा हुआ दिखाई देता है। शैला ग्राम सुधार में लगती है और गृह कलह से बचने के लिए इन्द्रदेव शहर चला जाता है। राजकुमारी और तहसीलदार के विरोध के वावजूद भी मधुवन और तितली परिणय सूत्र में आबद्ध होते हैं और दोनों संघर्षशील संसार में अपनी गृहस्थी बसाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। राजकुमारी का सुखदेव चौवे से प्रणय-संबंध आगे चलकर उपन्यास में नए संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है। दूसरे खण्ड के अंत तक रामनाथ मधुवन और तितली को जीवन संग्राम में प्रवृत्त कर स्वयं सन्यास ग्रहण करते हैं। शैला इन्द्रदेव, एवं तितली मधुवन की प्रधान कथा के साथ अनवरी, श्यामदुलारी, माधुरी, रामजस, राजकुमारी और चौवे की प्रासंगिक कथा भी विकसित होती रहती है।

तृतीय खण्ड में संघर्ष का सूत्र अत्यन्त घना हो गया है। नायक नायिका के लिए चारों तरफ आशंका, विरोध और विपत्ति ही नजर आती है। प्रारंभिक अनुच्छेदों में तो तितली और मधुवन साधारण संघर्षों को झेलते हुए अपनी गृहस्थी आगे बढ़ाते हैं, पर शहरी पहलवान को पराजित करने से उसकी शक्ति से आतंकित हो उसके अनेक विरोधी उठ खड़े होते हैं, जो उसे छल-बल हर प्रकार से पराजित करना चाहते हैं। उसी मध्य दो-एक आकस्मिक घटनाएं दोनों की जीवन-प्रक्रिया

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को झंझोड़ देती हैं। गांव में आई बारात के हाथी के बिगड़ जाने पर बड़ी बहादुरी से वह मैना वेश्या की रक्षा करता है। राजकुमारी से चौबे के अनैतिक संबंध की जानकारी होने पर उनकी मरम्मत करता है। चौबे अवसर पाकर तितली के मन में मधुबन का मैना के प्रति आकर्षण का विष अंकुरित कर आते हैं। साथी रामजस को बचाने जाकर जमींदार के कई आदमियों को घायल कर मधुवन मुकदमों के चक्कर में फँसता है। महन्त के यहां राजकुमारी रूपया उधार लेने जाती है, कामुक महन्त की छेड़छाड़ पर पहले से वहीं छिपा मधुवन महन्त का गला घोंट देता है और तितली के लिए विपत्तियों का सागर छोड़कर भाग खड़ा होता है। इन्द्रदेव अपनी बैरिस्टरी की प्रैक्टिस आरम्भ करते हैं। उनके कुटुम्ब का कलह पूर्ववत चलता है। पहले की प्रासंगिक कथाओं के साथ मुकुन्दलाल एवं उनकी पत्नी नंदरानी की एक नई प्रासंगिक कथा जुड़ जाती है, जो उपन्यास के विचार पक्ष को सामग्री प्रदान करती है।

चतुर्थ खण्ड में एक तरफ तितली अपने संघर्षों के उलझे सूत्रों को अपनी कठोर कर्मठता से सुलझाकर एक निश्चित पथ का निर्माण करती है। दूसरी ओर मधुवन अपने कलकत्ते के संघर्षमय जीवन में और भी उलझता जाता है। शैला एक बार वाटसन की तरफ आकर्षित होती है, पर पुनः वह तितली के प्रभाव में आकर अपना पथ बदल देती है। उसके ग्रामोत्थान की योजना सफल होती है ओर धाम पुर एक आदर्शगांव के रूप में सामने आता है।

मधुवन जेल से तो छूटता है, किन्तु तितली और उसके लड़के की बात सुनकर मन में संदेह उत्पन्न होता है। और तितली कभी न हारने वाली तितली, अनवरत जीवन संघर्षों से लड़ने वाली तितली अपने चरित्र पर लांछन लगा देखकर तिलमिला उठती है। वह इस आघात को सह नहीं पाती और गंगा की गोद में छिप जाने के लिए निकल पड़ती है। किंतु संदेह, विकार और जीवन युद्ध से हारा सैनिक उसका चिर सहचर और उपास्य मधुवन उसके विश्राम कुटीर के सम्मुख खड़ा मिल जाता है। यहीं नाटकीय ढंग से उपन्यास की परिसमाप्ति होती है।

'कंकाल' की तुलना में 'तितली' का कथानक अधिक संगठित है। इसमें अवान्तर कथाओं की कमी है, और मूल कथा में भी अधिक घुमाव नहीं है। कथानक का प्रवाह सर्वत्र समान है। यद्यपि इसमें दो मुख्य कथाएं हैं, पर दोनों आपस में इस तरह घुल-मिल गई हैं कि वे अलग प्रतीत नहीं होती। 'तितली' उपन्यास में प्रसाद ने नियति के महत्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार विधाता के लिए मानों एक रंगभूमि है, विधाता ही उस रंगभूमि का मुख्य सूत्रधार है और उसी के इंगित से सभी पात्र अपने-अपने निर्दिष्ट कार्य करते हैं, और फिर विधाता की

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही इच्छा से उस रंगभूमि से तिरोहित हो जाते हैं। तितली ने यह अनुभव किया कि उसके जीवन में कोई अलक्षित शक्ति काम कर रही है। बचपन अकाल की गोद में बीता। शैशव बिना दुलार का बीता। यौवन के प्रारंभ में बाल सहचर मधुवा का थोड़ा सा प्रणय मधु मिला, परन्तु यंत्रणा से पीड़ित होकर वह उसी के कारण कई वर्षों तक असीम कष्ट झेलती रही। और जब तितली निन्दा और उत्पीड़न सहने में असमर्थ हो जाती है तभी मधुवन पहुँच जाता है। क्या यह नियति का चक्र नहीं। शैला का भारत आना और नील की कोठी की कहानी सुनना आदि नियति का ही चक्र है। शैला स्वयं अपने जीवन के उतार-चढ़ाव के पीछे इस प्रबल शक्ति के संचालन को अनुभव करती है।

नियति के आधार पर सारे घटनाचक्र को आकस्मिकता और संयोग की भित्ति पर स्थिर करना एक कलात्मक दोष है। परंतु यह प्रसाद का दार्शनिक मत है, जिसे उनके कथानकों के विवेचन के समय स्वीकार कर चलना ही अधिक उचित है। उनकी कोई भी कहानी, नाटक, उपन्यास आदि इस नियति के चक्र से अछूते नहीं रह पाते। स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त एवं अजातशत्रु जैसे नाटकों एवं आकाशदीप, पुरस्कार आदि कहानियों में पग-पग पर नियति का प्रभाव देखा जा सकता है। 'नियति' उनके रचनासंसार का एक प्रमुख आधार बन गया है। यदि इस दोष को छोड़ दिया जाय तो तितली की कथावस्तु अत्यन्त सुसंगठित, सुसम्वद्ध और तीव्र वेगवान है। डॉ० मिश्र के शब्दों में भी— "तितली की कथावस्तु सानुबंध है। फिर भी उसमें कथानकों की अधिकता हो गई है। उसमें लेखक ने भारतीय वातावरण के वहुत अधिक चित्र तथा पाश्चात्य वातावरण के भी कुछ खण्ड चित्र चित्रित किए हैं।"[1]

प्रसाद एक कुशल नाटककार थे। उन्होंने 'इरावती' के कथानक संयोजन में अपने नाटकीय कौशल का पूरा सहारा लिया है। अधूरे उपन्यास की मूल कथा एवं प्रासंगिक कथाएं ऐसे तीव्र प्रवाह से अपने मार्ग पर अग्रसर होती हैं जिससे प्रतीत होता है कि सभी आगे चलकर मूल कथा में समन्वित हो जाएंगी। राजनैतिक कथा का सूत्र धीरे-धीरे वृहस्पतिमित्र के हाथ से निकल कर पुष्यमित्र के हाथ में आता प्रतीत होता है। प्रेम-त्रिकोण का तनाव अपने चरम शिखर पर पहुँच रहा था और उपकथाएं मूल कथा में अन्वित होने को हो रही थीं कि सहसा सब कुछ अवरुद्ध हो जाता है। इरावती के वस्तु संगठन की दूसरी प्रमुख विशेषता

---

१. डॉ० विद्यानिवास मिश्र—'प्रसाद' अक्टूबर, १९५० में 'तितली' पर प्रकाशित समीक्षा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसकी सक्रियता है। कहीं अवरोध नहीं, कहीं मंथरता नहीं, घटनाएं विकास पथ पर दौड़ती सी प्रतीत होती हैं।

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। यहां प्रश्न उठता है कि क्या लेखक चरित्र निर्माण में सर्वथा स्वतंत्र है ? अथवा वह चरित्र का निर्माण भी करता है या नहीं ? एलिजावेथ बावेन के अनुसार लेखक चरित्रों का निर्माण न कर उसका मात्र संचालन करता है। किंतु संचालन में भी वह स्वतंत्र नहीं होता। "कुशल कलाकार के चरित्र स्वयं शतरंज के मुहरे न होकर सप्राण व्यक्ति की तरह होते हैं।. . .यह संभव है, कि लेखक किसी चरित्र के सहारे जीवन के किसी आदर्श का संकेत दे दे, परंतु प्रूफरीडर की तरह वह चरित्रों के स्वाधीन जीवन को संशोधित करते चलने का अधिकार **नहीं** रखता।"[1]

पात्रों को स्वतंत्र रखकर उसे स्वाभाविक विकास देने की लेखक की क्रिया कृति को महत्वपूर्ण बनाती है। किंतु जीवन के यथार्थ अंकन के साथ किसी समस्या या जीवन के प्रति किसी दृष्टिकोण विशेष को लेकर बढ़ने वाला रचनाकार अपने पात्रों को पूरी स्वतंत्रता नहीं दे पाता। 'कंकाल' यथार्थवादी उपन्यास है। लेखक ने अपने पात्रों को इच्छित स्वतंत्रता तो नहीं दी है, पर वह उनके प्रति कठोर भी नहीं है।

'कंकाल' के पात्र समाज के ठुकराए हुए और दलित पात्र हैं किन्तु लेखक ने इन पात्रों में भी हृदय की महानता प्रदर्शित की है। यही कारण है कि व्यक्तिगत वैलक्षण्य रखने वाले पात्रों का अभाव कंकाल में नहीं है ; साथ ही समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले भी पात्र उपस्थित हैं। देव निरंजन, पादरी जान, श्रीचन्द, वदन अपने-अपने वर्ग के प्रतीक रूप में चित्रित हैं। निरंजन ढोंगी मठाधीशों का, पादरी जान अंध-विश्वासी ईसाई पादरी-वर्ग का, श्रीचंद अर्थदास व्यापारी वर्ग का, वदन क्रूर और दुस्साहसी डाकुओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। ऐसे पात्रों के चित्रण में लेखक की कला की परीक्षा होती है। प्रसाद इनके चित्रण में अत्यन्त सफल सिद्ध हुए हैं। 'मंगल', 'विजय' अपनी व्यक्तिगत विशेषताएं रखने वाले पुरुष पात्र हैं। दो पात्रों को एक ही अवस्था में अथवा अलग-अलग रखकर साम्य या विरोध के आधार पर उनका चित्रांकन साधारण कलाकार के बूते की बात नहीं होती। इस पद्धति से चित्रण में कुछ

---

१. हल्या एहरेन्वर्ग--ज्ञानोदय (कलकत्ता), जुलाई सन् १९५५ से उद्धृत।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गति और भास्वरता आ जाती है। प्रसाद ने अपने संपूर्ण उपन्यास में इस पद्धति को अपनाया है। मंगल और विजय को एक परिस्थिति में रखकर उनके चरित्र को सोचा परखा है। विजय पूर्ण विद्रोही है वह समाज की रूढ़ियों, धर्म के आडम्बरों का कट्टर विरोधी है। इसके विपरीत मंगल समझौते की नीति का अनुसरण करता है। विजय का धर्म में विश्वास नहीं, मंगल धर्म में कुछ संशोधन चाहता है। प्रारंभ में दोनों सदाचारी और निश्छल हृदय के रूप में सामने आते हैं। पर आगे चलकर मंगल अपनी वैयक्तिक दुर्बलताओं को आदर्श की ओट में छिपा लेता है, आत्म सुधार में असफल रहकर भी समाज सुधार का नेतृत्व ग्रहण करता है। दूसरी तरफ अपने विद्रोही स्वभाव के कारण स्वयं अनावृत्त रहकर समाज को अनावृत्त रूप में देखने की अपनी आदत, और कहीं भी घुटने न टेकने की प्रवृत्ति के कारण विजय हर जगह असफल होता है। मंगल एक सती साध्वी नारी के जीवन को बर्बाद कर भी गाला से व्याह रचा लेता है। पर विजय यमुना से प्रेम के बदले दुत्कार पाने के बावजूद भी उसे भूल नहीं पाता। कुछ समय के लिए वह घंटी के आकर्षण में बंधता है, पर यमुना के विरोध पर वह विवाह नहीं करता। यमुना के कहने से ही वह हत्या के बाद भागता है। बदन के गाला के विवाह-प्रस्ताव को ठुकराने में यमुना का प्रेम ही प्रमुख कारण है। अंत में वह यमुना को भाई का प्यार देता है और उससे बहन का प्यार प्राप्त करता है। उसे अपने इसी विरोधी स्वभाव के कारण भीख भी मांगनी पड़ती है।

अंत तक मंगल के बारे में यमुना की जिज्ञासा का समाधान नहीं मिल पाता कि "मंगल पवित्रता और आलोक से घिरा हुआ पाप है कि दुर्बलताओं में लिपटा हुआ एक दृढ़ सत्य।"[1]

विजय असफल होकर भी हमारे सामने एक प्रश्न चिह्न छोड़ जाता है। वह पतित नहीं होता। मंगल के समान वह नीचे नहीं गिरता। भूखों मरते हुए भी वह समाज के अभिशाप श्रीचंद की रोटी खाने से हाथ हटा लेता है।

किशोरी, रामा, नन्दो, लतिका आदि नारी जीवन के विविध पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं। किशोरी में कभी मातृपक्ष प्रबल होता है, कभी उसका भोगफल। किशोरी में नारी जीवन के इन दोनों पक्षों का चित्रांकन अत्यन्त आकर्षक और जीवंत हुआ है। सरला में मातृत्व का अत्यन्त कोमल पक्ष अभिव्यक्त है। विजय को कहे हुए उसके शब्द उसके क्षुधित मातृत्व के परिचायक हैं : "विजय का कलेजा रोने लगता है, हृदय कचोटने लगता है, आंखें छटपटा-

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० ९९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कर उसे देखने के लिए बाहर निकलने लगती हैं, उत्कण्ठा सांस बनकर दौड़ने लगती है। पुत्र का स्नेह, बड़ा पागल स्नेह है, विजय! स्त्रियां ही स्नेह की विचारक हैं। पति के प्रेम और पुत्र के स्नेह में क्या अन्तर है, यह उनको ही विदित है। अहा, तुम निष्ठुर लड़के क्या जानोगे! लौट जाओ मेरे बच्चे! अपनी मां की सूनी गोद में लौट जाओ! —सरला का गम्भीर मुख किसी व्याकुल आकांक्षा से इस समय विकृत हो रहा था।"[1]

गाला एक सरल युवती है। एक बार 'नए' की ओर आकृष्ट होती है पर विवाह संबंध अस्वीकार करने पर मंगल को स्वीकार कर लेती है। उसके व्यक्तित्व में सरलता, आत्म सम्मान और कर्तव्य परायणता प्रेम आदि आकर्षक गुण हैं।

घंटी और तारा का व्यक्तित्व प्रसाद ने बड़ी निपुणता से चित्रित किया है। अपने वर्ग की सामान्य विशेषताओं से युक्त होते हुए भी इनमें अपनी व्यक्तिगत विशेषताएं विद्यमान हैं। व्यक्तित्व की महिमा में तारा घंटी से बहुत महान है पर घंटी के व्यक्तित्व चित्रांकन में लेखक बहुत सफल हुआ हैं। वस्तुतः प्रसाद का स्वच्छंदतावादी स्वरूप घंटी के रूप में मुखर हुआ है। तारा गुलेनार बनकर भी पतित होकर भी अनाघ्रात कुसुम के सदृश पवित्र रहती है और जीवन के संघर्षों में बार-बार पराजित तथा लांछित होकर भी अन्त तक वह "पवित्र देवमंदिर की दीप शिखा-सी ज्योतिर्मयी" बनी रहती है। दूसरी तरफ बाल विधवा घंटी, ब्रज की गलियों में घूम-घूम कर सबको हँसाने वाली तथा स्वयं हँसने वाली, का चरित्र भी कम उतार-चढ़ाव का नहीं है और तारा-यमुना मंगल द्वारा तिरस्कृत होकर, समाज की कृतघ्नता से परिचित होकर भी, मूक भाव से सब कुछ सहन करती है। उसमें स्नेहशीला मां का मातृत्व, पतिपरायण कुलवधू का सतीत्व, साध्वी बहन की निश्छल सेवा और स्वाभिभक्त दासी की कर्त्तव्य परायणता का अद्भुत योग है।

'कंकाल' की ही भांति 'तितली' में भी प्रसाद ने चरित्रांकन की अपनी शैली अपनाई है। उन्होंने किसी पात्र को इतनी अधिक स्वच्छंदता नहीं दी कि अंत में उसे मार्ग से हटाने के लिए आत्महत्या कराना पड़े, या अन्य उपाय अपनाने पड़ें। उन्होंने अपने पात्रों के चरित्र विकास पर पूरा नियंत्रण रखा है, इसीलिए कहीं-कहीं ये सांचे में गढ़े-से प्रतीत होते हैं। फिर भी उन्होंने पात्रों के स्वाभाविक विकास में अवरोध नहीं उपस्थित किया है। विद्रोही मधुवन को वे चित्रपट से कुछ समय के लिए हटा देते हैं पर उसके लिए उन्होंने उपयुक्त परिस्थितियों का

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० १२३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निर्माण किया है। तितली के चरित्र-चित्रण में प्रसाद प्रारंभ से ही सतर्क नजर आते हैं। लेखक ने किसी भी पात्र के साथ कठोर होकर उसकी स्वाभाविक जीवनेच्छा को कुचला नहीं है। राजकुमारी, मैना, अनवरी और श्यामलाल के चरित्र इस कथन के प्रमाण हैं। लेखक ने आदर्शवादी सिद्धान्त अपनाकर हर बुरे पात्र को सुधार लेने का संकल्प किया है। सत् और असत् पक्ष के संघर्ष में असत् पक्ष हारता है, इसे दिखाने के लिए लेखक ने अपने संपूर्ण समाज सहित महन्त के विनाश की सूचना भर दे दी है। प्रसाद ने प्रेमचंद की अपेक्षा अधिक विस्तृत सामाजिक भूमि के पात्रों का चुनाव किया है। उनके पात्रों में कर्मठता अधिक मिलती है। और प्रायः सभी प्रमुख पात्रों में भावुकता की अधिकता है।...प्रेमचन्द पात्रों की वर्गगत विशेषताएं दिखलाने में तथा प्रसाद व्यक्तिगत वैलक्षण्य दिखलाने में अधिक सफल हुए हैं...प्रसाद सांस्कृतिक चेतना में लगे हुए अंतर्द्वन्द्वों का उद्-घाटन करने वाले कवि थे। हृदय का अंतर्द्वन्द उनकी रचनाओं में सर्वत्र स्फुटित मिलता है 'तितली' में तितली को छोड़कर अन्य पात्रों का चरित्र-विकास 'कंकाल' की भाँति सुस्पष्ट नहीं।...प्रसाद ने मानवीय भावों के उत्थान-पतन और पर्यव-सान का अभूतपूर्व निदर्शन किया है और चरित्र के चढ़ाव-उतार का क्रमिक विकास मनोवैज्ञानिक ढंग से दिखलाया है।

'तितली' के अधिकांश पात्र अपनी विशिष्टता कायम रखते हुए अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। तितली, मधुवन, इन्द्रदेव और शैला का दुहरा चरि-त्रांकन 'तितली' की प्रमुख विशेषता मानी जाती है। पुरुष पात्रों में मधुवन, इन्द्रदेव और रामनाथ का विकसित व्यक्तित्व ही सामने आ सका है। रामजस, सुखदेव, रामदीन, मंहगू, श्यामलाल, वाटसन, कलकत्ते के बीरू बाबू और ननी तथा बनारस के मुकुन्दलाल भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र रूप में उपस्थित हैं। महंत और तहसीलदार क्रमशः सूदखोर और जमींदारों के कर्मचारी वर्ग के प्रतीक पात्र हैं। स्त्री पात्रों में श्यामदुलारी, माधुरी राजकुमारी, मलिया, मैना, अनवरी और नंदरानी नारी समाज के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके चरित्र का सम्यक् विकास हुआ है। पुरुष पात्रों की अपेक्षा इनके चित्रांकन में प्रसाद अधिक सफल हुए हैं। तितली, शैला और राजकुमारी का चरित्र-चित्रण अधिक विस्तृत है।

उपन्यास का नायक मधुवन उच्चवर्गीय सम्पन्न जमींदार कुल का वंशधर है। और अपने पूर्वजों के वैभव-कंकाल शेरकोट में सामान्य किसान के रूप में रहता है। वह उच्च संस्कार संपन्न, परिश्रमी किंतु शीघ्र ही क्रुद्ध होकर संघर्ष में कूद पड़ने वाले साहसी युवक के रूप में सामने आता है और अंत तक उसके ये गुण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कमोबेश रूप में बने रहते हैं। वह अपनी बहन से भिन्न स्वभाव का है। जहां उसकी बहन स्वर्णिम अतीत के चिह्न स्वरूप अभिमान को छोड़ नहीं पाती वहीं वह पक्का श्रमिक बन जाता है। "बहन! वह सब रामकहानी के दिन बीत गए। काम करके खाने में लाज कैसी! किसी की चोरी करता हूं या भीख मांगता हूं? धीरे-धीरे मजूर होता जा रहा हूँ।"[1] बहन के अपमान को न सहन कर पाने के कारण वह चौबे से उलझ जाता है। मित्र रामजस के लिए जमींदार के कर्मचारियों से संघर्ष लेता है। राजो के लिए वह महंत का गला घोंटता है। कलकत्ता में भी वह इसी स्वभाव के कारण मैदान में उतर पड़ता है और उसे जेल की हवा खानी पड़ती है। किंतु अनेक घटनाओं के मध्य लाकर लेखक ने उसके विद्रोही स्वभाव को शांत कर दिया है। "मधुवन की आंखों में नींद नहीं थी। प्रतिशोध लेने के लिए उसका पशु सांकल तुड़ा रहा था, और वह बार-बार उसे शांत करना चाहता था। भयानक द्वन्द्व चल रहा था। सहसा अब उसे झपकी आने लगी थी।"[2] वह मधुवन जो बात-बात में उत्तेजित हो उठता था जिसमें संघर्ष की अपार शक्ति थी, वही आज अपने हृदय को शांत करने में लगा है। क्या यह मधुवन के विद्रोही स्वभाव का शमन नहीं है? उसमें परिवर्तन का लक्षण नहीं है? वस्तुतः लेखक ने उसे एक सामान्य मानव के रूप में विभिन्न परिस्थितियों में रखकर चित्रित किया है, जिसमें अच्छाई भी है और बुराई भी। उसे वह आत्मनिर्भर श्रमिक से कुली, फिर रिक्शा खींचने वाला, दूसरे का आश्रित आदि सभी रूपों में रखकर परखा है।

इन्द्रदेव धामपुर के जमींदार हैं। वे जमींदार के रूप में कम, नवीन शिक्षा संपन्न कुलीन उदारमना व्यक्ति के रूप में अधिक सामने आते हैं। सम्मिलित कुटुम्ब, हिन्दू गृहस्थी, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की विडंबनाओं के प्रति उनके मन में अत्यंत रोष है। स्पष्ट रूप से वे उनका विरोध करने के लिए तत्पर नहीं। यह जानते हुए भी कि रामदीन निर्दोष है, गृहकलह से बचने के लिए वे उसे पुलिस के हवाले कर देते हैं। अनवरी की कुटिलता से परिचित होते हुए भी उसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं करते। शैला के प्रति उनका प्रेम निश्छल और निस्वार्थ-पूर्ण है। निम्न सामाजिक स्तर से उसका उद्धार करके भी अपने कोमल हृदय का प्यार अर्पित करते हैं। उसकी प्रसन्नता के लिए उससे अधिक नैकट्य स्थापन के लिए अपने समस्त अधिकारों का विसर्जन कर देते हैं। फिर

---

१. प्रसाद: तितली, पृ० ५२।
२. वही, पृ० २५८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी वे यह नहीं चाहते कि शैला उपकृत अनुभव करे और उन्हें प्रेम करे। उनका त्याग और शैला के प्रति प्रेम उनके चरित्र को अत्यन्त प्रभावशाली बना देता है। शैला का वाटसन के प्रति आकर्षण जानकर भी वे उसमें कोई बाधा नहीं देते और शैला को निर्णय की पूरी स्वतंत्रता दे देते हैं।

इन्द्रदेव एक अनमनस्क युवक के रूप में चित्रित है जो कर्मक्षेत्र से भागता फिरता है। संभवतः प्रसाद ने इन्द्रदेव के व्यक्तित्व निर्माण में स्कंदगुप्त के चरित्र को सामने रखा। स्कंदगुप्त कर्मठ, कर्त्तव्य के प्रति सचेत है पर इन्द्रदेव अपने कर्त्तव्य से दूर भागता है। चाहे वह कर्मक्षेत्र हो या प्रेम क्षेत्र। अपने अधिकारों का संपूर्ण त्याग करके वह पारिवारिक कलह को मिटाना चाहता है, पर क्या यह करके भी वह परिवार को बचा पाता है। तितली के प्रति भी वह अपने सही कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं कर पाता। ईर्ष्यावश वे उसके विवाह का विरोध करते हैं—"कुछ भी हो बाबा जी! आपको इसमें समझ बूझकर हाथ डालना चाहिए। —न जाने किस भावना से प्रेरित होकर वेदी के पास खड़े इन्द्रदेव ने कहा। उनके मुख पर झुंझलाहट और असंतोष की रेखाएं स्पष्ट हो उठीं।"[1] इन्द्रदेव पुनः तितली के मुकदमे की पैरवी से मुकरता है। "सहसा उसके मन में वह बात चमक गई जो उनके और तितली के व्याह के लिए धामपुर में एक बार अदृष्ट उपहास बनकर फैल गई थी।"[2] प्रसाद ने इन्द्रदेव को मानवीय अच्छाइयों और बुराइयों दोनों के साथ चित्रित किया है।

रामनाथ का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक है। ये 'कंकाल' के गोस्वामी कृष्णशरण के सदृश 'तितली' के बौद्धिक नेता हैं। प्रारंभ में वे एक रुग्ण, दीन-हीन किसान के रूप में चित्रित हैं पर कथानक के विकास के साथ उनके व्यक्तित्व में भी निखार आता गया है। शैला के अध्यापन के समय वे भारतीय और पाश्चात्य जीवन दृष्टि की तुलना करते हैं। ईसाइयों की समूहिक प्रार्थना पद्धति की तुलना में व्यक्तिगत साधना पर जोरदेने वाले भारतीय आत्मवाद की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। व्यावहारिक जीवन में भी वे अत्यन्त कर्मठ और निर्भीक हैं। काले खां को देवनंदन को मारने पीटने से मना करने तथा लगान का पैसा एकत्र करके जमा करने और तितली को पालने में उनकी कर्मठता तथा निर्भीकता का परिचय मिलता है। अनेक विरोधों के बावजूद भी वे मधुवन और तितली के व्याह को संपन्न कराते हैं। जमींदार इन्द्रदेव के विरोध को भी

१. प्रसाद : तितली, पृ० ११९-२०।
२. वही, पृ० २०७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वे नहीं महत्व देते। इन्द्रदेव के विरोध पर वे निर्भीक होकर कहते हैं—"कुंवर साहब! मधुवन ही तितली के उपयुक्त वर है। मैं अपना दायित्व अच्छी तरह समझता हूँ। कम से कम जो लोग यहां बातचीत कर रहे हैं उनसे मेरा अधिक न्यायपूर्ण अधिकार है।"[1] रामनाथ दो खण्ड के बाद सन्यास लेकर काशी चले जाते हैं पर उनके सिद्धान्तों की वास्तविक उत्तराधिकारिणी तितली अंत तक उनके विचारों को क्रियात्मक रूप देती दिखाई पड़ती है।

'तितली' का चरित्र उपन्यास की मूल आत्मा है। वह रामनाथ की पोषित पुत्री है पर उनके विचारों और आदर्शों को अपने जीवन में उतार कर अपने को उनकी सच्ची उत्तराधिकारिणी प्रमाणित करती है। तितली अनेक संघर्षों में भी अपने नारी और पत्नी कर्त्तव्य को विस्मृत नहीं कर पाई। वह इन्हीं की रक्षा में पराक्रम के साथ लगी रही। बनजरिया और शेरकोट के विवाद में उसने पुरुष पराक्रम से सबका सामना किया, किसी के समक्ष दया की भीख मांगने नहीं गई। समाज की परम अछूत संतानों को भी अपनाकर उसने उन्हें अपने कुटुम्ब का अंग बनाया। तितली का व्यक्तित्व शैला के व्यक्तित्व से तुलना करने पर अधिक उभरता है। शैला हिन्दू बनती है, पर उसकी प्रवृत्ति पाश्चात्य स्वच्छन्दता से पूर्ण है। उसे आश्चर्य है कि उसके लिए इतने संघर्षों का जाल खड़ा करके भागने वाले मधुवन से भी तितली प्यार करती है। उसकी वर्षों प्रतीक्षा करती है। शैला के तितली से यह पूछने पर कि क्या अभी भी वह मधुवन को प्यार करती है, तितली का उत्तर हिन्दू नारी के प्रिय के प्रति अखण्ड विश्वास का परिचायक है: "संसार भर उनको चोर, हत्यारा और डाकू कहे, किन्तु मैं जानती हूं कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसीलिए मैं कभी उनसे घृणा नहीं कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए, उस स्नेह के लिए संतुष्ट है। मैं जानती हूं कि वह दूसरी स्त्री को प्यार नहीं करते। कर भी नहीं सकते।"[2]

तितली की दृष्टि में हिन्दू स्त्री का श्रद्धा पूर्ण समर्पण ही उसकी तपस्या का मूल आधार है। वह शैला से कहती है "तुम धर्म के बाहरी आवरण से अपने को ढंककर हिन्दू स्त्री बन गई हो, सही, किन्तु उसकी संस्कृति की मूल शिक्षा भूल रही हो। हिन्दू स्त्री का श्रद्धापूर्वक समर्पण उसकी साधना का प्राण है। इस मानसिक परिवर्तन को स्वीकार करो।"[3] उसकी व्यक्तिगत और समाज-

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० १२०।
२. वही, पृ० २४६।
३. वही, पृ० २४६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परक साधना से बनजरिया सुख शांति और स्वावलंबन का नीड़ बन जाता है। पर ऐसी धैर्यवान नारी भी अपने चरित्र पर लांछन लगाने पर हिल उठती है। उसका पराक्रम, उसका धैर्य और उसकी आत्मशक्ति उसका साथ छोड़ देती है। अपने पुत्र के अटपटे प्रश्नों से आशंकाग्रस्त हो उठती है कि "संभव है यह मेरे जीवन का पुण्य मुझे ही पापिनी और कलंकिनी समझता हो तो क्या आश्चर्य ?"[१]

तितली की कर्मठता , कर्त्तव्य परायणता और दुर्लभ आत्मशक्ति के भीतर छिपी नारी सुलभ दुर्बलता, चरित्र पर लांछन लगने पर तिलमिला उठने वाली वेशब्री प्रबल हो जाती है, और वह गंगा की गोद में अपने को समर्पित करने, दुसह दुख से त्राण पाने के लिए निकल पड़ती है, और तभी उसे मिलता है उसका उपास्य जीवन युद्ध का थका सैनिक मधुवन। तितली का चरित्र उसके परम विरोधी सुखदेव चौबे के शब्दों में द्रष्टव्य है—"आपने देखा नहीं मुंशी जी वह लड़की देहाती बालिका तितली जिसकी गृहस्थी हम लोगों ने सत्यानाश कर देने का संकल्प किया था, आज कितने सुख और सुख भी नहीं गौरव से जी रही है।"[२]

आदर्श भारतीय कुलवधू, कुशल और कर्मठ गृहिणी, वत्सला जननी, और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति सजग तितली एक गरिमामय भारतीय नारी के आदर्श की स्थापना करती है। उसकी महत्ता के समक्ष पाश्चात्य नारीत्व की प्रतीक शैला को भी झुकना पड़ता है।

प्रसाद की नारी भीरु नहीं होती। चाहे वह स्कंदगुप्त की देवसेना या विजया हों, या आकाशदीप की चंपा अथवा पुरस्कार की मधूलिका; उन्हें जीवन की विषम परिस्थितियों से होकर गुजरने तथा उनसे होड़ लगाने की चाह होती है। कारण है कि तितली जीवन की गुत्थियों से जूझती हुई चित्रित की गई है। तितली उस वीरांगना की भांति दिखाई देती है जो जीवन संग्राम में हँस-हँस कर जूझ रही हो। वह पुनः गांव में जाकर संतप्त किंतु साहसपूर्ण हृदय से लोकसेवा में लगकर आत्मबल एवं त्याग द्वारा समस्त कठिनाइयों पर विजय पाने में समर्थ होती है। बाबू गुलाबराय के शब्दों में भी—"वह पर्वत सी अटल, सागर सी गंभीर, पृथ्वी सी सहिष्णु है। कभी-कभी उसका चित्र विचलित होता है परंतु वह चेत जाती है।"[३]

---

१. प्रसाद : तितली पृ० २६९।
२. वही, पृ० २५७।
३. गुलाब राय : प्रसाद की कला, पृ० १५२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

राजकुमारी का व्यक्तित्व एक हिन्दू बाल-विधवा का प्रतीक है, जिसकी दमित इच्छाएं संयम का बाँध तोड़ कर कब उमड़ पड़ेंगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। प्रौढ़ वय में उसकी कामना के उन्मेष, विन्दी लगाने की ललक, और इस नए चिकने पथ पर धीरे-धीरे फिसलने को लेखक ने जिस कलात्मक ढंग से मनोविज्ञान का आधार लेकर चित्रित किया उससे सामान्य चरित्र होकर भी राजो उपन्यास का एक सजीव आकर्षण बन जाती है। राजो के मानसिक अंत-र्द्वन्द्व का प्रसाद ने कितना सटीक चित्रण किया है—"संयम के प्रौढ़ भाव की प्राचीर के भीतर जिस चारित्र्य की रक्षा हुई थी, आज वह संधि खोजने लगा था। मानव हृदय की वह दुर्बलता कही जाती है किंतु जिस प्रकार चिर रोगी स्वास्थ्य की संभावना से प्रेरित होकर पलंग के नीचे पैर रखकर अपनी शक्ति की परीक्षा लेता है, ठीक उसी तरह तो राजकुमारी के मन में कुतूहल हुआ था—अपनी शक्ति को जाँचने का। वह किसी अंश तक सफल भी हुई और उसी सफलता ने और भी चाह बढ़ा दी। राजकुमारी परखने लगी थी अपना—स्त्री का अवलम्बन जिसके सबसे बड़े उपकरण हैं यौवन और सौन्दर्य।"[१]

चरित्र-चित्रण के साथ, 'इरावती' के उद्देश्य और जीवन दर्शन के संबंध में विद्वानों का मत है कि उपन्यास की अपूर्णता के कारण ये तीनों तत्व मुखर नहीं हो पाए हैं—"इन तीनों तत्वों के विषय में कथित के आधार पर कथनीय का अनुमान भर लगाया जा सकता है।"[२] वस्तुत: उद्देश्य और जीवन दर्शन का अनु-मान तो अधूरे उपन्यास से भी चल जाता है, पर चरित्र-चित्रण में अनुमान का सहारा सहायता नहीं कर पाता। सभी चित्र अधूरे से ही रह जाते हैं।

इतिहास प्रसिद्ध चरित्रों के संबंध में अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका विकास इतिहासानुमोदित ढंग पर ही हुआ होगा। तात्पर्य यह कि विषयी वृहस्पतिमित्र का पतन, पुष्यमित्र का सत्ता पर अधिकार। अग्निमित्र का उपन्यास में जो कर्मठ, कर्त्तव्य परायण असाधारण धैर्यवान रूप सामने आ पाया है, उसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रसाद उसे स्कंदगुप्त के समकक्ष खड़ा करना चाहते थे। कालिन्दी, ब्रह्मचारी, धनदत्त और मणिमाला के चरित्र अस्पष्ट ही रह जाते हैं। कालिन्दी बड़ी सशक्त पात्र है, वह इरावती से ईर्ष्या होने पर भी उसकी सहायता करती है; विहार से भागने पर उसे अपने मंदिर

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० ९१।

२. 'प्रसाद' प्रसाद विशेषांक—इरावती, शीर्षक निबंध—डॉ० नगेन्द्र का लेख।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में शरण देती है। वृहस्पतिमित्र की कुत्सित लिप्सा से उसे बचाती है। मणि-माला द्वारा अपमान करने पर अपना रोष प्रकट करती है। वह स्पष्टभाषिणी भी है। वृहस्पति मित्र के प्रेम प्रदर्शन पर वह स्पष्ट कहती है कि मुझ पर विश्वास न कीजिए, मैं नंदवंश की राजनन्दिनी हूँ।

इरावती और कालिन्दी का मानसिक द्वन्द्व लेखक की उत्कृष्ट कला का परि-चायक है। उनके हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला धधक रही है। किंतु अज्ञात प्रेम का उन्माद उसे आच्छादित रखता है। कालिन्दी का मानसिक द्वन्द्व द्रष्टव्य है। "हां, मैं सावधान हूं, प्राण हथेली पर लिए मैं किसी भी भविष्य की प्रतीक्षा में हूँ। अग्निमित्र! मैं. . .फिर भी राजनन्दिनी हूँ। यह अभिमान मेरे मन से नहीं गया है। नन्द की निधि मेरी सम्पत्ति है और होगी। किन्तु तुम न जाने कहाँ से बीच में आ पड़े। मैं स्त्री हूँ। आह! तुम अग्निमित्र! अब तक जीवित न रहते। परन्तु मैं अपने हृदय से हारी हूं। मैं राजप्रेयसी! राजनन्दिनी अनु-ग्रह की क्षमता खो नहीं सकी हूँ। अग्नि! लो मैं अपना बहुमूल्य प्रणय तुम्हें दान करती हूँ।"[१]

इरावती का अग्निमित्र से उपन्यास के प्रारंभ में कहा गया निम्न वाक्य उपन्यास में व्यक्त उसके चरित्र के अधिकांश अंशों को स्पष्ट करने में समर्थ है— "मैं जीवन की रागिनी में अर्जित स्वर हूँ, मुझे छेड़कर तुम सुखी न हो सकोगे।" प्रणय क्षेत्र में निराशा से उत्पन्न मानसिक अवसाद एवं प्रेमयुक्त विरक्ति यही तो इरावती का स्वरूप है। वस्तुतः अभी तक इरावती की पृष्ठभूमि ही प्रस्तुत हो सकी थी। इस पूर्ण प्रशस्त और कलामयी पृष्ठभूमि को देखकर यह विश्वास होता है कि लेखक की प्रतिभा निश्चय ही इस पृष्ठभूमि पर एक अनुपम अमूल्य और अतुलनीय चित्र की सृष्टि करता।

प्रसाद का समस्त साहित्य इस बात का प्रमाण है कि इतिहास में वे जितने गहरे डूब सके हैं, अंधकाराच्छन्न वर्तमान को आलोकित करने वाले उतने ही उज्ज्वल देदीप्यमान रत्नों की उन्होंने खोज की है। काव्य नाटक की अपेक्षा उपन्यास में उन्हें इतिहास मंथन का अधिक अवकाश था। इन सबका वे कैसा उपयोग करते, उनका यह अधूरा उपन्यास इस बात का प्रमाण दे जाता है।

संवाद

संवाद के मुख्य रूप से दो काम हैं (१) कथानक को गति देना, (२) चरित्रों की छिपी हुई विशेषताओं एवं भंगिमाओं का उद्घाटन करना। स्वरूप की दृष्टि

---

१. प्रसाद : इरावती, पृ० ५४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से संभाषण जितने छोटे स्वाभाविक, गतिपूर्ण और सुष्ठु हों उतने ही कलापूर्ण माने जायेंगे। 'कंकाल' में यत्र-तत्र लेखक की कवि प्रकृति और चिंतनशीलता के कारण कथोपकथन भाव या विचार से वोझिल हो गए हैं। पर प्रायः प्रसाद ने अपनी इन प्रवृत्तियों को संयमित रखा है।

'कंकाल' में अनावश्यक रूप से विस्तृत संवादों के स्थल कम आए हैं। गोदान के मेहता और मालती के-से लम्बे, विचारात्मक, नीरस संवादों की अवतारणा 'कंकाल' में कहीं नहीं है। मंगल, गोस्वामी और निरंजन के भाषणों को लंबा संवाद नहीं कहा जा सकता। इस दोष से वचने के लिए लेखक ने इन्हें भाषण की संज्ञा दे दी है। तितली के संवाद—'कंकाल' की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक और कलात्मक हैं। कथानक का प्रमुख भाग कथोपकथन के ही माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। आकार की दृष्टि से भी तितली के संवाद बड़े नहीं हैं। अपनी सांकेतिकता से परिस्थिति, कथा सूत्र, और चरित्र पर यथेष्ट प्रकाश डालते हैं। प्रमुख रूप से तितली में दो प्रकार के संवाद प्रयुक्त हुए हैं :

(१) पूर्ण नाटकीय रूप में आए संवाद

(२) पात्रों की मुद्रा, स्थिति और उनके कार्य व्यापारों का निर्देश करने वाले संवाद।

(१) पूर्ण नाटकीय संवाद—पूर्ण नाटकीय संवाद के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। इन्द्रदेव शैला से अपनी माँ से भेंट करने के लिए पूछता है :

"क्या इन्द्रदेव ?
माँ से भेंट करोगी ?
चलूं ?
अच्छा, कल सवेरे !"[1]

प्रसाद ने यहाँ इने-गिने शब्दों में एक तरफ पारिवारिक स्थिति से ऊबे हुए इन्द्रदेव का चित्रण किया है और दूसरी तरफ उत्साह से दीप्त शैला का। इन्द्रदेव के मन का अंतर्द्वन्द्व भी इसमें मुखर है।

(२) पात्रों की मुद्रा, स्थिति और उनके कार्यव्यापारों के निर्देश देने वाले संवाद—इनका प्रसाद की रचनाओं में अभाव नहीं है। रामदीन के निम्न उत्तर में उसका रूप-चित्र मुखर है। उसने अभ्यास के अनुसार आधा हँसकर कहा—
"जी, आ रहे हैं सरकार !

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० २०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बड़ी सरकार के आने की...
बड़ी सरकार ?
हां, बड़ी सरकार ! वह भी आ रही हैं।
कौन है वह ?
बड़ी सरकार—"[१]

इस प्रसंग में एक और चित्र द्रष्टव्य है :

"रामदीन ने कहा—अरे क्या मैं काट लूँगा ? मलिया, ठहर न ! वह रुक गई।
रामदीन ने धीरे से पास आकर पूछा—क्यों रे, तेरी सगाई पक्की हो गई ?
उसने कहा—धत्त !
रामदीन ने कहा—तो आज मैं तेरे चाचा से कहूँ कि...
मलिया ने बीच में ही बात काट कर कहा—देखा, मुझे गाली दोगे तो... हाँ, कहे देती हूँ।"[२]

उपर्युक्त उद्धरण में जहां एक ओर मलिया का लज्जापरक, ढीठ और चरित्रवान स्वरूप अंकित है वहीं दूसरी ओर रामदीन की चपलता, ढीठता व्यंजित है।

प्रसाद ने अपने संवाद और कथानक को तीखा बनाने के लिए अनेक लोकोक्तियों और मुहावरों का भी उपयोग किया है। मधुवन तेजी से बैल लिए जा रहा था। बीच में रामनाथ के मिल जाने और प्रश्नों की बौछार से वह मन ही मन सोचता है—"बुड्ढा न जाने कहां से छींक की तरह उसके मार्ग में बाधा-सा आ पहुँचा।"

'इरावती' के संवाद निर्विवाद रूप से प्रसाद के पिछले उपन्यासों की अपेक्षा अधिक संयत, स्वाभाविक एवं संगठित हैं। इनमें भाषा की क्लिष्टता का अभाव है और इनमें उलझाव भी नहीं है। इरावती के संवादों से चरित्र-चित्रण को यथेष्ट निखार मिलता है तथा घटना प्रवाह को पर्याप्त वेग मिलता है। अग्निमित्र एवं पुष्यमित्र के संवाद का एक उदाहरण इन विशेषताओं का स्पष्ट परिचय दे सकेगा—

"ताम्रपत्र !
हाँ ताम्रपत्र ! जिसे पुजारी ने तुमको दिया है। जानते हो, वह राज-संपत्ति है।
अग्निमित्र को वह मिला है पिता जी, और इस नियम पर कि उसका रहस्य किसी को न बताया जाय। दृढ़ता से अग्निमित्र ने कहा।
हां, तब तो ठीक है।

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० २७। २. वही, पृ० ४८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और सुनिये, मैं इस अत्याचारी मगध-सम्राट का कोई भी कार्य भार अपने कंधों पर नहीं उठाता। आप मुझे नायकत्व से छुट्टी दिला दीजिए। मैं अनुग्रह का भिखारी नहीं।

वह तो मैं स्वयं ही कहने जा रहा था। तुम अविश्वसनीय हो...अच्छा अब तुम मुक्त रहना चाहते हो, या वन्दी-गृह में?

जैसी आपकी आज्ञा होगी।

मैं पिता हूं, इसीलिए तुम मुझ पर इतना अत्याचार कर रहे हो। नहीं तो..

मैं जानता हूँ कि अब तक मैं कहाँ होता, परन्तु जब एक अत्याचारी सम्राट का इतना समर्थन आप करते हैं, तब एक पुत्र के लिए भी कुछ न करेंगे? अग्निमित्र भरा हुआ था।[1]

उपर्युक्त उद्धरण में जहाँ प्रवाह का वेग अत्यन्त तीव्र है, वहीं उससे पुष्यमित्र और अग्निमित्र के चरित्र के आवृत्त पन्ने उलट जाते हैं। पुष्यमित्र एक कर्त्तव्यनिष्ठ राजसेवक के रूप में उपस्थित है, जो राज्य रक्षा के लिए अनेक छल-प्रपंचों में डूबा हुआ है। अग्निमित्र निर्द्वन्द्व, वीर, साहसी युवक के रूप में उपस्थित है जो स्वच्छन्द रहना चाहता है। वह अत्याचारी सम्राट का कोई भी कार्य नहीं करना चाहता है। पिता के धमकी भरे शब्दों को सुनकर भी वह विचलित नहीं होता है और ताम्रपत्र को अपनी निजी संपत्ति बताता है। कर्मठ पुष्यमित्र कर्त्तव्य बुद्धि से अनुशासित पितृ एवं अग्निमित्र का निर्भीक व्यक्ति ही इस छोटे से संवाद का लक्ष्य है। पुष्यमित्र का द्वन्द्व भी इसमें उभर कर सामने आया है।

शैली

तितली की भाषा सामान्य बोलचाल की और व्यावहारिक है। काव्यात्मकता का अभाव है, इसलिए भाव में गंभीरता और बोझिलता नहीं आ पाई है। रूप-चित्र और परिस्थिति अंकन के चित्रों में प्रसाद की कला मुखर है। तितली के निम्न रूप-चित्र में चित्रण की कलात्मकता के साथ-साथ भाषा की प्रवाहमयता और उसके स्वाभाविक माधुर्य का भी आभास मिल जाता है। "उसकी काली रजनी-सी उनींदी आंखें जैसे सदैव कोई गंभीर स्वप्न देखती रहती हैं लम्बा छरहरा अंग, गोरी-पतली उगलियाँ, सहज-उन्नत ललाट, कुछ खिची हुई भौंहें और छोटा-सा पतले-पतले अधरों वाला मुख-साधारण कृषक-बालिका से कुछ अलग अपनी सत्ता बता रहे थे। कानों के ऊपर से ही घूंघट था, जिससे

---

१. प्रसाद : इरावती, पृ० ४५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

लटें निकली पड़ती थीं। उनकी चौड़े किनारे की धोती का चम्पई रंग उसके शरीर में घुला जा रहा था। वह संध्या के निरभ्र गगन में विकसित होने वाली—अपने ही मधुर आलोक से संतुष्ट—एक छोटी-सी तारिका थी।"[१]

वर्णनात्मक अंशों में, गांवों के प्राकृतिक दृश्यों, ग्रामीणों के रहन-सहन को चित्रित करते हुए, कथा को प्रवाह देते हुए विश्लेषण, स्थिति चित्र और संकेतों के द्वारा प्रसंगों में स्वाभाविकता, रमणीयता और आकर्षण की सृष्टि की है। राजो के कार्य कलाप की स्थिति का चित्र इसे अधिक स्पष्ट कर सकेगा—"राजकुमारी अपने बालों में कंघी कर चुकी थी। उसने दर्पण उठाकर अपना मुँह देखा। एक छोटी-सी बिन्दी लगाने के लिए उसका मन ललच उठा। रोली, कुंकुम और सिन्दूर वह नहीं लगा सकती, तब ? उसने नियम और धर्म की रूढ़ि बचाकर काम निकाल लेना चाहा। कत्थे और चूने को मिलाकर उसने बिन्दी लगा ली। फिर उसने दर्पण देखा। वह अपने ऊपर रीझ रही थी. . .।"[२]

प्रसाद ने रूप चित्रण में परिस्थिति अंकन और वाह्य प्रकृति के साथ मनोवैज्ञानिक ढंग से आंतर भावों को संग्रथित कर निरूपित किया है। इनकी अवतारणा से वर्णन में वास्तविकता का बोध होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है: "रजनी के बालों से बिखरे हुए मोती बटोरने के लिए प्राचीन के प्रांगण में उषा आई और इधर यमुना उपवन में फूल चुनने के लिए पहुंची। प्रभात की फीकी चांदनी में बचे हुए एक-दो नक्षत्र अपने को दक्षिण-पवन के झोंकों में विलीन कर देना चाहते थे। कुन्द के फूल, थाले के श्यामल अंचल पर कसीदा बनाने लगे थे। गंगा के मुक्त वक्षस्थल पर से घूमती हुई, मन्दिरों के खुलने की, घण्टों की प्रतिध्वनि, प्रभात की शान्त निस्तब्धता में एक संगीत की झनकार उत्पन्न कर रही थी। अन्धकार और आलोक की सीमा बनी हुई युवती के रूप को अस्त होने वाला पीला चन्द्रमा और लाली फेंकने वाली उषा, अभी स्पष्ट न दिखला सकी थी कि वह अपनी डाली, फूलों से भर चुकी और उस कड़ी सरदी में भी यमुना मालती-कुंज की पत्थर की चौकी पर बैठी हुई, दूर से आते हुए शहनाई के मधुर स्वर में अपनी हृदयतंत्री मिला रही थी।"[३] यहां यमुना की प्रकृति के परिपार्श्व में, विवृत मनःस्थिति का कितना सजीव वर्णन है।

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० ८५।

२. वही, पृ० १५३।

३. प्रसाद : कंकाल, पृ० ९३-९४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घंटी का रूप चित्रण भी कितना स्वाभाविक बन पड़ा है "घंटी के कपोलों में हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे। भोली मतवाली आंखें गोपियों के छायाचित्र उतारती और उभरती हुई वयस संधि से उसकी चंचलता सदैव छेड़छाड़ करती रहती। वह एक क्षण के लिए भी स्थिर न रहती—कभी अंगड़ाई लेती तो कभी अपनी उंगलियां चटकाती। आंखें लज्जा का अभिनय करके जब पलकों की आड़ में छिप जाती तब भी भौंहें चला करती।"[1] इस प्रकार के बिम्बात्मक और मानसिक ऊहापोह-परक परिस्थिति के समावेश ने वर्णन, चित्रण, संकेत और वातावरण निर्माण में अत्यन्त मार्मिकता ला दी है।

लेखक ने 'कंकाल' में स्वाभाविक भाषा का उपयोग किया है। भावों के अनुसार पात्र और परिस्थिति भेद से उसका रूप बदलता गया है। 'कंकाल' में सामान्य रूप से व्यवहृत एक उदाहरण द्रष्टव्य है: "नहीं चाची, अब वह दिन चाहे लौट आये, पर वह हृदय कहाँ से आवेगा। मंगल को दुख पहुंचा कर आघात दे सकूंगी, पर अपने लिए सुख कहाँ से लाऊँगी ? चाची, तुम मेरी दुखों की साक्षी हो, मैंने केवल एक अपराध किया है—वह यही कि प्रेम करते समय साक्षी नहीं इकट्ठा कर लिया था और कुछ मन्त्रों से कुछ लोगों की जीभ पर उसका उल्लेख नहीं करा लिया था।"[2] इस प्रकार की भाषा में अपनापन, सहज प्रवाह और ऐसी ऋजुता है जो कंकाल के यथार्थ चित्रण को यथातथ बनाने में सहायता देती है।

इरावती में वर्णन, विवेचन और रूप चित्रण की अपेक्षा संवादों की योजना अधिक है। इससे स्पष्ट है कि लेखक स्वयं कम कहना चाहता है, पात्रों से ही सारी स्थिति स्पष्ट करवाना चाहता है। वैसे रूपचित्रण भी इसमें हुआ है—अग्निमित्र का रूपचित्रण द्रष्टव्य है: "उसकी आँखें आशा-विहीन संध्या और उल्लास-विहीन उषा की तरह काली और रतनारी थीं। कभी-कभी उनमें दिग्दाह का भ्रम होता, वे जल उठतीं, परन्तु फिर जैसे बुझ जातीं। वह न वेदना थी न प्रसन्नता। उसके घुँघराले बाल जटा न बन पाये। छोटी-छोटी स्वतः बढ़ने वाली दाढ़ी भी कुछ यों ही कालिमा से उसकी सुवर्ण-त्वचा को रेखांकित कर रही थी। शरीर केवल हाड़ से बना प्रतीत होता था, परन्तु उसमें बल का अभाव नहीं था। वह अभी आकर, शिप्रा के शीतल जल से स्नान कर घाट पर बैठा था। उसके मणिबन्ध में, किसी नागरिक के जूड़े की शिप्रा में गिरी हुई माला

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० ७७।

२. वही, पृ० २५५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पड़ी थी, अकारण।"[1] इस उद्धरण में जहाँ अग्निमित्र की शक्ति-सामर्थ्य, रूप का चित्र प्रस्तुत है वहीं उसमें उसकी रसिकता, कोमल भावना का भी परिचय मिल जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद ने अपने उपन्यासों में पात्रानुकूल सरल, स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया, जिसमें प्रवाह के साथ-साथ जीवंतता है। उन्होंने आवश्यकतानुसार मुहावरों, लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया। प्रसाद एक सफल गद्य लेखक के रूप में अपने उपन्यासों में उपस्थित हैं।

●●

---

१. प्रसाद : इरावती।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४. प्रसाद की कहानियाँ

प्रसाद ने हिन्दी कहानी भण्डार की वृद्धि में अपूर्व योगदान दिया। उन्होंने लगभग ६० कहानियाँ लिखीं। जिनमें विषय की विविधता के साथ-साथ कला का चरम उत्कर्ष व्यंजित है। प्रसाद की कहानियों का भाव-जगत प्रेम है। वे कवि थे। उनका कवि-हृदय इन कहानियों से झाँक रहा है। नाटक में ही नहीं अपितु कहानी में भी इन्होंने प्राचीन संस्कृति के स्वर्णिम पृष्ठों को प्रकाशित किया।

प्रसाद पहले लेखक हैं जिन्होंने अपनी कहानी द्वारा हिन्दी कहानी के ढर्रे को पूर्णतया बदला। उन्हें इस कार्य में अपने सहयात्री प्रेमचन्द का भी अपूर्व सहयोग मिला। दोनों के क्षेत्र अलग थे। दोनों ने कहानी कला को नया मोड़ दिया, और उसे नया कलेवर प्रदान किया। इन दोनों की प्रारंभिक रचनाएँ पुरानी कहानी के प्रभाव से अछूती नहीं हैं। पुरानी कहानी का प्रमुख तत्त्व संयोग इनमें विद्यमान है। प्रसाद की कहानी 'ग्राम' का नायक संयोगवशात् ही रास्ता भटक-कर भूतपूर्व कुसुमपुर जागीरदार की विधवा के यहां पहुँच जाता है और उसे यह ज्ञात होता है कि उनकी दीन-हीन दशा का कारण उसका अर्थलोलुप पिता है। किन्तु धीरे-धीरे प्रसाद की कहानी कला निखरती जाती है और अंत में चलकर 'आकाशदीप', 'घीसू', 'बेड़ी', 'मधुआ', 'दासी', 'पुरस्कार', और 'गुण्डा' जैसी विषय और कला की दृष्टि से सशक्त कहानियों की सर्जना करते हैं।

विवेचन की सुविधा के लिए प्रसाद की कहानियों को दो वर्गों में (१) प्रयोग युग और (२) प्रौढ़युग में विभक्त कर लेना अधिक उपयुक्त होगा।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१) प्रयोग कालीन कहानियाँ

वैसे तो प्रसाद की कहानियों में प्रयोग और प्रौढ़ युग के मध्य का वह बिंदु खोज पाना बड़ा कठिन है जहाँ से दोनों अलग खड़ी दिखाई दें। फिर भी १९२६ ई० तक की कहानियों को प्रयोगकालीन कहानी साहित्य में स्थान दिया जा सकता है। इस काल तक की कहानियाँ 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' नामक संग्रहों में संकलित हैं। इन दोनों संग्रहों में संकलित कहानियों की संख्या २६ है। 'छाया' का प्रथम संस्करण सन् १९१२ और द्वितीय संस्करण सन् १९१८ में तथा 'प्रतिध्वनि' संग्रह सन् १९२६ में प्रकाश में आया।

'छाया' के प्रथम संस्करण में 'तानसेन', 'चन्दा', 'ग्राम', 'रसिया बालम', और 'मदन मृणालिनी' नामक पाँच कहानियाँ संग्रहीत थीं। १९१८ में प्रकाशित इसके द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण में ६ कहानियाँ—'जहाँनारा', 'शरणागत', 'अशोक', 'सिकन्दर की शपथ', 'गुलाम' और 'चित्तौर उद्धार' और बढ़ा दी गयी।

'छाया' में संग्रहीत कहानियाँ कला की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी नहीं हैं पर इन दोनों संस्करणों का हिन्दी कहानी साहित्य में ऐतिहासिक महत्व है जिन्हें विस्मृत नहीं किया जा सकता। इनमें कहानी कला के बीज अंकुरित होते दिखाई पड़ते हैं जो आगे चल कर पुष्पित-पल्लवित हुए।

'ग्राम' केवल प्रसाद जी की ही नहीं अपितु हिन्दी की भी पहली कहानी है जिसमें लेखक ने सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश किया और उसकी तत्कालीन एक ज्वलंत समस्या कर्ज के दुष्परिणाम तथा महाजनों के दुर्व्यवहार को चित्रित करने का प्रयास किया गया है। 'ग्राम' वह खाका है जिसमें वे सभी रेखाएँ उभरी हैं जिन पर आगे चलकर प्रसाद जी की कहानी कला का आलीशान महल खड़ा होता है। इसका कथानक बड़ा साधारण-सा है। बाबू मोहनलाल अपनी जमींदारी के निरीक्षण हेतु कुसुमपुर जा रहे हैं। मार्ग अपरिचित है। वर्षा भी प्रारंभ हो जाती है। वे मार्ग भूल जाते हैं। ठौर के लिए, रात बिताने की गरज से वे एक दुखिया स्त्री के घर पहुंचते हैं। संयोग से स्त्री अपनी दुरवस्था की गाथा सुनाती है, जिससे उनको मालूम होता है कि दुखिया का दिवंगत पति कुसुमपुर का जमींदार था और मोहन लाल के पिता ने छल से इलाके पर आधिपत्य जमा लिया।

इतने साधारण से कथानक को लेकर लेखक प्राकृतिक दृश्यावली के परिपार्श्व में पात्रों एवं विविध स्थितियों का ऐसा भाव-पूर्ण और काव्यात्मक चित्रण करता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है कि कथा में सजीवता आ जाती है। कहानी का अंत भी मार्मिक है। प्रसाद का अतीत प्रेम यहां भी प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है। 'ग्राम' स्वरूप और संवेदन की दृष्टि से आजकल की प्रभाववादी कहानियों के निकट खड़ी दिखाई देती है। लेखक ने ग्राम जीवन के विविध खण्ड चित्र उपस्थित कर एक प्रभावशाली वातावरण निर्माण करने की चेष्टा की है। इस प्रभाव को और अधिक तीव्र बनाने के लिए नगर के संकुल जीवन के प्रतीक स्वरूप स्टेशन का भी खण्डचित्र प्रसाद ने दिया है। यद्यपि इस कहानी पर बंगला कहानी के रचना शिल्प का स्पष्ट प्रभाव मिलता हैं पर कहानीकार प्रसाद की मूलभूत विशेषताएँ सजीव वातावरण निर्माण, रसात्मक वर्णन, और रोमानी प्रवृत्ति आदि इस प्रथम रचना में ही प्रत्यक्ष हो जाती है। उन्होंने नई कहानी और पुरानी आख्यायिका के समन्वय की जो नई कला प्रदर्शित की वह आगे विकसित होकर हिन्दी कहानी की अमूल्य निधि सिद्ध हुई।

प्रसाद सौंदर्य और प्रेम के भावुक गायक थे। ये दोनों प्रधान तत्व 'छाया' के प्रथम संस्करण की पाँचों कहानियों में प्रत्यक्ष हुए हैं। 'ग्राम' को छोड़कर बाकी चारों कहानियों का मूलबिन्दु प्रेम है। इन कहानियों में प्रेम का आलोक प्राकृतिक परिवेश के बीच से उद्भासित हुआ है। 'चंदा' कहानी का आरंभ चंदा और हीरा की प्रणय क्रीड़ा से होता है और रामू द्वारा हीरा से तथा चंदा द्वारा रामू से लिए गए भयंकर प्रतिशोध से इसकी समाप्ति होती है। काल जीवन से संबंधित प्रकृति और प्रणय-व्यापारों से समावेष्टित इस भावपूर्ण गाथा में लेखक का स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण अधिक मुखर हो सका है। 'रसिया बालम' का प्रसंग शीरी और फरहाद के प्रेम का यत्किंचित आभास दे जाता है। पर प्रसाद जी ने ऐसे कौशल से कथातत्व को संग्रथित किया है कि कहानी अपनी रमणीयता में नवीनता का भी आभास दे जाती है। इसमें प्रकृति और मानव दोनों को एक सूत्र में ग्रथित कर अत्यन्त कलात्मक पद्धति पर लेखक ने राजकुमारी के प्रेम का उत्कर्ष उपस्थित किया है। प्रिय के उच्छिष्ट विष का पान करके वह प्रेम की वेदी पर अपने को उत्सर्ग कर देती हैं। 'मदन मृणालिनी' में प्रेम का दूसरा स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है। पहली बार अधिक सफलता पूर्वक लेखक इस कहानी में मानव-मन के भीतर उठने वाले अंतर्द्वन्द्व को रूपायित कर सका है। मदन अपनी प्रियतमा के लिए धर्म तक त्यागने का संकल्प करता है पर समाज के भय से वह विरत हो जाता है। वह प्रेम को आत्म-त्याग समझता है और अंत में अपनी प्रणयिनी को सर्वस्व समर्पित कर उसी भिखारी रूप में, जिस रूप में वह मृणालिनी के घर गया था, स्वदेश लौट पड़ता है। प्रसाद ने इस कहानी द्वारा समुद्र पार जाने वाले उन भारतीयों की समस्या का भी संकेत किया है जिन्हें

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

धर्मच्युत मान लिया जाता था और जिनकी संतानों की शादी-ब्याह एक समस्या बन कर रह जाती थी। मदन प्रेम के क्षेत्र से उसी तरह पलायित होता है जिस तरह 'स्कंदगुप्त' का नायक 'स्कंदगुप्त'। प्रसाद के इसी प्रेम का उत्कर्ष रूप उनकी प्रौढ़ कृतियों में उपलब्ध होता है।

इस प्रकार इन प्रारंभिक कहानियों में प्रसाद की सभी प्रमुख विशेषताएँ-सौंदर्यानुभूति की काव्यात्मक व्यंजना, विषय अनुरूप प्राकृतिक वातावरण निर्माण स्वच्छन्दतावादी दृष्टि, अतीत के प्रति अनुराग एवं भाव-प्रवण चिंतनशीलता आदि सब किसी-न-किसी रूप में विद्यमान हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से निश्चय ही प्रसाद यहाँ बहुत अधिक सफल नहीं हैं जितना कि 'आकाशदीप' 'आंधी', और 'इन्द्रजाल' में। 'छाया' के सभी पात्र अर्द्ध विकसित ही नजर आते हैं। किन्तु लेखक का ध्यान पात्रों के बाह्य जगत की अपेक्षा उनके आभ्यंतर जीवन के द्वन्द्वों की ओर ही अधिक है। 'चन्दा' के चंदा में आकाशदीप की चम्पा का ही अंतर्द्वन्द्व है, भले ही उसकी उतनी कलात्मक परिणति यहाँ न हो पाई हो।

१९२६ तक की कहानियाँ शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, प्रतीकात्मक, ऐतिहासिक विभागों के अंतर्गत रखी जा सकती हैं। विषय की दृष्टि से प्रायः सभी प्रेम, सौन्दर्य और करुणा आदि धार्मिक मनोवेगों को लेकर चलती है। प्रसाद की प्रयोगकालीन कहानियों में तीन प्रयोग स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। 'छाया' के प्रथम संस्करण की कहानियों में प्रथम प्रयोग, द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण की कहानियों में द्वितीय प्रयोग तथा 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में तृतीय प्रयोग स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

प्रथम प्रयोग

'छाया' के प्रथम संस्करण की कहानियों में लेखक ने प्रेम के विविध पक्षों को एक झीने इतिवृत्त के सहारे संग्रथित किया है। इनमें लेखक की दृष्टि कहानी के तत्त्वों के विकास की ओर नहीं दिखाई देती। लेखक का मूल लक्ष्य पाठक के मन पर अपने प्रतिपाद्य भावों की एक अमिट छाप छोड़ना है और इस लक्ष्य से प्रेरित होने के कारण जब कथा अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है तो उसमें पूर्ण तनाव की स्थिति आ जाती है और तभी लेखक अचानक कहानी को समाप्त कर देता है। कहानियों का ऐसा प्रभावपूर्ण अंत ही तो उनकी कहानी के स्थायी प्रभावों और सर्वोत्कृष्टता में से एक है। इसके लिए लेखक काव्य-तत्त्वों का आश्रय लेता है। या यों कहें कि उनका कवि हृदय ही प्रधान हो जाता है। 'छाया' के प्रथम संस्करण की कहानी 'चन्दा' द्रष्टव्य है। रामू के विश्वासघात के फलस्वरूप

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हीरा का प्राण जाता है और अनुकूल अवसर पाते ही चंदा भी रामू से हीरा प्राणों का बदला लेती है। यहाँ आकर कहानी अपने चरम बिंदु पर पहुँच जाती है और चन्दा के आत्मघात के साथ उसका भी अंत हो जाता है। "चन्दा ने अपना छुरा निकाल लिया और उसको चाँदनी में रंगा हुआ देखनी लगी, फिर खिलखिला कर हँसी और कहा—दरद दिल काहि सुनाऊँ प्यारे। इतना कहकर अपनी छाती में उसे भोंक लिया और उसी जगह गिर गयी।"[1]

लेखक इन सभी कहानियों का प्रारंभ सम्यक् वातावरण के संदर्भ में करता है। कुछ में प्रकृति का काव्यमय चित्रण है और कुछ में स्थिति विशेष का अंकन। 'चंदा' और 'रसिया बालम' प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की गायक हैं। प्रौढ़ युगीन कहानियों में वर्तमान प्रसाद का गंभीर दार्शनिक विवेचन यहाँ भी स्थूल रूप से बीज स्वरूप विद्यमान है। 'मदन मृणालिनी' में मदन का जीवन-जगत और प्रेम विषयक आत्मचिन्तन इसी प्रकार का उदाहरण है।

द्वितीय प्रयोग

'छाया' के द्वितीय संस्करण में जोड़ी गयी कहानियाँ दूसरे प्रयोग की उदाहरण हैं। 'शरणागत', 'सिकन्दर की शपथ', 'चित्तौर उद्धार', 'अशोक', 'गुलाम', 'जहाँनारा', नामक छः कहानियाँ १९१८ के 'छाया' के दूसरे संस्करण में जोड़ी गयी थी।

'शरणागत', सिपाही विद्रोह से सुरक्षा हेतु योरोपियन दंपति विल्फर्ड और एलिस द्वारा ठाकुर किशोर सिंह के यहाँ ली गयी शरण पर आधृत कहानी है। इस माध्यम से लेखक भारतीय संस्कृति की महत्ता प्रतिपादित करता है। योरोपियन दंपति भारतीय संस्कृति के परिचय में आते हैं और एलिस द्वारा पूर्ण भारतीय वेशभूषा अपना लेने पर कहानी का अंत होता है। इस कहानी का प्रारंभ भी आकस्मिक घटना से होता है। विल्फर्ड ने किशोरी को डूबने से बचाया उसे पहुँचाने आया और बन गया उनका अतिथि। सिपाही विद्रोह की असफलता की भविष्यवाणी में प्रसाद उन कारणों का संकेत करते हैं जिनके परिणामस्वरूप विद्रोह असफल हुआ था।

"विल्फर्ड—अब हमको कुछ डर नहीं है।

किशोर सिंह—आपने क्या सोचा है?

---

१. प्रसाद : छाया संग्रह, 'चन्दा' कहानी, पृ० १९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विल्फर्ड—अब ये सब अपने भाइयों को लूटते हैं, तो शीघ्र ही अपने अत्याचार का फल पावेंगे और इनका किया कुछ न होगा।"[१]

'सिकन्दर की शपथ', मंगलौट दुर्ग की रक्षा के लिए गए उन राजपूत वीरों की स्मृति में लिखी गयी कहानी है जो दुर्ग के सिकन्दर के अधिकार में आ जाने पर उसकी संधि की शर्तों के अनुसार वापस लौटते हैं पर रास्ते में सिकन्दर के विश्वास-घात के कारण मारे जाते हैं। लेखक ने इसमें भारतीय इतिहास के एक विस्मृत पृष्ठ पर प्रकाश डाला है और सिकन्दर की युद्ध योजना, उसके विश्वासघात तथा राजपूतों की वीरता की स्मृति ताजी की है।

'चित्तौर उद्धार' की भी पृष्ठभूमि राजपूत जीवन, उनकी परस्पर फूट, इतिहास प्रसिद्ध वीरता और उनके आन पर आधारित कहानी है। यह कहानी राजपूतानियों के चरित्र पर भी प्रकाश डालती है, जिन्होंने अपने पातिव्रत धर्म तथा देशोद्धार के लिए वड़ा-से-बड़ा त्याग किया है। इस कहानी द्वारा लेखक विधवा विवाह का भी समर्थन करता है। राजकुमार 'हम्मीर' राजकुमारी के मुख से उसके विधवा होने का समाचार सुनकर भी उसे अंगीकार करते हैं।

'अशोक', 'गुलाम' और 'जहाँनारा' की कथाभूमि भी ऐतिहासिक है। एक तरफ 'अशोक' बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किए जा रहे हत्याकाण्ड और अत्याचार का चित्रण है, तो दूसरी तरफ उसकी युवती रानी तिष्यरक्षिता का कामातुर होकर कुनाल के प्रति किए गए षड़यंत्र का भण्डाफोड़ है। कुनाल की दयनीय स्थिति और 'वीतशोक' की वौद्धों द्वारा हत्या के परिणामस्वरूप 'अशोक' चैतन्य होता है और पश्चात्ताप करता है। 'गुलाम' शाह आलम के अत्यन्त विश्वस्त गुलाम कादिर की गाथा है जो अनन्य सुन्दर होते हुए भी शाह आलम की कृपा से पुंसत्वहीन है। उसका युवा मन इस अभाव को सह नहीं पाता और वह शाह आलम से इसका वदला लेने के लिए तत्पर हो जाता है। प्रसाद जी ने इस कहानी द्वारा मुस्लिम शासन के अत्याचारों, विश्वासघातों और विलासिताओं पर प्रकाश डाला है। 'जहाँनारा' के माध्यम से लेखक ने औरंगजेब द्वारा शाहजहाँ और जहाँनारा के प्रति किए गए अत्याचार पर प्रकाश डाला है। हृदयहीन औरंगजेब को भी प्रसाद की लेखनी ने अन्ततः रुला दिया है।

'छाया' के द्वितीय संस्करण में जोड़ी गई कहानियाँ उसके प्रथम संस्करण की कहानियों से दो वातों में भिन्न हैं। एक तरफ लेखक ने वर्तमान से हटकर अतीत को अपनाया है और दूसरी तरफ वह प्रेम व्यंजना के साथ-साथ तत्कालीन

---

१. 'छाया' : 'सिकन्दर की शपथ' कहानी से।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सामाजिक समस्याओं की ओर भी उन्मुख हुआ है। साथ ही इन कहानियों के माध्यम से वह भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को भी प्रकाशित करने का प्रयत्न करता है। 'शरणागत', 'सिकन्दर की शपथ', 'चित्तौर उद्धार' इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।

प्रथम संस्करण की कहानियों में लेखक का प्रकृति प्रेम अत्यधिक उजागर है पर दूसरे संस्करण में जोड़ी गयी कहानियों में मानव, परिस्थितियों और उनके क्रिया-कलापों को ही आधार रूप में अपनाने का आग्रह अपेक्षाकृत अधिक प्रबल है। इन कहानियों में मानव की कमनीय प्रवृत्तियाँ—प्रेम, करुणा, सौन्दर्य आदि का चित्रण वहुत अल्प है पर ध्वंसकारी प्रवृत्तियों—प्रतिशोध, प्रवंचना, हिंसा और क्रूरता को अधिक स्थान मिला है। शरणागत को छोड़ अन्य सभी कहानियों में इनकी प्रचुरता है। चाहे वह 'सिकन्दर की शपथ' हो या 'गुलाम' अथवा 'अशोक' या 'जहाँनारा'।

तृतीय प्रयोग

'प्रतिध्वनि' का प्रकाशन १९२६ में हुआ था। इस समय तक प्रसाद 'कानन कुसुम' 'प्रेमपथिक', 'महाराणा का महत्त्व', 'चित्राधार', आदि काव्य और 'प्रायश्चित्त', 'राज्यश्री,' 'विशाखा' तथा 'अजातशत्रु' जैसे श्रेष्ठ नाटकों की रचना कर चुके थे। अजात शत्रु जैसे विचार गांभीर्य और चिंतन प्रधान नाटक की रचना भी १९२६ में हुई थी। इसी के आसपास 'प्रतिध्वनि' की रचना भी हुई है। अतएव प्रसाद की चिन्तनशीलता और जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण का समावेश इन कहानियों में स्वाभाविक है। 'प्रतिध्वनि' के ही काल में प्रसाद कुछ गद्य गीत भी लिखने प्रारम्भ किए थे, जिनकी धारा आगे चलकर कुछ कारणों से बंद कर देनी पड़ी। तब तक के लिखे गए कुछ गद्य गीत तो झरना में छन्दवद्ध कर दिए और और कुछ नष्ट कर दिये। उन गद्य गीतों का आभास 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में स्पष्ट मिलता है।

'प्रतिध्वनि' की कहानियों की रचना की आधार भूमि मानव की सुकुमार भाव वृत्तियाँ हैं। उन्हें सजीव बनाने के लिए एक झीने कथा का सहारा दे दिया गया है। 'प्रतिध्वनि' की सभी कहानियाँ भाव प्रधान हैं। प्रतीकात्मक कहानियों की परंपरा का विकास भी, हिन्दी में 'प्रतिध्वनि' से ही शुरू हुआ। इन कहानियों में कथावस्तु या तो कहीं-कहीं एक ही स्थिति, घटना या परिदृश्य पर आधृत 'एनेक्डोट' के कथानक जैसी नितान्त सूक्ष्म है और यदि कहीं कुछ स्पष्ट भी है तो उतनी ही जितनी पत्तियों में उनकी शिराएं। कहीं किसी विशेष प्रकार की मनः-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्थिति, वातावरण अथवा रहस्य भावना को ही कहानी का रूप दे दिया है। पाठक के मानस पटल पर कहानियों के प्रतिपाद्य की ही छाया उभर पाती है। कथानक (कुछ कहानियों को छोड़कर) और पात्रों का स्थान अत्यन्त गौण है। 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में अतीत और भाव विवृत्ति के मोह को छोड़कर वर्तमान जीवन में सामाजिक अथवा आर्थिक स्थिति से पीड़ित जन-समुदाय पर भी लेखक ने दृष्टि डाली है।

'गूदड़ी में लाल', 'करुणा की विजय' और 'दुखिया' इसी वर्ग को लक्ष्य करके लिखी गई कहानियाँ हैं। 'गूदड़ी में लाल' उस दीन वृद्धा की कहानी है जो अशक्त होने पर भी बिना परिश्रम के किसी से कुछ लेना पाप समझती है। 'करुणा की विजय' में एक दीन-हीन बालक की गाथा है जिस पर अपनी छोटी बहन के पालन-पोषण का भी भार आ पड़ता है। पर उसकी असमर्थता उसे अपनी बहन की हत्या करने के लिए विवश करती है। 'दुखिया' रामगुलाम की लड़की है जो जमींदार के घोड़ों के लिए घास पहुँचाती है। एक दिन जमींदार कुमार मोहन सिंह की सहायता करने के बदले में उसकी नौकरी भी जाती है और मर्यादा भी। उस पर नजीब खाँ झूठे लाँछन लगाता है।

बाह्य जीवन की घटनाओं, परिस्थितियों और द्वन्द्वों को छोड़कर मानव के हृदयस्थ घात-प्रतिघातों, उसके रहस्यमय क्रिया-कलापों, और जीवन के अनबूझे और अत्यन्त गूढ़ तत्त्वों के विवेचन का ही 'प्रतिध्वनि' के लेखक का लक्ष्य है। कलेवर में ये कहानियाँ बहुत छोटी हैं इसलिए इनमें कथा का अभाव है। लेखक ने इसकी पूर्ति के लिए व्यंजना का सहारा लिया है।

प्रयोग काल : एक सर्वेक्षण

सन् १९२६ तक की प्रसाद की सभी कहानियों को निम्न तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) भाव विवृत्ति परक रूपक प्रधान कहानियाँ।

(ख) इतिवृत्तों के सहारे किसी भाव-विशेष या समस्या विशेष का मार्मिक चित्रण करने वाली कहानियाँ।

(ग) ऐतिहासिक और सामाजिक कहानियाँ।

प्रथम वर्ग की कहानियों में कथातत्त्व का अभाव-सा है। वातावरण निर्माण की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। किसी मानसिक वृत्ति-विशेष, हृदय की किसी अव्यक्त लालसा की कचोट या किसी मानसिक उलझन को लेकर उसे एक अति सामान्य घटना से जोड़ते हुए एक गद्य गीत की रचना कर दी गई है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'प्रतिध्वनि' की 'प्रसाद', 'उस पार का योगी' और 'प्रलय' इसी श्रेणी की कहानियाँ हैं। दूसरे वर्ग की कहानियों में कथा-सूत्र स्पष्ट है, किन्तु उनका रूप सूक्ष्म ही है। 'प्रतिध्वनि' की 'गूदड़ी में लाल', 'अघोरी का मोह', 'पाप की पराजय' आदि कहानियाँ इसके उदाहरण स्वरूप ली जा सकती हैं। तीसरे वर्ग की कहानियों में कथातत्त्व का गठन, प्रवाह और एक-सूत्रता है। प्रतिध्वनि की 'खण्डहर की लिपि' और 'चक्रवर्ती का स्तंभ' तथा छाया की अनेक कहानियाँ इस वर्ग की प्रतिनिधि हैं।

प्रौढ़ युग

१९२६ ई० में 'प्रतिध्वनि' के प्रकाशन के साथ-साथ प्रसाद का प्रयोग युग समाप्त हो जाता है। काव्य के क्षेत्र में अब 'झरना' और 'आँसू' जैसी गंभीर कृतियों के निर्माण में उनकी प्रतिभा लगी। नाटक के क्षेत्र में यहाँ से एक नये युग का आरम्भ हुआ। 'जनमेजय का नागयज्ञ' (१९२६ ई०), 'कामना' (१९२७ ई०) और 'स्कंदगुप्त' (१९२८ ई०) जैसे उत्कृष्ट नाटकों की सृष्टि हुई। कहानी क्षेत्र में प्रसाद की प्रेम और अतीतोन्मुखी प्रवृत्ति की झांकी 'छाया' की कहानियों में मिल चुकी थी। 'छाया' की इतिवृत्तात्मकता 'प्रतिध्वनि' के रेखाचित्र एवं भाव-विधान इन कहानियों में अत्यन्त सूक्ष्म और भावात्मक रूप लेकर प्रकाशित हुआ। इस प्रकार कहानी क्षेत्र में प्रसाद जी अब प्रयोग युग से आगे बढ़े। रूप और वस्तु-विधान में 'आकाश दीप' की कहानियाँ 'छाया' की कहानियों के अधिक निकट होती हुई भी कलात्मक योजना में नितांत नवीन प्रतीत होती हैं। यह सत्य है कि आकाशदीप का निर्माण जिन उपादानों से हुआ है वे 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' में भी विद्यमान थे। पर ये रचनाएँ उनकी प्रारंभिक कृतियाँ हैं। इसलिए प्रयोग-कालीन सीमाएँ उसे चतुर्दिक घेरे हैं।

'आकाशदीप' की कहानियों में लेखक अपने पूर्व प्रयोगों के अनुभव के आधार पर इतिवृत्तात्मकता एवं भाव-शबलता के बीच सामंजस्य की कड़ी स्थापित कर नए रचना विधान को अपनाता है। कुछ इन्हीं सूक्ष्म विभेदताओं के साथ १९३६ तक की कहानियों में यही प्रवृत्ति प्रबल दिखाई देती है। १९२६ से १९२८ तक की कहानियाँ 'आकाशदीप' में संगृहीत हैं।

'आकाशदीप' (१९२९) के पश्चात् १९३१ तक का काल प्रसाद जी के लिए अंत: संघर्ष का काल रहा है। इस काल में जहाँ एक तरफ उनकी चेतना स्वर्णिम अतीत की मनोहारिता पर विचरती रही है, वहीं वर्तमान की दुरावस्था देखकर उन्हें ग्लानि और पीड़ा भी हुई है। 'कंकाल' इसी काल (१९२९) की रचना है

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जिसमें वर्तमान की विभीषिका व्यंजित है। दूसरी तरफ चन्द्रगुप्त मौर्य (१९३१ ई०) उज्ज्वल अतीत की अभ्यर्थना है। इन दोनों प्रवृत्तियों के अंर्तद्वंद्वों का मनोहारी चित्र इस काल की 'आँधी' में संकलित कहानियों में सुरक्षित है। कभी वह वर्तमान की दयनीय स्थिति को देखकर 'घीसू', 'मधुआ', 'नीरा' और 'वेड़ी' का निर्माण करता है, कभी 'दासी' और 'पुरस्कार' द्वारा वह मधुर अतीत की झाँकी प्रस्तुत करता है। इस ऊहापोह में लेखक का मूल प्रेरक भाव सौंदर्योपासक प्रेम उसे कभी भी अपने को विस्मृत नहीं होने देता अपितु बराबर आकर्षित किए रहता है। कलाकार की इस अंतर्द्वन्द्वात्मक स्थिति का स्पष्ट चित्र आँधी में व्यंजित है।

'इंद्रजाल' वस्तु संगठन में अपने पूर्व के दो संग्रहों के समान ही है। 'इन्द्रजाल' का रचनाकाल 'लहर' (१९३५) और 'कामायनी' (१९३७ ई०) के मध्य पड़ता है। और इसी काल में (१९३५ ई०) 'तितली' जैसी सामाजिक समस्या सापेक्ष रचना का भी निर्माण हुआ। अतएव 'इन्द्रजाल' में संगृहीत कहानियों में 'लहर' की चिन्तनशील भावुकता के साथ-साथ सांस्कृतिक महाप्राणता की कोटि की उदात्त भावना एवं 'तितली' जैसी आदर्शोन्मुख चेतना से प्रेरित युग समस्याओं का स्पर्श और उन्हें सुलझाने का प्रयत्न विद्यमान होना स्वाभाविक है। 'इन्द्रजाल' की कहानियों में न तो दार्शनिक रूपक है और न किसी गूढ़ सिद्धांत का खण्डन-मण्डन ही। स्त्री-पुरुष संबंधों के भिन्न-भिन्न पक्षों को लेकर प्रेम की स्थिति का विभिन्न कोणों से पर्यवेक्षण और चित्रण की प्रवृत्ति पिछले दोनों संग्रहों की भांति अत्यन्त प्रवल दृष्टिगत होती है। 'छोटा जादूगर' और 'विराम चिह्न' आर्थिक और सामाजिक दुरावस्था से पीड़ित वर्ग का चित्रण है। 'नूरी' और 'गुण्डा' में प्रेम का पवित्र और पूज्य स्वरूप प्रस्तुत है। 'सालवती' का आधार-भूमि युग की एक महान समस्या—वेश्या समस्या—को इतिहास के परिप्रेक्ष्य में रखकर सुलझाने का प्रयत्न है।

'आकाशदीप', 'आंधी' और 'इन्द्रजाल' के मध्य कोई विभेदक रेखा खींच पाना कठिन है क्योंकि उनके वस्तु-तत्व और रचना कौशल में कोई स्पष्ट भेद नहीं है; जो कुछ है भी वह मात्र उतना ही जितना किसी संग्रह की विभिन्न कहानियों में सरलता पूर्वक इंगित किया जा सकता है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विषय, कला और शैली की दृष्टि से 'आकाशदीप' एक युग तथा 'आंधी' एवं 'इन्द्रजाल'' दूसरे युग की कृति मानने का कुछ विद्वानों का आग्रह संगत प्रतीत नहीं होता।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'आकाशदीप'

१९२६ से १९२९ तक के मध्य रची गयी १९ कहानियाँ 'आकाशदीप' में संगृहीत हैं। प्रायः सभी कहानियों की आधार-भूमि प्रेम है। 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' का प्रभाव इस पर अवश्य है पर उनकी भाँति इसमें प्रेम के किसी अंग विशेष को न अपना कर लेखक ने उन्हें व्यापक परिदृश्य में स्वीकार किया है। लेखक ने इन कहानियों में प्रेम के विविध खण्ड-चित्रों के साथ, मानव के अंतस् में प्रसुप्त और जीवन लहरों से सहसा जागकर प्रबुद्ध हो जाने वाले कितने ही गूढ रहस्यों, लालसाओं और राग-विरागों का सफल अंकन किया है। शैली की दृष्टि से इसकी कुछ कहानियाँ 'छाया' के निकट हैं और कुछ 'प्रतिध्वनि' के। इनमें रेखाचित्रों तथा गद्यगीतों की सांकेतिकता और प्रगीतात्मकता का अंश विशेष है।

'आकाशदीप' में प्रसाद की कहानी कला का एक और नवीन पक्ष प्रकाशित हुआ है। नाटकीयता का तत्त्व प्रथम बार अपने चरम विकसित रूप में इन कहानियों में प्रकाशित हुआ है। यह तत्त्व इस संग्रह की सभी कहानियों में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। कुछ कहानियों में इसी के सहारे अभिव्यंजना कराई गई है और कुछ में व्यंजना को तीव्र बनाने के लिए अत्यन्त सूक्ष्म रूप में ग्रहीत है तथा कुछ में गीतात्मकता के साथ मिल गया है। समस्या को तनाव देने, द्वन्द्व को उभारने और कथा को आकस्मिक रूप से गति देने के लिए इस तत्त्व का अधिक उपयोग हुआ है। 'आकाशदीप' का प्रारंभ 'बनजारा' का अंत और 'रमला' तथा 'बिसाती' का मध्य इसका उदाहरण है। कथोपकथन के अतिरिक्त इस तत्त्व का उपयोग कहानी की रंगमंचीय साज-सज्जा में भी किया गया है। 'स्वर्ग के खण्डहर में' के कथानक की पृष्ठभूमि का प्राण् नाटकीयता ही है।

'आकाशदीप' में संगृहीत १९ कहानियों का क्रम इस प्रकार है—'आकाशदीप', 'ममता', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'सुनहला साँप', 'हिमालय का पथिक' 'भिखारिन', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'देवदासी', 'समुद्र संतरण', 'वैरागी', 'बनजारा', 'चूड़ीवाली', 'अपराधी', 'प्रणय चिह्न', 'रूप की छाया', 'ज्योतिष्मती', 'रमला' और 'बिसाती'।

वर्गीकरण

कथावस्तु के स्वरूप की दृष्टि से इन कहानियों को प्रमुख रूप से—(१) भाव प्रधान, (२) चरित्र प्रधान और (३) वातावरण प्रधान वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भाव-प्रधान

किसी भाव की उठी हुई तरंग को ही कथावस्तु में बाँधकर कहानी का रूप जब दे दिया जाता है तो ऐसी कहानियाँ भाव प्रधान कहानियों की श्रेणी में रखी जा सकती हैं—'सुनहला साँप', 'हिमालय का पथिक', 'भिखारिन', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'समुद्र संतरण', 'वैरागी', 'बनजारा', 'प्रणय चिह्न', 'रूप की छाया' और 'बिसाती' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं।

चरित्र-प्रधान.

चरित्र विशेष को विविध परिस्थितियों में रखकर उनका विभिन्न कोणों से परीक्षण और उसके समुज्ज्वल पक्ष को प्रकाशित करने का लक्ष्य सामने रखकर जब लेखक किसी कहानी की सृष्टि करता है तो उसे चरित्र-प्रधान कहानियाँ कहते हैं। अपने चरित्र को अनुकरणीय बनाने के लिए लेखक हर साज-सामान के साथ उपस्थित होता है। प्रसाद की 'आकाशदीप', 'ममता', 'देवदासी', और 'चूड़ीवाली' इसी प्रकार की कहानी हैं। 'आकाशदीप' की 'चंपा' हृदय से अगाध प्रेम रखते हुए भी बुद्धगुप्त को सिर्फ इसलिए स्वीकार नहीं कर पाती कि वह उसके पिता का हंता है। 'ममता' की ममता अपने ब्राह्मण धर्म की रक्षा के लिए पिता का वध करने वाले विधर्मी को आश्रय देती है। 'देवदासी' की पद्मा अपने क्रूर प्रिय को विस्मृत नहीं कर पाती और उसके हत्यारे 'अशोक' को क्षमा नहीं कर पाती। 'चूड़ीवाली' की चूड़ीवाली जिस सरकार को सौंदर्य से अपने आधिपत्य में नहीं कर पाती वही सेवा कार्य द्वारा अपना बनने के लिए उन्हें विवश करती है।

वातावरण प्रधान

देशकाल और परिस्थिति का जो स्थूल चित्रण किया जाता है उसे पृष्ठभूमि कहते हैं किन्तु इनके सामूहिक प्रभाव से जिस मानसिक परिवेश का निर्माण होता है उसे वातावरण कहते हैं। किसी परिस्थिति विशेष में पड़े हुए मानव चरित्र या चरित्रों को लेखक उनके वातावरण के साथ इस ढंग से चित्रित करता है कि कहानी में आद्यन्त वह वातावरण वायुमण्डल के रूप में छाया रहे और उसके प्रभाव समूह के ऊपर भी छाया रूप में पाठक के मस्तिष्क पर देर तक लहराता रहे, ऐसी कहानी को वातावरण प्रधान कहानी कहा जाता है। 'स्वर्ग के खण्डहर में' प्रसाद जी की सर्वोत्कृष्ट वातावरण प्रधान कहानी है। इतिहास के मोड़ पर पहुँच कर लेखक की कल्पना ने शेख के जिस स्वर्ग का चित्रण किया, अपनी मुग्ध मादकता और मूर्च्छना में वस्तुतः वह दुःख भरी धरती भी उसके तापों से रक्षित स्वर्ग ही प्रतीत

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

होता है। वहाँ पहुँच कर गुल अपना कर्त्तव्य और देवपाल अपनी ममता भूल जाता है। वह सबके लिए केवल विलास का आमंत्रण देता है। लेखक ने विविध प्रसंगों द्वारा एक ऐसे असाधारण वातावरण का निर्माण किया है जिसे पढ़ते समय पाठक के मानस पटल पर उसी के अनरूप परिवेश की सृष्टि हो जाती है। सभी पात्र उसी विशिष्ट प्रकार के परिवेश मण्डल में दिखाई देते हैं। आकाशदीप में भी वातावरण का सुन्दर आयोजन है।

वस्तुतः आधुनिक कहानियों में वातावरण नाटक के रंगमंच का कार्य करता है। इसलिए इसकी योजना अत्यावश्यक मानी जाती है। यह कहानी के प्रति पाठक के मन में अधिक विश्वसनीयता उत्पन्न करता है। वातावरण के संयोजन में प्रसाद अत्यन्त कुशल कलाकार हैं। उनकी अनेक कहानियों में इसका प्रभावशाली स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है।

कुछ विद्वानों ने आकार की दृष्टि से भी प्रसाद की कहानियों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। पर इस प्रकार का वर्गीकरण अत्यन्त अवैज्ञानिक ही कहा जाएगा। प्रसाद की कहानियों की मूलवृत्ति इतनी अंतर्मुखी है कि उनके बाह्य आकार और उसकी पृष्ठों की नाप-जोख करके वर्गीकरण करना निश्चय ही उनके साथ न्याय नहीं कहा जा सकता। किसी मानवीय भाव-वृत्ति के आधार पर रची गयी छोटी कहानियाँ पाठक के संवेद्य जगत को स्पर्श कर नाटकीय ढंग से समाप्त हो जाती हैं परन्तु इनमें से अनेक कहानियाँ ऐसी हैं जो व्यंजना में बड़ी आकार वाली कहानियों से जरा भी कम नहीं हैं। इसके विपरीत उनकी प्रभाव व्यंजकता और भी तीव्र है। 'बनजारा' और 'बिसाती' को इसके उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। 'बनजारा' आकार में छोटी और 'बिसाती' बृहदाकार कहानी है। जहाँ बनजारा में मोनी के विवश प्रेम की आकुलता अत्यन्त संयत ढंग से इने-गिने शब्दों और वाक्यों में ही दिखायी गयी है वहीं 'बिसाती' के शीरी का कातर प्रेम अत्यन्त प्रस्फुटित रूप में दर्शाया गया है। बनजारा का एक चित्र द्रष्टव्य है—

"तो मैं लौट जाऊं?"

हाँ लौट जाओ, जब तक ओस की बूंदों से ठंडी धूल तुम्हारे पैरों में लगे, उतने समय में अपना पथ समाप्त कर लो।

मैं लादना छोड़ दूंगा मोनी।

ओह, यह क्यों? मैं उस पहाड़ी पर निस्तब्ध प्रभाव में घंटियों के मधुर स्वर की आशा में अनमनी बैठी रहती हूँ। वह पहुचने का, बोझ उतारने के व्याकुल

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विश्राम का अनुभव करके सुखी रहती हूँ; मैं नहीं चाहती कि किसी को लादने के लिए मैं बोझ इकट्ठा करूँ नन्दू?"[१]

इस लघु आकार की कहानी की संवेदना मध्यम या वृहदाकार कहानी की संवेदना से कम तीव्र नहीं है। यह दूसरी बात है कि छोटी कहानियों में स्थानाभाव और क्षिप्रता के कारण चित्रण रेखाचित्र शैली की पद्धति पर ही संभव हो सका है। बड़ी कहानियों में पूर्व-पीठिका के रूप में जीवन और प्रकृति का तादात्म्य दिखाने का प्रयत्न है। और यहीं से कहानी का प्रतिपाद्य ध्वनित होने लगता है। बात को जोरदार बनाने के लिए 'बिसाती' का उदाहरण दे देना आवश्यक है:

"दाड़िम के लाल फूलों की रंगीली छाया संध्या की अरुण किरणों से चमकीली हो रही थी। शीरी उसी के नीचे शिलाखण्ड पर बैठी हुई सामने गुलाबों की झुरमुट देख रही थी, जिसमें बहुत से बुलबुल चहक रहे थे। वे समीरण के साथ छूल-छुलैया खेलते हुए आकाश को अपने कलरव से गुंजरित कर रहे थे।"

शीरी ने सहसा अपना अवगुंठन उलट दिया। प्रकृति प्रसन्न हो हँस पड़ी। ....गुलाबों के दल में शीरी का मुख राजा के समान सुशोभित था। मकरन्द मुँह में भरे दो नील भ्रमर उस गुलाब से उड़ने में असमर्थ थे, भौरों के पर निस्पन्द थे। कटीली झाड़ियों की कुछ परवाह न करते हुए बुलबुलों का उनमें घुसना और उड़ भागना शीरी तन्मय होकर देख रही थी।"[२]

बुलबुलों की क्रीड़ा, काँटों की परवाह न करके उनका गुलाब की झाड़ियों में घुसना दौड़ना आदि देखने वाली आज की शीरी का कल अपने प्रेमी युवक बुलबुल की प्रतीक्षा करना; बाधाओं और कष्टों की परवाह किए बिना उसका अचानक आ जाना और सब कुछ भेंट के रूप में चुप-चाप छोड़कर चले जाने की पृष्ठभूमि में इस संगीतमय वातावरण की सर्जना लेखक ने की है। प्रसाद को जहाँ भी अवसर प्राप्त हुआ है उन्होंने बड़े ही मोहक और जीवंत चित्र प्रस्तुत किए हैं। वस्तुतः काव्यमय रूप-चित्रण और लाक्षणिक कथोपकथन प्रसाद की अपनी विशेषताएँ हैं। पर प्रसाद का यह पक्ष अवकाश के अभाव के कारण छोटी कहानियों में कम मुखर है। 'चूड़ीवाली' कहानी में 'चूड़ीवाली' का सजीव और काव्यात्मक चित्र द्रष्टव्य है:

"वह २५ वर्ष की एक गोरी छरहरी स्त्री थी। उसकी कलाई सचमुच चूड़ी पहनाने के लिए ढली थी। पान से लाल-पीले पतले-पतले ओठ दो तीन वक्रताओं

---

१. प्रसाद: आकाशदीप, बनजारा कहानी पृ० १२४।

२. प्रसाद: आकाशदीप, पृ० १८२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में अपना रहस्य छिपाए हुए थे। उन्हें देखने का मन करता, देखने पर उन सलोने अधरों से कुछ बोलवाने का जी चाहता है। बोलने पर हँसाने की इच्छा होती है और उस हंसी में शैशव का अल्हड़पन, यौवन की तरावट और प्रौढ़ा की-सी गंभीरता बिजली के समान लड़ जाती है।"[1]

प्रसाद को जितना अधिक अवसर और अवकाश मिला है उतना ही उनका कवि हृदय प्रस्फुटित हुआ है। छोटी कहानियाँ स्थानाभाव के कारण उनकी चिन्तनशीलता और अंतर्द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए भी थोड़ा अनुपयुक्त प्रतीत होती हैं। पर उन्होंने अपनी कहानी को विषय के अनुरूप ही प्रसार, फैलाव दिया है, इसलिए उनमें शिथिलता लेशमात्र भी नजर नहीं आती। यह गठन और कसाव ही प्रसाद की कहानियों की अपनी विशेषता है।

'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खण्डहर' में तथा 'देवदासी' तीनों ही कहानियों में प्रकृति और परिस्थिति का विस्तृत धरातल पर रूपांकन, काव्यमयी भाव-विवृत्ति, बिम्बात्मक रूप-चित्र एवं चित्रमयी भाषा के दर्शन होते हैं। तीनों ही में अंतर्द्वन्द्व तथा भावों और मनोवेगों के घात-प्रतिघात का बहुत विस्तृत मनोवैज्ञानिक चित्रांकन हुआ है।

विषयवस्तु की दृष्टि से देखने पर 'आकाशदीप', 'ममता', 'स्वर्ग के खण्डहर में', ऐतिहासिक या अतीतोन्मुख काल्पनिक कहानियाँ हैं। 'भिखारिन' कहानी में आर्थिक व्यवस्था से पीड़ित समाज के प्रति सहानुभूति का भाव मुखरित है। 'ममता', 'प्रतिध्वनि' और 'देवदासी' में सामाजिक रूढ़ियों पर कुठाराघात है और उसे छिन्न-भिन्न कर देने का लेखक का साहस स्तुत्य है। 'आकाशदीप' 'प्रतिध्वनि', 'देवदासी', 'समुद्र संतरण', 'वैरागी', 'बनजारा', 'अपराधी', 'रूप की छाया', नामक कहानियों में अंतस् के अनबूझे भावों और उनके परस्पर द्वन्द्वों को मनोवैज्ञानिक ढंग से उद्घाटित करने का प्रयत्न है। नारी-पुरुष के संबंध का दार्शनिक धरातल पर प्रतीकात्मक ढंग से विवेचन का लक्ष्य 'समुद्र संतरण' और 'ज्योतिष्मती' में स्पष्ट है। 'देवदासी', और 'स्वर्ग के खण्डहर में' लेखक के मानवतावादी दृष्टिकोण की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

'आकाशदीप' की अनेक कहानियों में लेखक का झुकाव बौद्ध-दर्शन की करुणा की ओर दिखायी पड़ता है। "वस्तुतः बौद्ध दर्शन से प्रसाद जी ने दो महान सत्य ढूंढ़ निकाले—नारी शक्ति की महानता और उनका सम्मान तथा मानव की

---

१. प्रसाद : आकाशदीप, पृ० १२७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

करुणा और मानव के प्रति क्षमा, दया और प्यार।"[१] 'आकाशदीप' की समस्त कहानियों का मूल लक्ष्य यही है। 'आकाशदीप', 'चूड़ीवाली', 'देवदासी', 'स्वर्ग के खण्डहर में' आदि कहानियों में करुणा से आप्लावित नारी का गरिमामय त्यागपूर्ण स्नेह, शील, क्षमामय और ममता-पूर्ण रूप ही चित्रित हुआ है। 'ममता', 'बनजारा' और 'बिसाती' में जीवन की करुणा का मूल-स्रोत प्रवाहित होता स्पष्ट दिखायी देता है। 'अपराधी' और 'वैरागी' में सात्विक भाव से मानव द्वारा मानव के प्रति क्षमा एवं त्याग के भाव का सुन्दर अंकन है।

'आकाशदीप' की कहानियों में जीवन के कार्य-व्यापारों के प्रति लेखक की यथार्थ दृष्टि का अभाव अवश्य दिखायी पड़ता है पर इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि प्रसाद ने मानव मन की मूल प्रवृत्तियों को जाना पहचाना है, उन्हें अनुभव किया है तथा उनके कलात्मक चित्रण में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। 'आकाशदीप' की कहानियाँ, कहानी कला के अनेक रचना विधानों का उल्लंघन करके भी कहानी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

आँधी

प्रसाद की कहानी कला का सर्वोच्च विकास उनके दो अंतिम संग्रहों 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' में मिलता है। १९२९ से १९३३ ई० के बीच लिखी गई ११ कहानियाँ आंधी में तथा १९३३ से १९३६ के मध्य लिखी गई कहानियाँ 'इन्द्रजाल' में संकलित हैं। इन कहानियों में प्रसाद जी ने जीवन की प्रत्येक भंगिमाओं को रूपायित किया है।

'छाया', 'प्रतिध्वनि' और 'आकाशदीप' का तरुण भावुक कल्पनाशील कवि-हृदय 'आँधी' में विलुप्त सा हो गया है। यहाँ पहुंचकर प्रसाद कल्पना लोक में विचरण करने वाले केवल भावुक कवि नहीं रह जाते हैं प्रत्युत यथार्थ धरातल पर पहली बार प्रसाद ने मानव के दुःख दर्द को उसी की भाव-भूमि पर समझा है और उसका विश्वसनीय चित्र खींचा है। वैसे तो प्रसाद के सभी विशिष्ट पात्र आदर्श के छोर को छूते प्रतीत होते हैं, पर आदर्शोन्मुखता एवं स्वच्छन्दतावादी अभिरुचि के अतिरेक में आकर लेखक ने आंधी के पात्रों को धरती से परे अपरिचित प्राणियों का रूप ग्रहण नहीं करने दिया है।

---

१. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० २१४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दुःख-सुख से भरे दीर्घ जीवन के नर-नारी संबंधों के एक महत्वपूर्ण अंश को लेकर उसके माध्यम से वाह्य जगत और अंतर्मन में चलने वाले द्वन्द्वों को चित्रित करने का प्रयत्न सर्वत्र समान है। पर 'आँधी' की कहानियों में कवि की अपेक्षा प्रसाद का सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक आलोचक स्वरूप अधिक सशक्त है। इन कहानियों में 'पुरस्कार' के अतिरिक्त कहीं भी वह वर्तमान समाज और उसकी समस्याओं को भुला नहीं पाया है। 'आँधी', 'मधुआ', 'घीसू', 'दासी', 'बेड़ी', 'व्रत भंग' 'ग्रामगीत', 'विजया', 'अमिट स्मृति' और 'नारी' सभी में वह समान-रूप से वर्तमान के प्रति सजग है। 'आँधी' प्रेम पर आधृत कहानी है, कला की दृष्टि से अधिक संगत न होने पर भी लेखक ने सथिया मुसहिन और उसके पुत्र कलुआ के रूप में वर्तमान जीवन की दीनता और विवशता को रूपायित करने का बहाना खोज ही निकाला है। ऐतिहासिक कथानक पर आधृत होने पर भी 'व्रतभंग', और 'दासी' में क्रमशः समाज-सेवा और राष्ट्र-प्रेम का भाव अभिव्यक्त है। 'पुरस्कार' राष्ट्रप्रेम के लिए व्यक्तिगत स्वार्थों को तिलांजलि दे देने का आह्वान करता है। 'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', 'विजया', 'अमिट स्मृति' और 'नीरा' तो स्पष्ट रूप से वर्तमान की विवशता , विडंबना की करुण गाथा हैं। प्रायः सभी कहानियों के मूल में सामाजिक जीवन की किसी-न-किसी समस्या की आलोचना है और व्यक्त या अव्यक्त रूप से उसके प्रति आक्रोश, व्यंग्य एवं सुधार का भाव व्यक्त हुआ है।

'आँधी' नारी के प्रेम, आत्मत्याग और बलिदान की कहानी है। इसकी कलात्मकता और दार्शनिक पृष्ठभूमि अत्यन्त महत्वपूर्ण है जो कहानी को विशेष रूप से आकर्षक बना देती है। 'मधुआ' एक शराबी की गाथा है जिसका जीवन बालक 'मधुआ' के आ जाने से पूरी तरह बदल जाता है। उसे पुनः वर्तमान और भविष्य की चिंता सताती है, वह अपने लिए नहीं उस माँ-बाप विहीन बालक के लिए कर्मक्षेत्र में पुनः उतरता है। मधुआ के माध्यम से लेखक ने निरीह बालकों के प्रति राजघराने द्वारा किए जा रहे अमानवीय अत्याचारों की एक झाँकी प्रस्तुत की है। विधवा के प्रति होने वाले अमानवीय अत्याचार से 'घीसू' का घीसू अपने को अलग नहीं रख पाता और अंततः अपना सब कुछ खो देता है।

'बेड़ी' उस वर्ग की करुण कहानी कहती है जहाँ मानव अपनी विवशताओं के कारण मानवता खो बैठता है। पिता अपने पुत्र के संग पुत्र जैसा व्यवहार नहीं कर पाता। भिखमंगे सूरदास ने अपने पुत्र को इसलिए बेड़ी पहना रखी है कि वह पुनः भागकर दूसरी जगह न जा सके और उसके व्यवसाय भिक्षावृत्ति-

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में कोई बाधा न आए। पर परमात्मा की दृष्टि कहीं और होती है। सूरदास को क्या पता था कि बेड़ी ही उसके पुत्र की मृत्यु का कारण बन जाएगी।

'विजया' मद में डूबे उस युवक की कथा है जो अपनी संपन्नावस्था में पैसे के बल पर अनेक अनाचार करता है। अंत में उसके पास सिर्फ एक रुपए बच रहते हैं। संपन्नावस्था के उसके सभी मित्र उसे छोड़कर अलग हट जाते हैं। अंतिम समय उसकी भेंट 'सुन्दरी' से होती है। बच्चे द्वारा कुरते की माँग करने पर सुन्दरी उसे डाटती है और अपने अतीत को कोसती है। कमल ने अपने एक रुपए का उपयोग इससे अच्छा और नहीं समझा। वह उसे देने के लिए आगे बढ़ता है। अंत में दोनों एक संपन्न गृहस्थ का जीवन बिताने के सपने लेकर जीवन-क्षेत्र में एक साथ चल पड़ते हैं। इस कहानी में भी प्रसाद ने समाज की विडंबनाओं की तरफ 'कंकाल' की ही भाँति संकेत किया है। कमल की संपन्न अवस्था में उसके मित्रों का चित्र देखिए—'कमल का सब रुपया उड़ चुका था—सब संपत्ति बिक चुकी थी। मित्रों ने खूब दलाली की, न्याय जहाँ रक्खा वहीं धोखा हुआ। जो उसके साथ मौज-मंगल में दिन बिताते थे, रातों को आनन्द लेते थे, वे ही उसकी जेब टटोलते थे। उन्होंने कहीं पर कुछ भी बाकी न छोड़ा।"[१]

सुन्दरी के मन में समाज के प्रति विद्रोह है; समाज द्वारा की जाने वाली पाप की व्याख्या पर उसका व्यंग्य द्रष्टव्य है—"...समाज से डरो मत। अत्याचारी समाज पाप कहकर कानों पर हाथ रखकर चिल्लाता है, वह पाप का शब्द दूसरों को सुनाई पड़ता है, पर वह स्वयं नहीं सुनता। आओ चलो हम उसे दिखा दें, कि वह भ्रांत है।"[२] मानव की सम्पन्नावस्था पाप को प्रोत्साहन देती है और अभाव की स्थिति पुण्य को; प्रसाद की यह मान्यता ही इन पंक्तियों में अभिव्यक्त हुई है : "संपन्न अवस्था की विलास-वासना, अभाव के थपेड़े से पुण्य में परिणत हो गई।"[३]

मानव हृदय में मानव के प्रति संवेदना का कुछ अंश अभी भी शेष है इसका उदाहरण 'अमिट स्मृति' है। मोहनदास अपने मित्र गिरधरदास के साथ इलाहाबाद जाते हुए एक बनिए की दूकान पर ढंढई के लिए रुकते हैं। वहाँ उनकी भेंट बनिए की १४ वर्षीय कन्या से होती है जिसे होली ने और मदमत्त बना दिया है। दूसरे दिन लौटने पर उन्हें बनिया की हत्या और उसकी लड़की के गायब कर दिए

---

१. प्रसाद : आँधी, पृ० ११५।
२. वही, पृ० ११७।
३. वही, पृ० ११७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जाने की सूचना मिलती है। कई वर्षों पश्चात पुनः मोहनदास उधर से यात्रा करते हैं और वहाँ पाते हैं एक विकलांग, भीख माँगती दीन-हीन स्त्री। मोहनदास के हृदय को इस घटना से बड़ा आघात पहुंचता है और तभी से उन्होंने होली मनाना बन्द कर दिया।

'नीरा' मॉरिशस से आए एक कुली की करुण कहानी है। जो भीख माँग कर अपना जीवन बिताता है। समाज यदि उसकी सहायता करना चाहता है तो केवल उसकी किशोर कन्या नीरा के बदले ही। उसे कदम-कदम पर उपेक्षा और दुत्कार का सामना करना पड़ता है ; जिस भारत के लिए उसने सुना था कि यहाँ दुःख का नामोनिशान नहीं, वहीं उसे पग-पग पर अभावों और यातनाओं का सामना करना पड़ता है। देवनिवास के रूप में उसे पहला व्यक्ति मिलता है जो उससे माफी माँगता है। इस पर वह आश्चर्यचकित होकर बोल उठता है— "क्षमा मैं करूँ? अरे आप क्या कह रहे हैं। दो-चार हंटर आपने नहीं लगाए। घर भूल गए, हंटर नहीं ले आए। अच्छा महोदय। आपको कष्ट हुआ न, क्या करूं, बिना भीख माँगे इस सर्दी में पेट गालियाँ देने लगता है।"[1] बुड्ढे के इन उद्‌गारों में एक तरफ तो एक खास वर्ग के प्रति आक्रोश है और दूसरी तरफ अपनी दीन अवस्था का संकेत। समाज पर कुलीनता के आवरण को वह बूढ़ा अनावृत्त करते हुए कहता है कि आज यदि कोई दूसरे की सहायता के लिए आगे हाथ बढ़ाता है तो वह निश्चय ही किसी लोभ के वशीभूत होकर ही। उसको भी किसी संपन्न व्यक्ति ने सुख से रखना चाहा था, पर क्यों? सिर्फ 'नीरा' के यौवन के लोभ में। "मैं अविश्वासी हो गया हूँ, न। क्यों; जानते हो? जब कुलियों के लिए इसी सीली गन्दी और दुर्गन्धमयी भूमि में एक सहानुभूति उत्पन्न हुई थी, तब मुझे यह कटु अनुभव हुआ था, कि वह सहानुभूति भी चिरायंध से खाली न थी। मुझे एक सहायक मिले थे और मैं यहाँ से थोड़ी दूर पर उनके घर रहने लगा था।...और उन्होंने मेरा आतिथ्य साधारणतः अच्छा ही किया। एक ऐसी ही काली रात थी। बिजली बादलों में चमक रही थी और मैं पेट भर कर उस ठण्डी रात में सुख की झपकी लेने लगा था।...नीरा चिल्ला रही थी। मैं उठकर देखता हूँ, तो मेरे वह परम सहायक महाशय इसी नीरा को दोनों हाथ से पकड़ कर घसीट रहे थे और यह बेचारी छूटने का व्यर्थ प्रयत्न कर रही थी।"[2]

---

१. प्रसाद : आँधी, पृ० १३०।
२. वही, पृ० १३५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अंत में उसे यह अनुभव होता है कि परमात्मा में उसका अविश्वास उसकी कटुता का परिणाम था। उसने आज तक स्वस्थ मन से कभी भी ईश्वर का स्मरण नहीं किया था, इसलिए ईश्वर ने उसकी सहायता नहीं की। साथ ही इस दयनीय स्थिति के लिए उसके पूर्व कर्म भी दोषी हैं। 'नीरा' वर्तमान भारत को अपने लघु कलेवर में बड़े अच्छे स्वरूप में लपेटे है। एक तरफ उसमें कुलियों, भिखारियों और निम्न श्रेणी के मनुष्यों की दशा और दूसरी तरफ उसका कारण है। जहाँ सपन्न समाज का अनावृत्त स्वरूप प्रसाद ने उपस्थित किया है वहीं वे युवकों और दीनों में ईश्वर के प्रति व्याप्त विद्रोह के भाव का कारण भी खोज निकालते हैं।

'दासी' अतीत की पृष्ठभूमि पर वर्तमान का स्मरण है। बलराज हिंदू युवक है जो अपनी प्रियतमा को प्राप्त करने के लिए गजनी के सुल्तान के यहाँ नौकरी करता है। जब वह लौटता है, तब तक काफी देर हो चुकी रहती है और विवश इरावती का सतीत्व ही नहीं नष्ट हो जाता अपितु वह अनेक कठोर शर्तों पर एक सेठ की दासता में आती है। फिरोजा अपने प्रेमी अहमद के पास पहुँचती है पर उसकी दृष्टि इरावती पर रहती है। अंततः दोनों निराश्रित होकर बाहर निकल पड़ती हैं। यहीं बलराज अहमद से युद्ध करने के लिए पहुँचता है और बलराज तथा फिरोजा के मुक्तिदाता राजा तिलक भी अहमद की सहायता के लिए आ पहुँचते हैं। जीत तो गजनी के सुल्तान की होती है पर अहमद की इहलीला समाप्ति के मूल्य पर। बलराज और इरावती प्रणय-सूत्र में बंधते हैं, फिरोजा के लिए छूटता है अहमद की समाधि स्थल का भार। यह कहानी अपने में एक लम्बी गाथा और बड़े काल को समेटे है। इसकी घटनाएँ भी देश और विदेश दोनों स्थलों पर घटती हैं। काल-स्थान की एकता का अभाव कहानी में विश्रृंखलता को अवकाश नहीं देता। यह प्रसाद जैसे कुशल कलाकार के ही बूते की बात है कि अनगिनत सूत्रों को एक साथ कलात्मकता के साथ गूँथ सके हैं। कहानी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधृत होने पर भी वर्तमान संदर्भों से कटी नहीं है। बनारस में तुर्कों द्वारा की जाने वाली लूट-पाट और हत्याओं का विश्वसनीय चित्र देकर लेखक ने इसे वर्तमान संदर्भ से जोड़ दिया है।

'व्रतभंग' में एक गरीब युवक कपिंजल अपने सहपाठी और मित्र धनिक पुत्र नंदन के अपमान से तिलमिला कर बदला लेने का निश्चय करता है। वह साधु-वेश में नंदन के धर्मभीरु पिता द्वारा पूजित होता है। एक दिन नंदन का पिता सपरिवार इस महात्मा के दर्शन के लिए जाते हैं किंतु नंदन की नवविवाहिता पत्नी नग्न साधु के सम्मुख जाने से अस्वीकार कर देती है। इस पर उसे परिवार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और पति से अलग अभावों में जीवन के स्वर्णिम दिन बिताने पड़ते हैं। गंगा और शोण की एक साथ बाढ़ ने प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। नंदन अपनी शक्ति के अनुसार प्राणियों की जीवन रक्षा में लग गया। मौत के मुख से निकट पहुँचे हुए युवक, युवतियों, और वृद्धों की जीवन रक्षा कर वह अपने प्रासाद के निकट जब तक पहुँचता है तब तक उसके लिए महाश्रेष्ठि की आज्ञा से घर का द्वार वन्द हो चुका रहता है। और किसी को आश्रय नहीं मिल पाता। इस अवसर पर उसे स्मरण आती है राधा। इन्हें महल में पहुँचाकर वह पुनः अपनी यात्रा पर निकल पड़ता है और एक मूर्च्छित नग्न युवक को बचाकर ले आता है, जिसे कपड़े से ढँक देते हैं। यह युवक और कोई नहीं वस्तुतः कपिंजल ही था। मूर्च्छा हटते ही वस्त्र से अपने को आवृत्त देखकर कपिंजल क्रुद्ध हो उठता है।

"मुझे वस्त्र किसने पहनाया, मेरा व्रत किसने भंग किया ?

नंदन ने हँसकर कहा—कपिंजल ! यह राधा का गृह है, तुम्हें उसके आज्ञानुसार यहाँ रहना होगा। छोड़ो पागलपन। चलो बहुत से प्राणी हम लोगों की सहायता के अधिकारी हैं। कपिंजल ने कहा—सो कैसे हो सकता है ? तुम्हारा हमारा संग असंभव हैं।

मुझे दण्ड देने के लिए ही तो तुमने यह स्वांग रचा था। राधा तो उसी दिन से निर्वासित थी और कल से मुझे भी अपने घर में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं। कपिंजल ! आज तो हम और तुम दोनों बराबर और इतने अधमरों के प्राणों का दायित्व भी हम लोगों पर है। यह व्रत भंग नहीं, व्रत का प्रारंभ है। चलो इस दरिद्र कुटुम्व के लिए अन्न जुटाना होगा। कपिंजल आज्ञाकारी बालक की भाँति सिर झुकाए उठ खड़ा हुआ।"[१]

इस कहानी में प्रसाद जी ने धर्मान्धता पर कठोर चोट की है—"सिद्धि यदि इतनी अधम है, धर्म यदि इतना निर्लज्ज है, तो वह स्त्रियों के योग्य नहीं पिता जी। धर्म के रूप में कहीं आप भय की उपासना तो नहीं कर रहे हैं।"[२]

साथ ही उन्होंने गृहिणी का आदर्श आधुनिक भारतीय रमणियों के समक्ष रखा है।

'ग्रामगीत' एक विधवा की कहानी है जो जीवन सिंह को प्यार करने लग जाती है। और इस प्यार में उलाहना के कारण वह विक्षिप्त सी होकर घूमती और गाती रहती है। उसका गीत बहुत करुण है, तथा हृदय में एक वेदनामयी

---

१. प्रसाद : आँधी संग्रह, पृ० १०४।

२. वही, पृ० ९९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

टीस उत्पन्न करने वाला है। प्रसाद जी ने इस कहानी के माध्यम से विधवा समस्या पर प्रकाश डाला है।

'पुरस्कार' ऐतिहासिक कहानी है। इसके माध्यम से प्रसाद ने भारतीयों में राष्ट्रप्रेम का बीज अंकुरित करने का प्रयत्न किया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'आँधी' में संगृहीत कहानियों में लेखक कहीं भी वर्तमान समाज और उसकी समस्याओं को भूल नहीं पाया है। वर्तमान जीवन के प्रति उनकी सजगता हर कहानी में समान रूप स्पष्ट है।

विषयवस्तु की दृष्टि से वर्गीकरण करने पर 'आँधी' की कहानियों में 'आँधी', 'मधुआ', 'दासी', और 'पुरस्कार' चरित्र प्रधान कहानियाँ हैं; 'घीसू' 'बेड़ी', 'व्रतभंग', 'ग्राम गीत', 'विजया', 'अमिट स्मृति' और 'नीरा' भाव प्रधान कहानियाँ हैं। इनमें लेखक एक या अनेक अनुभूतियों से प्रेरित होकर स्थूल या सामान्य घटना एवं चरित्र विधान के सहारे किसी निश्चित भाव-बिन्दु अथवा भाव-समूहों को व्यंजित करने की ओर प्रयत्नशील है।

रचना-विधान के स्तर पर 'आँधी' में संगृहीत कहानियाँ 'आकाशदीप' की कहानियों से भिन्न हैं। 'आकाशदीप' में सांकेतिकता एवं गद्य गीतात्मकता है पर यहाँ लेखक स्थानीय परिस्थिति का चित्रण एक विशेष प्रकार के वातावरण की निर्मिति में सहायता के लिए करता दिखाई देता है। उदाहरण के लिए 'पुरस्कार' कहानी के कथानक को ऐतिहासिक धरातल पर विश्वसनीय बनाने के लिए लेखक गणतंत्र कालीन जीवन के अनिवार्य अंग इन्द्रपूजन समारोह का वर्णन प्रारंभ में ही कर देता है : "आर्द्रा नक्षत्र ! आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुंदुभी का गंभीर घोष। प्राची के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जय-घोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। वह हर्ष और उत्साह का समुद्र हिलोर भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।"[१]

'आकाशदीप' की कहानियों की धारा से 'आँधी' की कहानियाँ अछूती नहीं हैं। 'आकाशदीप' की 'देवदासी' की शान्त निस्पन्द करुणा 'आँधी', 'दासी' 'नीरा' और 'पुरस्कार' में परिस्थितिनुकूल अंतर से उपस्थित हैं। अतर्द्वन्द्व और मूक विद्रोह की 'आकाशदीप' की भावना 'आँधी' की अधिकांश कहानियों में चरित्र की महानता, कर्त्तव्य की प्रेरणा और उत्सर्ग की पवित्र ज्योति बनकर

---

१. प्रसाद : आँधी संग्रह, पृ० १४३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रस्फुटित हुई है। नारी गरिमा के प्रति जो आस्था भाव 'आकाशदीप' की आकाशदीप 'ममता', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'प्रतिध्वनि', 'देवदासी', 'चूड़ीवाली' और 'अपराधी' कहानियों में व्यक्त हुआ था, वही 'आँधी', 'दासी', 'व्रतभंग', 'नीरा' 'पुरस्कार' आदि में दिखाई देता है।

विषयवस्तु के आधार पर वर्गीकृत करने पर 'दासी', 'व्रतभंग' और 'पुरस्कार' कहानियाँ ऐतिहासिक खेमे में रखी जा सकती हैं। यद्यपि दासी को छोड़कर अन्य कहानियों का कथानक इतिहास पुष्ट नहीं है, पर स्वरूप की दृष्टि से ये अतीतोन्मुखी ही हैं।

'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', 'नीरा' आदि कहानियों में समाज की अर्थ-व्यवस्था की असमानता से पीड़ित वर्ग की समस्याओं का चित्रण और उनके प्रति सहानुभूति जाग्रत करने का प्रयत्न है। 'घीसू', 'ग्राम गीत', 'विजया' अमिट स्मृति' कहानी में समाज की रूढ़ियों, कुरीतियों और कठोर विधानों के दुष्परिणाम दिखाते हुए लेखक ने इन पर करारा व्यंग्य प्रहार किया है जिसमें उसके विद्रोह का भाव स्पष्ट है। 'आँधी', 'दासी', 'घीसू', 'व्रतभंग', 'ग्रामगीत' और 'पुरस्कार' में मानव-मन के गूढ़ भावों और द्वन्द्वों का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। 'आँधी' 'दासी', 'ग्रामगीत', 'घीसू' और 'पुरस्कार' में नारी पुरुष के प्रेम संबंध उसके विभिन्न रूपों और तत्संबंधित विभिन्न मानसिक क्रिया-प्रक्रियाओं का भावभूमि पर सुन्दर अंकन हुआ है। 'व्रतभंग' कहानी में 'नारी' के गृहिणी रूप की अभ्यर्थना है। 'आकाशदीप' की 'ममता' जैसी कहानी का 'आँधी' संग्रह में सर्वथा अभाव है। 'विजया', 'अमिट स्मति' और 'नीरा' में सामाजिक विडंबनाओं के प्रति सुधार का आग्रह अवश्य झलकता है। 'आँधी', 'दासी', 'नीरा', 'पुरस्कार' और 'मधुआ' कलात्मक दृष्टि से इस संग्रह की अत्यंत सर्वोत्कृष्ट कहानियाँ हैं। 'घीसू', 'बेड़ी', और 'व्रतभंग' कला की मध्यम कोटि की उदाहरण हैं। अन्य कहानियों में कला का बहुत ही सामान्य स्तर है। किंतु संवेदना की प्रधानता के कारण सभी कहानियाँ सजीव और मार्मिक हैं।

इन्द्रजाल

'इन्द्रजाल' १९३३ से १९३६ ई० के बीच लिखी गयी चौदह कहानियों का प्रसाद का अंतिम कथासंग्रह है। १९३६ ई० में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। इन्द्रजाल की कहानियों में प्रसाद का समूचा रचना-संसार मुखर है। इसमें लहर की चिंतनशील भावुकता, 'कामायनी' की संस्कृति महाप्राणता एवं 'तितली' की समाज सापेक्षता समन्वित होकर व्यक्त हुई है। 'इन्द्रजाल' तक

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहुंचते-पहुंचते लेखक की प्रतिभा अपने विकास के चरम उत्कर्ष तक पहुँच चुकी थी। अतीत और वर्तमान, शिव और सुन्दर, दुख और सुख, आदर्श और यथार्थ सबका समन्वित रूप उसे प्राप्त हो चुका था। 'प्रसाद' को यह विश्वास था कि अतीत की ओर दृष्टिपात करना वर्त्तमान के प्रति विश्वासघात नहीं अपितु वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति में यह अधिक उपयुक्त था। 'कामायनी' जैसी दार्शनिक कृति और 'तितली' जैसी आदर्श और यथार्थवादी कृति की रचना द्वारा यह अनुभूत हो चुका था कि मानव जीवन की समस्याएँ युग भेद से भिन्न लगती हुई भी, मूलतः अभिन्न हैं। वर्तमान और अतीत जीवन के दो खण्ड नहीं अपितु दो क्रम या दो स्थितियाँ हैं जो एक दूसरे से अलग नहीं, जुड़े हुए हैं।

जीवन दर्शन के इस प्रकार सामंजस्य से कहानियों की सर्जन कला एवं भाव-विधान का प्रभावित होना अवश्यम्भावी था। परिणाम स्वरूप 'चित्र मंदिर' में सुदूर अतीत के प्रागैतिहासिक काल की, 'देवरथ' में पतनोन्मुख बौद्ध धर्म की, 'सालवती' में इतिहास के गणतंत्र-कालीन समाज की झाँकी प्रस्तुत करते हुए लेखक ने वर्तमान और अतीत के जीवन को एक करके प्रस्तुत किया है। सुदूर अतीत की पृष्ठभूमि पर निर्मित होने पर भी ये कहानियाँ वर्तमान से कहीं-न-कहीं जुड़ी अवश्य हैं।

'आकाशदीप' और 'आँधी' जीवन के प्रति प्रसाद के दो भिन्न दृष्टिकोणों को लेकर उपस्थित हैं। पर 'इन्द्रजाल' की कहानियों में उनका समन्वय दिखायी देता है। इसमें एक तरफ जहाँ 'आकाशदीप' की सुनहला सांप', 'हिमालय का पथिक' जैसी, 'इन्द्रजाल' में, 'इन्द्रजाल', 'नूरी', 'चित्रवाले पत्थर', आदि जैसी विशुद्ध प्रेम-व्यंजक कहानियाँ हैं, वहीं 'आँधी' की 'घीसू', 'वेड़ी' और 'विजया' के समान 'छोटा जादूगर' और 'विराम चिह्न' जैसी समाज की समस्या पर लिखी कहानियाँ भी हैं। 'आकाशदीप' की 'समुद्र संतरण' और 'ज्योतिष्मती' जैसी प्रतीकात्मक तथा 'आँधी' की 'अमिट स्मृति' और 'विजया' जैसी समाज सुधार परक कहनियों का स्पष्ट अभाव अवश्य है पर उनकी छाया किसी-न-किसी कहानी में मिल ही जाती है।

स्थूल रूप से 'इन्द्रजाल' की कहानियाँ 'आकाशदीप' और 'आँधी' के मूल भाव और रचना-विधान की परंपरा में ही खड़ी दिखायी देती हैं, पर इसमें कुछ ऐसे विभेदक तत्व अवश्य दिखायी देते हैं जो इन्हें अलग कर देते हैं। इनमें सर्वप्रमुख गुण लेखक की जीवन और जगत के प्रति सजग आलोचक दृष्टि है। चाहे सामाजिक जीवन के विराट फलक पर समाज और व्यक्ति को एक साथ परखने वाला 'छोटा जादूगर' हो अथवा व्यक्ति जीवन की एक बहुत साधारण सी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

घटना को लेकर, जानी या अनजानी फिसलन और उसका संपूर्ण जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को चित्रित करने वाली 'भीख में' या 'चित्रवाले पत्थर' हो, सब में लेखक की अंतर्व्यापिनी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। जहाँ लेखक 'छोटा जादूगर' में समाज की आर्थिक विषमता को चित्रित करते हुए कुशलतापूर्वक यह संकेत दे जाता है कि परिस्थिति किस प्रकार खेलने-खाने की स्वच्छन्द वय में एक किशोर बालक को अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत और कार्यकुशल बना देती है, वहीं मानव की एक साधारण-सी कमजोरी और उसके परिणामस्वरूप आजीवन, दुःसह दुःख झेलने की कथा का चित्रांकन 'भीख में' बड़े कौशल से किया गया है। इतिहास के एक महत्वपूर्व व्यक्तित्व अकबर की विलास-क्रीड़ा और उसकी जलन से प्रताड़ित असंख्य क्षुद्र जीवन की करुण कहानी 'नूरी' में प्रस्तुत है। सुदूर अतीत के परदे पर पहुँचकर भी जीवन और जग को लेखक ने वर्तमान दृष्टि से ही देखा है। 'देवरथ', पतनोन्मुख बौद्धधर्म और उसके विलास जर्जर मठों के ढोंग पर तीखा व्यंग्य है। 'सालवती' में इतिहास के मोटे आवरण को पार कर तत्कालीन जीवन और उसकी समस्याओं को, व्यक्ति के हृदय में पलने वाले प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम के सनातन संघर्ष को, लेखक ने इसी दृष्टि से देखा है।

व्यक्ति के अंतर्मुखी जीवन की रहस्यमय उलझनों को मनोवैज्ञानिक पद्धति से परखने का प्रयत्न 'इन्द्रजाल' की कहानियों का दूसरा प्रमुख वैशिष्ट्य है जो उसे 'आकाशदीप' और 'आँधी' की कहानियों से अलग-थलग कर देता है। 'इन्द्रजाल' शीर्षक कहानी की मूल संवेदना 'छाया' की 'चंदा' कहानी से बहुत मिलती-जुलती है। 'छाया' की 'चंदा' के हृदय की तड़पन 'इन्द्रजाल' की बेला के हृदय की भूख जैसी ही है, दोनों ही कंजर जीवन के स्वच्छंद प्रेम व्यापार से सम्बद्ध हैं; पर बेला के अंतर्जगत और उसमें चल रहे आन्दोलनों का जैसा सशक्त मनोवैज्ञानिक चित्रण 'इन्द्रजाल' में हुआ है वैसा 'चन्दा' की 'चंदा में' नहीं। 'इन्द्रजाल' के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

"बेला की आँखों में गोली का और उसके परिवर्धमान प्रेमांकुर का चित्र था, जो उसके हट जाने पर विरह जल से हरा-भरा हो उठा था। बेला पलास के जंगल में अपने बिछुड़े प्रियतम के उद्देश्य से दो-चार विरह-वेदना की तानों की प्रतिध्वनि छोड़ आने का काल्पनिक सुख नहीं छोड़ सकती थी।

उसने देखा ठाकुर साहब ! महत्व का सम्पूर्ण चित्र, कई बार जिसे उसने अपने मन की असंयत कल्पना में दुर्गम शैल-शृंग समझकर अपने भ्रम पर अपनी हँसी उड़ा चुकी थी—बोली नहीं मन में सोच रही थी।

१२

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गोली को छोड़कर भूरे के साथ रहना क्या उचित है? और नहीं तो फिर...।"[१]

'सलीम', 'परिवर्तन', 'सन्देह', 'भीख में', 'चित्रवाले पत्थर', 'चित्र मंदिर' आदि सभी कहानियों में लेखक का झुकाव किसी मानसिक ग्रंथि विशेष के सुलझाव और समाधान की ओर दिखायी देता है।

मानव में पहली बार, हर्ष, शोक, सहानुभूति और प्रेम के भाव, किस प्रकार उठे होंगे उसकी अनुभूति कैसी हुई होगी और उसकी अभिव्यक्ति कैसी हुई होगी इसी को दिखाना 'चित्र मंदिर' का मूल लक्ष्य है। 'आकाशदीप' का भावुक लेखक 'इन्द्रजाल' तक आकर भावों और उनके द्वन्द्वों का मात्र चितेरा रह कर विश्लेपक बन गया है। 'परिवर्तन', 'सन्देह', 'भीख में', तथा 'चित्र वाले पत्थर' आदि कहानियाँ इस बात की साक्षी हैं कि प्रसाद यदि और जीवित रहे होते तो उन्होंने शुद्ध मनोवैज्ञानिक कहानियों की रचना की होती। 'सलीम' में जातिवाद, धर्म और संप्रदाय से ऊपर उठकर मानव-मानव प्रेम की आदर्श भूमि प्रतिष्ठित है। लेखक स्पष्ट शब्दों में अपना मत व्यक्त करते हुए मानवता के इस पक्ष के प्रति अपनी अटूट आस्था व्यक्त करता है—"मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है, जहाँ वर्ण, धर्म और देश को भूलकर मनुष्य, मनुष्य के लिए प्यार करता है।"[२]

'गुंडा' में प्रेम के उत्सर्ग—उज्ज्वल पवित्र-रूप का चित्रण किया गया है। 'आकाशदीप' और 'आँधी' की अधिकांश कहानियों के समान ही नारी-गरिमा के प्रति आस्था और करुणा, त्याग, क्षमा, उत्सर्ग आदि आदर्श भावों की प्रतिष्ठा करना 'इन्द्रजाल' की अधिकांश कहानियों का लक्ष्य प्रतीत होता है।

विषयवस्तु की दृष्टि से वर्गीकृत करने पर 'इन्द्रजाल' की 'नूरी', 'गुंडा' 'देवरथ', और 'सालवती' कहानियाँ ऐतिहासिक कहानियों के वर्ग में आती हैं। 'छोटा जादूगर' और 'विराम चिह्न' कहानियों में समाज की अर्थ व्यवस्था की विषमता से पीड़ित निम्न-वर्ग के प्रति सहानुभूति का भाव मुखर है। 'विराम चिह्न' में एक प्रमुख सामाजिक रूढ़ि के प्रति व्यंग्य का स्वर प्रधान है। 'चित्र मंदिर' सांस्कृतिक विकास के आदिम सोपानों को दिखाने वाली सांस्कृतिक कहानी है। 'इन्द्रजाल', 'नूरी', 'देवरथ', 'चित्रवाले पत्थर', 'गुण्डा' और 'सालवती' की आधार भूमि नारी-पुरुष का असफल प्रेम है। 'सलीम', 'परिवर्तन' और 'भीख में' गृहस्थ जीवन का विश्वसनीय और आकर्षक चित्रण है। 'सालवती' कहानी

---

१. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह, पृ० ७।

२. वही, पृ० २०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में भारतीय संस्कृति के वैभवकालीन उज्ज्वल रूप के प्रति लेखक का मोह व्यंजित है। 'सलीम' और 'विराम चिह्न' में वर्तमान की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का लक्ष्य अप्रत्यक्ष रूप में द्रष्टव्य है।

कथा की दृष्टि से 'इन्द्रजाल', 'सलीम', 'छोटा जादूगर', 'नूरी', 'चित्रवाले पत्थर', 'गुण्डा', 'देवरथ' और 'सालवती' इस संग्रह की श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। 'परिवर्तन', 'भीख में' और 'विराम चिह्न' में कहानी कला का साधारण स्तर ही दिखायी देता है। 'संदेह', 'अनबोला' कला की दृष्टि से सामान्य कोटि की रचनाएँ हैं, किंतु इनकी भी संवेदना गंभीर और मार्मिक है।

प्रसाद की कहानियों की निजी विशेषताएँ

(१) रोमाण्टिक दृष्टिकोण

प्रसाद का संपूर्ण साहित्य उनकी रोमांटिक भावना से आप्लावित है। काव्य के क्षेत्र में उसका रूप अत्यंत स्पष्ट है, नाटकों में वह इतिहास के साथ घुल-मिल कर अभिव्यक्त है और कहानियों में यह कहीं अत्यंत स्पष्ट रूप में उपस्थित है एवं कहीं इतिहास के साथ। 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की विकासकालीन कहानियों से लेकर प्रौढ़ युग की कला की परिपक्व कहानियों तक सर्वत्र ही प्रसाद की इस प्रवृत्ति का आभास मिलता है। पर इसका स्वरूप बदलता रहा है जहाँ प्रारंभ में यह इति-वृत्तात्मक मात्र ही है वहाँ उत्कृष्ट कहानियों में यह अधिक व्यंजक एवं तीव्र है।

प्रसाद की सभी कहानियों में—चाहे वे प्रयोगकालीन हों या प्रौढ़युगीन प्रेम विवृत्ति और भावाभिव्यंजना, सामाजिक और सामान्य जीवन-वृत्त से सम्वद्ध होते हुए अपनी विशेष संयोजन पद्धति और रचना-प्रक्रिया के कारण असामान्य और असाधारण सी प्रतीत होती हैं। उदाहरण के लिए हम—.स्वर्ग के खण्डहर में' 'सनुहला सांप', 'हिमालय का पथिक', 'भिखारिन', 'प्रतिध्वनि', 'बनजारा' 'चूड़ीवाली', 'विसाती' आदि कहानियों को ले सकते हैं। इन कहानियों की विषयवस्तु में कोई विशेष असामान्यता या वैशिष्ट्य नहीं है फिर भी इनके इति-वृत्त के संयोजन के ढंग ने इन्हें एक अलग परिवेश प्रदान किया है जो दैनिक जीवन से परे प्रतीत होता है। प्रसाद अपने रचना कौशल से साधारण-से-साधारण पात्रों को भी विशिष्ट बना कर उन्हें सामान्य से अलग कर देते हैं। उदाहरण के लिए 'भिखारिन' कहानी द्रष्टव्य है। प्रसाद की सिर्फ निम्न दो पंक्तियाँ ही उसे अन्य भिखारियों से विशिष्ट बना देती हैं :

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"सहसा जैसे उजाला हो गया—एक धवल दाँतों की श्रेणी अपना भोलापन बिखेर गई—"कुछ हमको दे दो रानी माँ !" निर्मल ने देखा एक चौदह वर्ष की भिखारिन भीख माँग रही है।"[1]

"निर्मल ने उस मलिन वसन में एक दरिद्र हृदय की हँसी को रोते हुए देखा। उस बालिका की आँखों में एक अधूरी कहानी थी। रूखी लटों में सादी उलझन थी और बरौनियों के अग्रभाग में संकल्प के जल बिन्दु लटक रहे थे, करुणा का दान जैसे होने ही वाला था।"[2]

'वैरागी' की अनाम युवती—अतिथि का रूप चित्र भी इसी चित्रण कौशल द्वारा असाधारण महिमा मंडित है :

किसी ने पुकारा—आश्रय मिलेगा ?

वैरागी का ध्यान टूटा। उसने देखा, सचमुच मलिन-वसना गोधूलि उसके आश्रम में आश्रय माँग रही है। अंचल छिन्न बालों की लटें, फटे हुए कम्बल के समान मांसल वक्ष और स्कन्ध को ढकना चाहती थी। गैरिक वसन जीर्ण और मलिन। सौंदर्य विकृत आँखें कह रही थीं कि , उन्होंने उमंग की रातें जगते हुए बिताई हैं। वैरागी अकस्मात् आँधी के झोंके में पड़े हुए वृक्ष के समान तिलमिला गया।"[3]

'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कहानियों में भी कथानक और उसके लिए वातावरण सर्जना में लेखक की रोमानी प्रवृत्ति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'छाया' की 'चन्दा' और 'रसिया बालम' कहानियों में प्रेम व्यंजना के रूप में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक मुखर है। 'चंदा' सभ्य समाज से वहुत दूर काल-जीवन की स्वच्छन्द प्रणय कथा है, 'रसिया बालम' भी शीरी फरहाद की प्रेम कथा के ढंग की रोमानी कहानी है। वर्तमान से दूर, अतीत के रमणीय कोण में आश्रय लेकर करुणा और प्रेम का मधुर गीत गाने का स्वप्न 'छाया' की द्वितीय संस्करण में शामिल सभी कहानियों में समान रूप से मिल जाता है। 'प्रतिध्वनि' की दो कहानियों—'खण्डहर की लिपि' और 'चक्रवर्ती का स्तंभ' में ही अतीत प्रेम दिखायी पड़ता है किंतु रोमांस की अन्य प्रवृत्तियाँ—गीतात्मकता, भावुकता प्रेम और करुणा की झलक एवं चिन्तनशील रहस्यात्मकता का दर्शन 'अघोरी का मोह', 'उस पार का योगी', 'प्रतिमा' और 'प्रलय' आदि कहानियों में स्पष्ट

---

१. प्रसाद : आकाशदीप—भिखारिन कहानी, पृ० ६७-६८।
२. वही, पृ० ६८ ।
३. वही, वैरागी कहानी, पृ० ११४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रतिबिम्बित है। विद्रोह और आक्रोश भाव का अभाव अवश्य इन कहानियों में है। 'उस पार का योगी' और 'प्रलय' में तो गेयता, कल्पना-प्रवणता, स्वानुभूति और रहस्यात्मकता का तत्व ही उनका सब कुछ है। 'उस पार का योगी' तो अपने मूल उपादान में 'आकाशदीप' की 'समुद्र संतरण' के बहुत निकट की रचना प्रतीत होती है।

'आकाशदीप' की कहानियों में लेखक की स्वच्छन्दता और कल्पनाशीलता अपने चरम विकास पर है। कभी वह उन्मुक्त प्रेम की ओर कहीं मूर्च्छना तथा चिरनिद्रा की कामना करता दिखायी पड़ता है और कभी इस कोलाहलपूर्ण धरती से अलग हट कर दूर, बहुत दूर अनजाने प्रदेश के एकांत में पहुँचकर स्वप्न संसार रचाने की लालसा भी उसे विह्वल करती दिखायी पड़ती हैं।

'स्वर्ग के खण्डहर में' की मोना उदास होकर गाती है—"यह यौवन निष्फल हैं, जिसका हृदयवान उपासक नहीं। वह मदिरा हलाहल हैं, पाप है, जो उन मधुर अधरों का उच्छिष्ट नहीं। वह प्रणय विषाक्त छुरी है जिसमें कपट है। इसलिए हे जीवन तू स्वप्न न देख, विस्मृति की निद्रा में सो जा। सुषुप्ति यदि आनंद नहीं तो दुःखों का अभाव तो हैं। इस जागरण से इस आकांक्षा और अभाव के जागरण से—वह निर्द्वन्द्व सोना कहीं अच्छा है मेरे जीवन।"[1]

इसी आशय को 'लहर' की निम्न पंक्तियों में स्पष्ट देखा जा सकता है—

'अपलक जगती हो एक रात !
सब सोये हों इस भूतल में...
उनके स्वप्नों का हो न प्रात।'[2]

'समुद्र सन्तरण' में भी यही प्रवृत्ति दूसरी लालसा बनकर व्यक्त हुई है :

"लहरों को चीरते हुए सुदर्शन ने पूछा—'कहाँ ले चलोगी' ?

पृथ्वी से दूर, जल राज्य में; जहाँ कठोरता नहीं केवल शीतल, कोमल और तरल आलिंगन है, प्रवंचना नहीं सीधा आत्मविश्वास है, वैभव नहीं सरल सौंदर्य हैं।"[3]

---

१. प्रसाद : आकाशदीप—'स्वर्ग के खण्डहर में' पृ० ४६।

२. प्रसाद : लहर, पृ० ३१।

३. प्रसाद : आकाशदीप—समुद्र संतरण, पृ० १०९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'लहर' की इन पंक्तियों में भी इसी मृदु आकांक्षा की अनुगूँज है—

'ले चल मुझे भुलावा देकर
मेरे नाविक धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी
अम्बर कानों में गहरी
निश्छल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे।'[1]

'हिमालय का पथिक', 'सुनहला साँप', वैरागी, 'बनजारा', 'प्रणय चिह्न' 'ज्योतिष्मती', 'रमला' और 'बिसाती' में भी इसी स्वच्छन्दतावाद की एक या अनेक प्रवृत्तियाँ मुखर हैं।

प्रसाद की यह रोमानी प्रवृत्ति 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' की कहानियों में भी स्पष्ट परिलक्षित होती है। वातावरण-निर्माण, परिस्थिति-चित्रण-रूप योजना और प्रेम तथा कल्पना लोक में स्वच्छन्द विचरण के रूप में यह हर कहानियों में देखा जा सकता है। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में लैला के मुक्त प्रणय की करुण गाथा 'आँधी' कहानी में अत्यन्त रोमानी पद्धति से प्रस्तुत है। 'दासी', 'बेड़ी', 'घीसू', 'ग्रामगीत' और 'पुरस्कार' में भी यह प्रवृत्ति आँसू, वेदना, नैराश्य और करुणा की झलक तथा कथानक के संगुंफन पद्धति-कौशल में वर्तमान है। 'इन्द्रजाल' संग्रह की 'इन्द्रजाल' कहानी तो स्पष्ट ही जीवन के कोलाहलमय वातावरण से दूर भावात्मक भित्ति पर आवृत स्वच्छन्द प्रणय क्रीड़ा की कहानी है। 'सलीम' के सलीम का प्रेमा के प्रति आकर्षण, 'नूरी' की करुणाभरी कहानी 'चित्रवाले पत्थर' का मौन संदेश और 'गुंडा' का आत्म-बलिदान भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों से आप्लावित है।

यथार्थ जीवन से दूर स्वप्न लोक में विचरण के कारण प्रायः रोमाण्टिक कलाकारों को पलायनवादी माना जाता है। रोमांटिसिज्म की इस बदनामी के कारण पाश्चात्य के अतिरेकवादी कलाकार है। प्रश्न यह उठता है कि प्रसाद की कहानियों पर व्यापक रूप में छायी यह रोमानी आभा, उन्हें किस रूप में प्रभावित करती है? क्या प्रसाद का भी साहित्य हमें पलायनवादिता का ही संदेश देता है। वस्तुतः रोमांस के अंतर्गत प्रगतिशील और ह्रासशील दोनों प्रकार के साहित्य आते हैं। प्रसाद जी का स्वरूप रोमांस, दार्शनिक और भावात्मक

---

१. प्रसाद : लहर, पृ० १०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दृष्टि से मानव को जीवन संघर्ष के लिए उद्यत करता है।[1] पलायनवाद के प्रभाव-स्वरूप उद्धृत उनकी अनेक पंक्तियाँ जीवन के प्रति विश्वास आनंद और अखण्डता के संदेश से आप्लावित है। उसमें क्षोभ और करुणा का अभाव इस-लिए है कि लेखक मात्र आश्वासन का ही पाठ नहीं पढ़ाना चाहता। वह नारी और पुरुष को समता और सहयोग के एक सूत्र में पिरोकर एक सशक्त मोर्चा तैयार करने के लिए उद्यत दिखायी देता है। प्रसाद की कहानियों में इस सूत्र की झलक दिखायी देती है, पर 'तितली' में उसका अत्यन्त संघटित प्रतिपक्ष स्वरूप दृष्टिगत होता है। वस्तुतः व्यक्तिगत सुख-दुख से ऊपर उठने वाली आध्यात्मिकता और रहस्य भावना का प्रयोग जीवन से पराङ्मुखता का साधन नहीं। वास्तव में प्रसाद का रोमांस प्रगतिशीलता का संदेश देता है। यह दूसरी बात है कि उनकी प्रगतिशीलता का रूप सांप्रदायिक नहीं साहित्यिक है—भावना का उद्रेक, उच्छ्वास, परिष्कृति और प्रेरकता ही जिसकी मापदण्ड है।[2] रोमांस की यह स्वस्थ दृष्टि साहित्य के लिए अत्यन्त अनिवार्य वस्तु है।

(२) सौंदर्यानुभूति और प्रेम-व्यंजना

प्रसाद सौंदर्य और प्रेम के गायक थे। उनका समूचा साहित्य भाण्डार ही इन प्रवृत्तियों से भरा पड़ा है। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी सबमें वे इनसे सम्बद्ध कोमल-भावनाओं की विवृत्ति का अवकाश निकाल लेते हैं। सौंदर्य और प्रेम के कोष यौवन की अभ्यर्थना में उन्होंने अनेक गीत गाए हैं।

'समुद्र संतरण' में प्रिय से पहली बार मिलने, यौवन और सौंदर्य के साहचर्य से उद्‌बुद्ध प्रणय की अनुभूति और उसमें आकुलता का चित्रण बहुत ही कलात्मक ढंग से किया गया है :

"सुदर्शन ने देखा, सब सुन्दर है। आज तक जो प्रकृति उदास चित्र बनकर सामने आती थी, वह उसे हँसती हुई मोहिनी और मधुर सौंदर्य से ओतप्रोत दिखायी देने लगी। अपने में और सबमें फैली हुई उस सौन्दर्य की विभूति को देखकर सुदर्शन की तन्मयता उत्कंठा में बदल गई। उसे उन्माद हो चला। इच्छा होती थी कि वह समुद्र बन जाय। उसकी उद्वेलित लहरों से चन्द्रमा की किरणें खेलें और वह हँसा करे।"[3]

---

१. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, पृ० १२६-२७।

२. वही, पृ० १२६।

३. प्रसाद : आकाशदीप—समुद्र संतरण कहानी से, पृ० १०९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद की इस कुशलता को देखकर ही डॉ० सत्येन्द्र ने कहा है—"जायसी को प्रेम की पीर को प्रकट करने के लिए 'पद्मावत' की सृष्टि करनी पड़ी, किंतु प्रसाद की नायिकाओं में नूरी, चम्पा, किन्नरी, पन्ना, आदि में स्वयं ही प्रेम की पीर साकार हो उठी है।"[१]

सुदूर अतीत ('चित्र मंदिर') से लेकर अंग्रेजी काल ('गुण्डा') तक विभिन्न आर्थिक सामाजिक नैतिक समस्याओं से आक्रांत जटिल, वर्तमान ('घीसू', 'मधुआ', 'बेड़ी', 'नीरा', 'विराम चिह्न' आदि) तक प्रसाद की रचना का क्षेत्र फैला हुआ है पर इन सभी में प्रेम-तत्व ही प्रधान रूप से भास्वर है। परिस्थिति और वातावरण तथा देशकाल के अनुरूप प्रसाद ने इन्हें भिन्न-भिन्न स्वरूप प्रदान किया है। कहीं भी पुनरावृत्ति का आभास नहीं लगता। कहीं वर्तमान के दुख-दर्द, छल-प्रपंच से दूर अतीत की शीतल चाँदनी में खिलकर वह अत्यन्त स्वप्निल बन गया है ('छाया' की 'रसिया बालम', 'प्रतिध्वनि' की 'खण्डहर की लिपि', 'आकाशदीप' की 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'आँधी' की 'दासी', 'इन्द्रजाल' की 'नूरी' आदि) और कहीं वर्तमान की विषादभरी धरती पर प्यास, अतृप्ति या भूख की जलन बन कर व्यक्त हुआ है। 'चन्दा', 'छाया', 'देवदासी', 'बनजारा', 'बिसाती'-'आकाशदीप', 'घीसू', 'ग्राम गीत'—'आँधी', 'भीख में', 'चित्रवाले पत्थर', 'गुंडा'—इन्द्रजाल'। कहीं वह गृहस्थी के आंगन में, जीवन के सामान्य धरातल पर, अत्यन्त परिचित बनकर दिखायी पड़ता है ('शरणागत'—'छाया', 'सहयोग', 'कलावती की शिक्षा'—'प्रतिध्वनि', 'चूड़ीवाली'—'आकाशदीप', 'व्रत भंग'—'आँधी', 'सलीम', 'परिवर्तन', 'भीख में', 'इन्द्रजाल') और कहीं विचार गूढ़ दार्शनिक भूमिका पर स्थित होकर रहस्यमय प्रतीक बन गया है ('उस पार का योगी', 'प्रलाप', 'प्रतिध्वनि', 'समुद्र संतरण', 'ज्योतिष्मती'—'आकाशदीप')। ईर्ष्या द्वेष और छल-छद्म से विकृत कटु एवं प्रतिशोध भरे रूप में भी वह सामने आया है, ('चन्दा', 'अशोक'—'छाया', 'प्रतिध्वनि'—'आकाशदीप'), विश्वास, श्रद्धा और उत्सर्ग के आलोक से मण्डित महिमामय बनकर भी प्रकट हुआ है ('रसिया बालम', 'मदन मृणालिनी'—छाया, 'पाप की पराजय'—'प्रतिध्वनि', 'घीसू', 'ग्राम-गीत' 'अमिट स्मृति'—'आँधी', 'गुंडा'—'इन्द्रजाल')।

प्रसाद की प्रेम-भावना का अत्यधिक आकर्षक और समुज्ज्वल स्वरूप हमें उन कहानियों में मिलता है जिनमें राष्ट्र-प्रेम और कर्त्तव्य प्रेरणा के साथ-साथ

---

१. 'प्रसाद की कला' में संकलित 'प्रसाद की कहानी कला' लेख—प्रो० सत्येन्द्र, पृ० ३२८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वैयक्तिक प्रेम का भाव अंतर्द्वन्द्वात्मक स्थिति में प्रस्तुत किया गया है। 'छाया' की 'मदन मृणालिनी', 'आकाशदीप' की 'आकाशदीप' और 'आँधी' की 'पुरस्कार' तथा 'इन्द्रजाल' की 'सालवती' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। 'मदन मृणालिनी' के मदन में एक तरफ प्रेम का भाव उदय होता है और दूसरी तरफ कर्त्तव्य का। राष्ट्रप्रेम भी उसमें भास्वर है। मदन, प्रेम के लिए अपनी सर्वस्व अर्जित पूँजी छोड़कर चला जाता है। वह प्रेम का मुख्य अर्थ 'आत्मत्याग' मानता है। राष्ट्रप्रेम के कारण सीलोन की यात्रा के लिए उसके मन में द्वन्द्व है किंतु वह मृणालिनी के आग्रह पर जाने के लिए तैयार हो जाता है।

प्रतिशोध में जलती 'आकाशदीप' की चंपा चाहकर भी अपने पितृहंता निष्ठुर बुद्धगुप्त की हत्या नहीं कर पाती, ऐसे क्षण उसका हृदय उसके हाथों को पकड़ लेता है, और अंत में वह प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबो देती है। बुद्धगुप्त से वह घृणा नहीं कर पाती पर उसे आत्मसमर्पण भी नहीं कर पाती। बुद्धगुप्त से अलग रहकर आकाशदीप जलाकर जल में अपने पिता की समाधि का संधान करती हुई आजीवन उसी की स्मृति में जलती रहती है। कर्त्तव्य के अंतर्द्वन्द्व में पड़ी 'चंपा' अंत तक कोई निर्णय नहीं कर पाती।

'पुरस्कार' की मधूलिका कर्त्तव्य, राष्ट्रप्रेम और प्रेम के अंतर्द्वन्द्व में पड़ी निर्णय नहीं कर पाती कि वह क्या करे। वह राष्ट्रप्रेम के समक्ष अपने प्रेम को तिलांजलि दे देती है और अपने प्रेमी को बन्दी बनवाने तथा भविष्य की स्वर्णिम कल्पना के लोभ को भी संवरण कर लेती है। अंततः वह पुरस्कार स्वरूप भी अरुण के साथ मृत्युदण्ड ही चुनती है।

"राजा ने कहा—मेरे निज की जितनी खेती हैं, मैं सब तुझे देता हूँ। मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा—मुझे कुछ न चाहिए। अरुण हँस पड़ा। राजा ने कहा—नहीं, मैं तुझे अवश्य दूंगा। माँग लो।

तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले। कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।"[१]

कर्त्तव्य और प्रेम के द्वन्द्व ने मधूलिका और अरुण के प्रेम को अत्यन्त उज्ज्वल और पावन बना दिया है जिससे 'पुरस्कार' हिन्दी कहानी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी बन गयी है।

'सालवती' की सालवती में कर्त्तव्य और प्रेम का समाहार अत्यन्त कौशल से हुआ है।

---

१. प्रसाद : आँधी, पुरस्कार कहानी से, पृ० १५६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'गुण्डा' की पन्ना के हृदय में रानी-पन के गौरव और गृहिणी की मर्यादा के भीतर सुषुप्त प्रणय की कसमसाहट का भी लेखक ने संकेतात्मक ढंग से अत्यन्त मनोहारी और व्यंजक चित्र उरेहा है। पन्ना नन्हकू की न बन सकी और न इस जीवन में उसके मिलने की ही आशा है फिर भी पन्ना के मन में यह लालसा विद्यमान है कि नन्हकू उन्हीं का होकर रहे, किसी अन्य नारी को उसका प्रणय न मिल सके। निश्चय ही यह पन्ना का लोभ नहीं अपितु प्रेम की प्रेमी के ऊपर एकाधिपत्य देखने की सहज वृत्ति है। वेश्या दुलारी नन्हकू सिंह का नाम सुनकर उसे कष्ट होता है और आशंका से पूरित प्रश्न करती है—"दुलारी वे तेरे यहाँ आते हैं न?"

प्रसाद की कल्पना का प्रेम पृथ्वी से दूर ऐसा जल-राज्य है जहाँ कठोरता नहीं केवल शीतल, कोमल, तरल आलिंगन है, प्रवंचना नहीं, सीधा आत्मविश्वास है, वैभव नहीं सरल सौंदर्य है।[1] यही कारण है अपने आभिजात्य और वैभव को भूल कर एक राजकुमार धीवर वाला से प्रेम करता है, एक चूड़ीवाली अपने परिस्थितिज्ञान को भूलकर सरकार को चाहने लगती है, शीरी का प्रेमी शीरी को पाने के लिए बिसाती वन जाता है।

पर प्रसाद की कहानियों में वहुत ही कम कहानियाँ हैं जिनमें सफल प्रेम का चित्रण हुआ है सफलता यदि आई भी है तो एक लम्बी अंतराल की साधना के बाद या किसी असामान्य त्याग के अनंतर। चूड़ीवाली का अंत इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। चूड़ीवाली वेश्या-परक जीवन को छोड़कर साधारण गृहिणी का जीवन विताने लग जाती है और दुखियों की सेवा अपना लक्ष्य बनाती है; तब उसे जाकर सरकार की प्राप्ति होती है।

प्रसाद गृहस्थजीवन की मर्यादा में कुलवधू के एकनिष्ठ प्रेम को अत्यन्त उच्च मानते थे। पर कुलवधू के लिए आवश्यकता होती है पावनता और एकनिष्ठ प्रेम की। 'देवरथ' की कौमार्य स्खलिता सुजाता की आत्म-समीक्षा के माध्यम से लेखक इसे भली-भाँति स्पष्ट कर देता है: "मैं वह अमूल्य उपहार—जो स्त्रियाँ, कुल वधुएँ अपने पति के चरणों में समर्पण करती हैं—कहाँ से लाऊँगी? वर-माला जिसमें दूर्वा सदृश कौमार्य हरा-भरा रहता हो, जिसमें मधूक-कुसुम-सा हृदय रस भरा हो, कैसे, कहाँ से तुम्हें पहना सकूँगी?"[2]

---

१. सं० डॉ० नगेन्द्र : हिन्दी वाङमय बीसवीं शती, पृ० २४४।
२. प्रसाद : 'इन्द्रजाल' संग्रह की देवरथ कहानी, पृ० १०५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद के अनुसार प्रेम प्रतिदान का लोभी नहीं। उसका आदर्श देने में है पाने में नहीं। उनके प्रेम का स्वरूप 'लहर' की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

पागल रे; वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कण से गिन-गिन कर
यह विश्व लिये है ऋण उधार।
तब तू क्यों उठता है पुकार--
मुझको न मिला रे कभी प्यार ?--लहर

(३) प्रकृति-चित्रण

प्रसाद का प्रकृति-विषयक दृष्टिकोण अत्यन्त आदर्शात्मक है। वे उसे विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिंब मानते थे। प्रसाद की हर कहानियों में प्रकृति की यह झाँकी किसी-न-किसी रूप से मिल ही जाती है, पर कुछ कहानियों में मानव जीवन और प्रकृति अनुभूति तरल होकर परस्पर इतने समीप पहुँच गए हैं कि उन्हें विलग नहीं किया जा सकता। 'रमला' कहानी का उदाहरण देना यहाँ उचित होगा। निम्न पंक्तियों में रमला कहानी के साजन का समुद्र शिशु रमला झील के प्रति स्नेहातिरेक भाव द्रष्टव्य है :

"साजन की साँसें उसकी लहरियों से स्वर-सामंजस्य बनाये रहतीं।.. वही साजन की गृहिणी थी, स्नेहमयी, कभी-कभी वह उसे पुकार उठता, बड़े उल्लास से बुलाता—'रानी !' प्रतिध्वनि होती, ई ई ई...। वह खिलखिला उठता, आँखें बिकस जातीं रोयें हँसने लगते। फिर सहसा वह अपनी उदासी में डूब जाता, तब जैसे तारा छाई रात उस पर अपना श्याम अंचल डाल देती।"[१]

समुद्र संतरण कहानी में भी प्रकृति और जीवन का इसी प्रकार सामंजस्य दिखायी देता है। "सुदर्शन बैठा रहा। चांदी का थाल लिए रजनी समुद्र से कुछ अमृत भिक्षा लेने आई। उदार सिन्धु देने के लिए उमड़ उठा। लहरियाँ सुदर्शन के पैर चूमने लगीं। उसने देखा, दिगंत-विस्तृत जल राशि पर कोई गोल और धवल पाल उड़ाता अपनी सुन्दर तरणी लिए आ रहा है। उसका विषय-शून्य हृदय व्याकुल हो उठा। उत्कट प्रतीक्षा दिगंतगामिनी अभिलाषा—उसकी जन्मांतर की स्मृति बनकर उस निर्जन प्रकृति में रमणीयता की, समुद्र गर्जन में

---

१. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह—रमला कहानी, पृ० १७२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संगीत की सृष्टि करने लगी।...नक्षत्र-मालिनी प्रकृति हीरे-नीलम से जड़ी पुतली के समान उसकी आँखों का खेल बन गयी।"[१]

'आँधी' कहानी में लैला की आंतरिक प्रवृत्ति और आँधी का सामंजस्य बड़े मनोयोग पूर्वक किया गया हैं।

प्रसाद का कथा प्रसंग के साथ घुला-मिला प्रकृति चित्रण कहीं भी न तो ऊब पैदा करता है और न तो कहानी के प्रवाह में अवरोधक ही बनता हैं। इसके विपरीत वह कहानी को गति प्रदान करता हैं। यदि प्रकृति चित्रण के अंशों को कहानी से हटा दिया जाय तो कहानी बड़ी नीरस हो जाएगी।

प्रसाद ने अपनी कहानियों में प्रकृति का उपयोग कई रूपों में किया है, कहीं उद्दीपन के रूप में उदाहरणार्थ चंदा का प्रारंभिक अंश लिया जा सकता हैं। कहीं वह तटस्थ दर्शन के रूप में रूपायित हैं जो मानव-मात्र के सुख-दुःख, हार जीत को देखती भर हैं। (चंदा कहानी)। और कहीं मानव सहचरी के रूप में चित्रित हैं जहाँ वह मानव के दुःख से अत्यन्त दुःखी और सुख से सुखी दिखायी देती हैं। और कहीं प्रेरणादायिनी शक्ति के रूप में चित्रित है। प्रसाद ने और कहीं उसका पूर्ण मानवीकरण कर दिया हैं।

वस्तुतः प्रसाद का संपूर्ण काव्य प्रकृति के रोमानी चित्रण से भरा पड़ा है। और प्रकृति की यह प्रधानता ही छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति रही हैं। उसके अनेक रूपों की छाया ही प्रसाद की कहानियों के प्रकृति चित्रण में दिखायी देती हैं। प्रकृति का मनोरम विनियोग प्रसाद की कहानियों की अपनी निजी विशेषता है। उसका जो मोहक रूप यहाँ उपलब्ध है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

(४) जीवन-दर्शन

प्रसाद शिव उपासक थे। उन्हें अपने जीवन में आनंद अभीष्ट था। इसके लिए उन्होंने समन्वयवादिता का मार्ग अपनाया। यह समन्वय दर्शन में भी है और व्यवहार में भी। दर्शन के क्षेत्र में उन्होंने वैदिक दर्शन से अद्वैतवाद ग्रहण किया, किन्तु मायावाद को वे न अपना सके। बौद्ध दर्शन की करुणा और क्षमा को ग्रहण कर भी उसके दुःखवाद और क्षणिकवाद को उन्होंने छोड़ दिया। इन दोनों विरोधी दर्शनों के प्रभाव को शैवागम के आनंदवाद से समन्वित कर उन्होंने जीवन को एक अत्यंत स्वस्थ दृष्टि से देखा—जिससे जीवन और जगत उन्हें दुःख का आगार न दिखायी देकर आनंद का धाम नजर आया। इन्हीं विचारधारा से

१. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह, समुद्र संतरण कहानी, पृ० १०८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रेरित प्रसन्न जीवन की महती संभावनाओं को उन्होंने अनेक रूपों में व्यक्त किया और सर्वत्र ही उनका विश्वास अखण्ड अक्षुण्ण बना रहा।

कामायनी उनके जीवन दर्शन की चरम परिणति है। व्यावहारिक जगत में उन्होंने पूर्व और पश्चिम, प्राचीन और नवीन, आदर्श और यथार्थ, प्रेय और श्रेय के परस्पर विरोधी दिखायी देने वाले जीवन पक्षों को अपने साहित्य में संयोजित करने का सफल प्रयत्न किया। व्यक्ति और समाज, नारी और पुरुष के परस्पर क्या संबंध हों, जीवन में आचार-विचार और नैतिकता का क्या आदर्श मानदण्ड हो, आदि सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रश्नों पर उन्होंने मौलिक दृष्टि से सोचा, और अतिवादों को छोड़ मध्यम मार्ग का अनुसरण ही श्रेयस्कर समझा !

कहानियों में जीवन-दर्शन के प्रकाश का समुचित अवकाश नहीं रहता, कुशल लेखक सिर्फ उनका संकेत भर कर देता है। इन्हीं सूत्रों को खोजने से हम प्रसाद के जीवन दर्शन के संबंध में कोई निश्चित धारणा वना सकते हैं।

'स्वर्ग के खण्डहर में' नामक कहानी में जीवन के प्रति उनके विचार उदार मानवतावाद के रूप में अभिव्यक्त हैं। स्वर्ग और नरक के चक्कर से दूर रहकर जीवन और जगत को उसकी संपूर्णता में उसके पाप-पुण्य के साथ ग्रहण करने का आग्रह प्रकट है। वस्तुतः इसमें व्यक्त उनके विचार से मानवत्व की कल्पना देवत्व से बड़ी है। वस्तुतः मानवता सृष्टि के अनन्त प्रयोगों और निरंतर विकास का प्रतिफल है।

प्रसाद के मन में मानव के प्रति इतने आस्था-भाव के बावजूद भी मानव से भी महान किसी अव्यक्त निःसीम, सर्वव्याप्त, विश्वरूप चेतन सत्ता में विश्वास दिखाई देता है जिसके प्रति समर्पण का भाव कदम-कदम पर प्रकाशित है। नियति, अदृष्ट, कर्म और संस्कार के रूप में उसके मूक संचालन को स्वीकार करते हुए ही वह मानव के कर्म स्वातंत्र्य को स्वीकार करते हैं। कभी-कभी उसके विधान और मानवीय सुख-दुख में विरोध का अवसर भी आ जाता है, और लेखक निराश होकर अनुभव करता है कि नियति भयानक वेग से चल रही है। आँधी की तरह उसने असंख्य प्राणी, तृण-तूलिका के समान इधर-उधर बिखेर दिए हैं।

प्रसाद के समूचे साहित्य में निष्फल यौवन, करुण प्रणय, दर्दीली स्मृति और व्यापक अवसाद की जो धूमिल निहारिका छाई हुई दिखाई पड़ती है उसके मूल में यही रहस्य है। पर वस्तुतः यह प्रसाद के साहित्य का केवल एक पक्ष है। उन्हें विश्वास है कि यह दुःख, आँसू और अवसाद वास्तविक नहीं इनके भीतर भी किसी-न-किसी परोक्ष संबल का सूत्र निहित है। इसीलिए उनका यह आश्वासन स्वर गूँजा है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"जिसे तुम समझे हो अभिशाप
जगत की ज्वालाओं का मूल
ईश का वह रहस्य वरदान
कभी मत जाओ इसको भूल।"

आत्मघात करने के लिए उद्यत बलराम की कलाई पकड़ कर रोकते हुए फिरोजा के इस कथन में—'सुख जीने में है मरने में नहीं'—वह उसे कर्मण्यता का उपदेश देती है—इसी विश्वास का प्रकाश प्रज्ज्वलित है। यह विश्वास अन्य कहानियों में भी प्रस्फुटित है।

इनकी कहानियों में जहाँ एक तरफ वेदना और करुणा की कसक है, वहीं दूसरी तरफ जिजीविषा संकल्प शक्ति और कर्मण्यता का मौन संदेश भी वर्तमान है। 'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'मधुआ', 'दासी', 'पुरस्कार', 'सलीम', 'गुंडा,' और 'सालवती' इसकी उदाहरण हैं।

प्रसाद पर यह आरोप पूर्णतया निराधार है कि उनकी आख्यायिकाओं में भावुकता का आतिशय्य है एवं यथार्थ जीवन से वे कटी हैं। वस्तुतः अतीत और कल्पना के क्रोड़ में पहुँचकर भी प्रसाद जी मानव जीवन की समस्याओं को पूर्णतया बिसार नहीं पाते। छाया की प्रयोगयुगीन कहानियों से लेकर इन्द्रजाल तक की प्रौढ़ रचनाओं में सामाजिकता की ओर उनकी दृष्टि बराबर लगी है। 'तानसेन' अंतर्जातीय विवाह के स्वर को समर्थन देता है। 'चित्तौर उद्धार' में बाल विधवा विवाह के औचित्य का प्रकाशन है और समाज का उस ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न है। 'करुणा की विजय' में वर्तमान समाज के आर्थिक असंतुलन पर करारा व्यंग्य है। अपनी बहन के हत्यारे १३ वर्षीय बालक को मुक्त करते हुए न्यायाधीश का निम्न कथन समाज की इस विषमता पर तीखा व्यंग्य है : "असहाय, निर्धन और अभिमानी तथा निर्बोध बालक के हाथ में शिशु का भार रख देना राष्ट्र के शुभ उद्देश्य की गुप्त रीति से, और शिशु की प्रकट हत्या करना है।"

'आँधी' संग्रह की 'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', 'ग्रामगीत', 'विजया', 'नीरा' 'अमिट स्मृति' आदि कहानियों में वर्तमान और उसकी समस्याओं का पूर्ण यथार्थ चित्र प्रस्तुत है। 'बेड़ी' का यह वाक्य स्वार्थ-लिप्त पिता का कितना सही चित्र प्रस्तुत करता है : "हे भगवान, भीख मँगवाने के लिए, पेट के लिए, बाप अपने बेटे के पैर में बेड़ी भी डाल सकता है और वह नटखट फिर भी मुस्कराता था। संसार तेरी जय हो।"[1]

---

१. प्रसाद : आँधी संग्रह, बेड़ी कहानी, पृ० ९०–९१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

मनुष्य परिस्थितियों के थपेड़े खाकर न केवल नास्तिक बन जाता है अपितु धीरे-धीरे उसमें मानवीयता का भी ह्रास होने लगता है, और वह अपने व्यक्ति जीवन तथा समाज दोनों ही क्षेत्रों में घोर विद्रोही बनकर जीता है। प्रसाद ने 'नीरा' के बुड्ढे के माध्यम से इस भयानक जीवन सत्य का उद्घाटन किया है।

'इन्द्रजाल' की 'देवरथ', 'छोटा जादूगर', 'विराम चिह्न' आदि कहानियों को देखकर भी यह नहीं कहा जा सकता कि भावुकता के वेग में यथार्थ जीवन और उसकी ज्वलंत समस्याओं को प्रसाद ने अपनी आख्यायिकाओं में स्थान नहीं दिया है।

प्रसाद के संपूर्ण साहित्य में देश भक्ति का भाव प्रधान है। कहानियों में भी यह भाव अपने चरम उत्कर्ष के साथ प्रस्तुत है। आकाशदीप, सालवती, और पुरस्कार कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

कहानियों में सामाजिक जीवन के प्रति प्रसाद के दो दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। एक वर्ग की कहानियों में वे भारतीय अतीत के प्रबल समर्थक और उसके प्रशंसक रूप में सामने आते हैं। वे इनमें प्राचीन मर्यादाओं और परंपराओं का खुले हृदय से समर्थन करते दिखाई देते हैं। 'शरणागत' (छाया), 'प्रतिमा' (प्रतिध्वनि) 'ममता', 'आकाशदीप' (आकाशदीप) और 'सालवती' (इन्द्रजाल) इसकी उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं। दूसरे वर्ग की वे कहानियाँ हैं जिनमें विकृत रूढ़ियों और परंपराओं के प्रति उग्र विरोध भाव मुखर है। वे समाज की व्यवस्था पर करारा प्रहार करते दिखायी देते हैं। 'गूदड़ी में लाल', 'करुणा की विजय' (प्रतिध्वनि) 'भिखारिन' (आकाशदीप), 'मधुआ', 'बेड़ी', 'घीसू', 'विजया', 'अमिट स्मृति', 'नीरा' (आँधी), 'छोटा जादूगर', 'विराम चिह्न' (इन्द्रजाल) इसी वर्ग की कहानियाँ हैं। व्यक्ति जीवन के बारे में भी उनकी धारणा आदर्श मण्डित है।

प्रसाद की नायिकाएँ सौंदर्य, प्रेम, क्षमा, लज्जा, शील और उत्सर्ग की आदर्श हैं। 'आकाशदीप' की चंपा, 'ममता' की ममता, 'स्वर्ग के खण्डहर में' की लज्जा, 'देवदासी' की पद्मा, 'चूड़ीवाली' की विलासिनी, 'आँधी' की लैला, 'दासी' की फिरोजा और इरावती, 'नीरा' की नीरा, 'पुरस्कार' की मधूलिका, 'सलीम' की प्रेमा, 'चित्रवाले पत्थर' की मंगला, 'देवरथ' की सुजाता और 'सालवती' की सालवती आदि नायिकाएँ भिन्न-भिन्न मुद्राओं में चित्रित एक ही आदर्श की अनेक रूप प्रतिमाएँ हैं, जो विशिष्ट व्यक्तित्व में भिन्न होकर भी प्राणवत्ता और गरिमा की दृष्टि से एक ही है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विभिन्न वर्गों से एकत्रित पुरुष पात्र भी प्रसाद की लेखनी से अंततः भले मानस बन जाते हैं और आदर्श पात्र के रूप में उपस्थित होते हैं। प्रसाद नारी पुरुष के मधुर संबंध को ही सृष्टि की सर्वप्रमुख सार्थकता मानते थे। यही कारण है कि उनकी प्रेम-व्यंजक कहानियाँ इसी धुरी पर घूमती नजर आती हैं। संसार से दूर एकांत कन्दरा की तपस्या को प्रसाद वास्तविक तप मानने के लिए तैयार नहीं हैं। कामायनी में उन्होंने कहा है—'तप नहीं केवल जीवन सत्य'। 'वैरागी' कहानी में भी उन्होंने अपना यही सिद्धांत व्यक्त किया है। प्रसाद जीवन में आचार-विचार और नैतिकता को किसी बाहरी विधि-विधान की कसौटी पर परखने के पक्षपाती नहीं थे। हृदय की शुद्धि को वे सच्ची शुद्धि मानते हैं। 'पाप की पराजय' की सुन्दरी नायिका अपनी अकाल ग्रस्त प्रजा के रक्षार्थ अपने सतीत्व तक को बेचने के लिए प्रस्तुत दिखायी देती है।

(५) कथावस्तु

प्रसाद ने अपनी कहानियों के लिए विशेषतः जीवन के मधुर पक्ष करुणा और प्रेम से ही कथानक का चुनाव किया है। 'गुलाम' और 'जहाँनारा' नामक कहानियों के अतिरिक्त छाया संग्रह की सभी कहानियों का विषय प्रेम ही है। 'ग्राम' में इसका प्रत्यक्ष अस्तित्व तो नहीं है पर परोक्ष अस्तित्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'प्रतिध्वनि' संग्रह की 'प्रसाद' और 'प्रलय' को छोड़कर अन्य सभी कहानियों में प्रेम और करुणा की ही विभिन्न भंगिमाएं चित्रित हैं। आकाश-दीप की प्रायः सभी कहानियों की आधार भूमि प्रेम ही है। 'आँधी' संग्रह की भी कोई कहानी प्रेम-विन्दु से परे प्रतीत नहीं होती। 'विराम चिह्न' के अतिरिक्त 'इन्द्रजाल' संग्रह की सभी कहानियों में प्रेम ही विभिन्न रूपों में चित्रित है।

वस्तु-चयन के क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से विचार करने पर यह तथ्य स्वीकार करना ही पड़ेगा कि प्रेमचन्द की कहानियों के समान प्रसाद की कहानियों में जीवन का सर्वाङ्गीण पक्ष विवेचित नहीं है। प्रसाद की कहानियों का संसार सीमित है। पर प्रसाद अपने सीमित क्षेत्र की जितनी गहराई तक पहुँचे हैं, एक भाव का जितनी सूक्ष्म गहराई तक चित्रण किया है, वह हिन्दी कहानी संसार में अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इस मधुर पक्ष के साथ ही कलह, कोलाहल, अभाव, शोषण, उत्पीड़न और सामाजिक वैषम्य का जैसा अर्थ-पूर्ण चित्रण प्रसाद ने अपनी कहानियों में किया है, वैसा विशुद्ध यथार्थवादी कहानीकारों की लेखनी द्वारा भी सम्भव नहीं बन पड़ा है। 'दुखिया', 'करुणा की विजय' (प्रतिध्वनि संग्रह), 'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी' 'विजया', 'अमिट स्मृति' (आँधी संग्रह) और 'छोटा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'जादूगर', 'विराम चिह्न' (इन्द्रजाल संग्रह) आदि कहानियाँ भाव शबल होने पर भी यथार्थ जीवन और उसकी नियमित समस्याओं से ही निर्मित हैं।

इसके अतिरिक्त वस्तु को उपस्थित करने का प्रसाद का कौशल भी अन्य लेखकों से विशिष्ट है। 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की कुछ कहानियाँ गद्यगीत के निकट हैं और कुछ 'रेखाचित्र' के। 'छाया' के प्रथम संस्करण की पाँच और द्वितीय संस्करण की छः परिवर्द्धित कहानियों में वस्तु-योजना में एकरूपता दिखायी पड़ती है। 'ग्राम' को छोड़कर सभी कहानियों में एकसूत्रता है। सभी कहानियों के कथानक स्पष्ट हैं। सभी के कथानक का विकास, आरम्भ, मध्य और अन्त के सोपानों को क्रमशः पार करके हुआ है। आरम्भ, मध्य और अंत हर कहानियों में अत्यन्त स्पष्ट है। उदाहरणस्वरूप 'चित्तौर उद्धार' कहानी का विकास लिया जा सकता है। प्रथम खण्ड में मालव कन्या का निवेदन और वीर राजकुमार हम्मीर का विधवा जानकर भी उसे ग्रहण की कथा है, दूसरे खण्ड में हम्मीर की चिन्ता और मालव-कन्या का पति को चिन्ता मुक्त करने के प्रयत्न का वर्णन है। तीसरे खण्ड में चित्तौर उद्धार के लिए युद्ध तथा अधिकार की कथा है।

'प्रतिध्वनि' की कहानियों के वस्तु संगठन में प्रसाद का दूसरा ही स्वरूप उपस्थित है। यहाँ लेखक बाह्य-जीवन की अपेक्षा अन्तस् में चलने वाले द्वन्द्वों के सूक्ष्म विवेचन की ओर उन्मुख हुआ है। और उसने इनकी संघटना के लिए स्थूल इतिवृत्तों का सहारा छोड़कर सूक्ष्म कथावृत्तों को ग्रहण किया है। इन सभी कहानियों में कथा की अपेक्षा व्यंजना की प्रधानता है। सूक्ष्म मनोवृत्तियों की मार्मिक विवृत्ति तीन रूपों में की गई है। (१) कुछ कथानकों में घटनाचक्र का सूक्ष्म निर्देश, परिस्थिति की सामान्य सूचना या अत्यंत झिलमिल-सा कथासूत्र दिखायी पड़ता है। उदाहरण के लिए क्रमशः 'प्रसाद', 'प्रलय' और 'उस पार का योगी' के कथानक लिए जा सकते हैं।

दूसरे प्रकार के कथानक ऐसे हैं, जो भाव-वृत्तों को स्पष्ट करने के साधन रूप में व्यवहृत हुए हैं। इनकी व्यंजना और संकेत से मूलभूत मनोभाव और मनःस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। 'गूदड़ साईं', 'गूदड़ी में लाल', 'अघोरी का मोह', 'पाप की पराजय', 'सहयोग', 'पत्थर की पुकार', 'करुणा की विजय', 'दुखिया' और 'प्रतिमा' कहानियों के कथानक इसी प्रकार के हैं। यहाँ 'गूदड़ साईं' का कथांश उदाहरण-स्वरूप लिया जा सकता है। मोहन से गूदड़ साईं की घनिष्टता है। किन्तु मोहन के आर्य समाजी पिता इस घनिष्टता से रुष्ट हैं। यह देखकर 'गूदड़ साईं' मोहन के घर आना बन्द कर देता है। एक दिन उसकी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

गूदड़ी लेकर भागते समय, और छीना-झपटी में एक बच्चे की असावधानी से उसका सर फूट जाता है। उस बच्चे को दण्ड देने के लिए तत्पर मोहन के पिता को वह विरत करता हुआ कहता है कि चोट से मुझे कोई कष्ट नहीं है, इन राम-रूप भगवान को प्रसन्न करने के लिए ही मैं छीना-झपटी करता हूँ। यहाँ कथानक द्वारा 'गूदड़ साईं' के चरित्र का निर्माण कर लेखक ने उसके माध्यम से भगवान-स्वरूप निश्छल बालकों के प्रति उसकी ममतालु स्नेह भावना का चित्रण कर दिया है। कथानक के आरंभ, मध्य और अंत का स्पष्ट निर्देश भी है।

तीसरे प्रकार के कथानक का स्वरूप 'खण्डहर की लिपि' और 'चक्रवर्ती का स्तंभ' नामक कहानियों में दिखायी देता है। ये कहानियाँ ऐतिहासिक हैं। इन कहानियों के कथानक बहुत स्पष्ट हैं। एक ओर तो ये भाव चित्रों के पृष्ठाधार रूप में आए हैं, दूसरी ओर इनके कथांश की संवेदना से भावों की विवृत्ति हुई है।

'आकाशदीप' की कहानियों में 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' की वस्तु संगठन संबंधी दो भिन्न दृष्टिकोणों का साथ-साथ व्यवहार है। एक तरफ 'आकाशदीप' 'ममता', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'देवदासी', 'चूड़ीवाली', 'अपराधी' आदि कहानियों में 'छाया' के कथानकों जैसा अत्यन्त स्पष्ट कथानक गृहीत है और दूसरी तरफ 'सुनहला सांप', 'हिमालय का पथिक', 'भिखारिन', 'प्रतिध्वनि', 'कला', 'वैरागी', 'बनजारा', 'प्रणय चिह्न', 'रूप की छाया', 'रमला', और 'बिसाती' कहानी के कथानक 'प्रतिध्वनि' की कहानियों की भाँति बड़े झीने हैं तथा विभिन्न भावों की विवृत्ति के लिए संकेत और व्यंजना का सहारा लिया गया है। इस समानता के बावजूद भी आकाशदीप की कहानियों में कला चरम विकसित रूप में उपस्थित है जो उन्हें 'छाया' और 'प्रतिध्वनि' से बिलकुल अलग खड़ा कर देती है।

'आकाशदीप' का लेखक 'छाया', 'प्रतिध्वनि' से बिलकुल अलग नए अस्त्र-शस्त्रों के साथ उपस्थित है। इसमें उसने 'नाटकीयता' जैसे अत्यन्त महत्वपूर्ण कौशल का प्रयोग किया। नाटकीयता के प्रयोग से कहानियों में रोचकता के साथ व्यंग्य भी तीव्र है जो पाठक पर स्थायी प्रभाव छोड़ता है।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार 'स्वर्ग के खण्डहर' और 'आकाशदीप' में भारतीय नाट्यशास्त्र के बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठापना पूर्ण सफलता से हुई है।[1] पर इसके साथ-साथ पाश्चात्य नाट्य-शिल्प की महत्वपूर्ण

१. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० २०१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अवस्था-संघर्ष का भी विनियोग हुआ है। डॉ० लाल ने 'सुनहला साँप', 'बिसाती', 'ममता' और 'बनजारा' जैसी छोटी कहानियों के कथासूत्रों में भी बीज, विकास और फलागम की प्रतिष्ठापना स्वीकार की है। पर सूक्ष्म कथानक को आधार बनाकर निर्मित कहानियों में इतनी तीव्रता और लक्ष्य के प्रति एकान्तिकता है कि उनमें विकास और फलागम नामक कार्यावस्थाओं की स्थिति आ ही नहीं पाती। 'बनजारा' और 'हिमालय का पथिक' नामक कहानी के कथानक इसी प्रकार हैं। 'हिमालय का पथिक' का कथानक संघर्ष की मध्यम अवस्था से प्रारंभ होकर वेग से चरमोत्कर्ष पर पहुँचता है और वहीं स्थिर हो जाता है। इसमें बीज, विकास और फलागम की कोई भी स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती। वस्तुतः इस वर्ग की कहानियों में परिस्थिति-जन्य प्रभाव के माध्यम से तीव्रता से चरम विन्दु पर पहुँच कर प्रभाव की पूर्ण योजना ही लेखक का लक्ष्य रहा है।

'आँधी' और 'इन्द्रजाल' की कहानियों के कथानक 'आकाशदीप' कहानियों के कथानक जैसे ही हैं। 'आँधी', 'दासी', 'व्रतभंग', 'पुरस्कार', 'मधुआ' (आँधी संग्रह) और 'इन्द्रजाल', 'सलीम', 'नूरी', 'भीख में', 'चित्रवाले' पत्थर', 'गुंडा', 'देवरथ' और 'सालवती' (इन्द्रजाल) कहानियों का वस्तु संगठन स्पष्ट ही 'आकाश-दीप,' के प्रथम वर्ग की कहानियों जैसा है। किन्तु 'घीसू', 'बेड़ी', 'ग्राम गीत', 'विजया', 'अमिट स्मृति', (आँधी) और 'परिवर्तन', 'संदेह', 'चित्र मंदिर', 'अनबोला' (इन्द्रजाल) आदि के कथानक 'आकाशदीप' की 'सुनहला साँप', 'हिमा-लय का पथिक', आदि जैसी द्वितीय वर्ग की कहानियों के समान है। कथानक की स्पष्टता, विकास रेखाओं का संकेत, नाटकीयता का समावेश और काव्या-त्मकता से उद्भावित व्यंजना आदि सभी तत्व दोनों वर्गों में एक समान विद्यमान हैं। पर दोनों वर्गों की कहानियों के कथानकों में स्पष्टता की दृष्टि से कुछ स्तर-गत अन्तर अवश्य है। इसके साथ ही ये कहानियाँ 'आकाशदीप' संग्रह की कहानियों से कुछ अलग-सी हैं। 'आकाशदीप' में कथांश की न्यूनता के कारण नाटकीयता, मनोरम-बिम्ब-विधान की योजना और रसात्मकता के सामंजस्य से रोचकता उत्पन्न करने की ओर लेखक की दृष्टि अधिक थी पर इन कहानियों में से अनेक में इनका प्रयोग बहुत अल्प है। 'विजया' और 'अमिट स्मृति' के कथानक इसके उदाहरण हैं।

प्रसाद ने अपने कहानी शिल्प में मूलतः एक नए कथानक तन्त्र को अपनाकर उस पर कई प्रयोग किए। उन्हें सामान्य शिल्प-विधान से भिन्न प्रयोग करने की प्रेरणा देने वाला मूल तत्व, उनका स्वयं का अपना दृष्टिकोण था जो 'छाया' के निवेदन में स्पष्ट है। छोटी-छोटी आख्यिकाएँ केवल विनोद के लिए ही नहीं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उनसे हृदय पट पर एक ऐसी छाया पड़ती है जो गम्भीर अथच प्रभावशाली होती है। मानव-हृदय को उनकी अपूर्णता, कल्पना के विस्तृत कानन में छोड़कर उसे घूमने का अवकाश देती है, जिसमें पाठकों को अद्भुत आनन्द मिलता है।

प्रसाद के कथानकों को स्थूल रूप से चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है प्रथम वर्ग के कथानक अत्यन्त अल्प और सूत्रात्मक हैं। इनमें भी कुछ में किसी मानसिक उद्वेलन के साथ भाव-विवृत्ति ही मूल लक्ष्य है। उनमें सूक्ष्मता विशेष (विसाती) है। और कुछ में स्थूल समस्याओं को ग्रहण कर उनके माध्यम से भाव विवृत्ति की गई है जिनमें स्थूलता है (विजया)। इनके कथानक अत्यन्त स्पष्ट हैं और प्रारंभ, विकास तथा अंत की स्थितियाँ स्पष्ट हैं। 'आँधी', 'आकाश-दीप' और 'इन्द्रजाल' की कुछ कहानियों के कथानकों में आरंभ और उत्कर्ष की स्थितियाँ ही विशेष स्पष्ट हैं।

विशुद्ध विवृत्ति का लक्ष्य लेकर लिखी गयी प्रतीकात्मक कहानियों में दूसरे वर्ग के कथानक गृहीत हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म हैं जिससे आरम्भ और अन्त की स्थितियाँ ही इनमें स्पष्ट हैं। पर संख्या में ये कम ही हैं। 'उस पार का योगी' (प्रतिध्वनि) और 'समुद्र सन्तरण' (आकाशदीप) इसके उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं जिनमें घटना का अभाव है, केवल परिस्थिति की सूचना मात्र है और उसी के सहारे अनुभूति की व्यंजना हुई है।

तीसरे वर्ग के कथानक उन कहानियों में दिखायी पड़ते हैं जो अपेक्षाकृत थोड़ी बड़ी हैं। इनमेंआरम्भ, विकास, अंत का स्पष्ट दर्शन होता है। कौतूहल-वृद्धि के लिए संघर्ष की विभिन्न स्थितियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। चरम सीमा की नाटकीय अवतारणा के पश्चात् कुछ नियतिमूलक अंत हुआ है। यहाँ भी कुछ कथानक उत्कर्ष विन्दु पर ही अवरुद्ध हो गए हैं (पुरस्कार)। ऐसे कथानकों में एकसूत्रता, सम्बद्धता आदि का विशेष ध्यान रखा गया है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'मधुआ', 'सलीम' और 'नूरी' के कथानक इसके उदाहरण हैं।

चौथे वर्ग के कथानकों में तीसरे वर्ग के कथानकों से थोड़ी बहुत भिन्नता है जो अपने विस्तृत परिधि के कारण ही हुआ है। इनमें लेखक की वातावरण निर्माण की रुचि का परिचय अधिक मिलता है। इन दीर्घ कहानियों में पताका, प्रकरी के समान ही चलने वाली कुछ छोटी-छोटी कथाओं का भी नियोजन है। इनमें नाट्य-शिल्प की कार्यावस्था और संधियों का विशेष ध्यान रखा गया है। इस प्रकार की कहानियों में लेखक का वस्तु-विन्यास कौशल अपने चरम विकसित रूप में उपस्थित है। लेखक ने अवान्तर प्रसंगों का अत्यन्त कलापूर्ण उपयोग किया है, कहीं भी वे अलग-थलग पड़ी नहीं दिखायी देतीं। 'स्वर्ग के खण्डहर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में', (आकाशदीप), 'आँधी' और 'दासी' ('आँधी') तथा 'सालवती, 'इन्द्रजाल' इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। 'दासी' कहानी में अनेक कथा प्रसंग हैं और अंत के पहले तक यह निर्णय कर पाना कठिन होता है कि कौन सी कथा प्रमुख है। इस प्रकार इसके अवान्तर प्रसंग कहानी को अपने स्तर से लेखक कौशल के कारण च्युत नहीं होने देते अपितु कहानी को अविस्मरणीय बनाने में योग देते हैं।

चारों वर्गों की कहानियों में लगभग समान रूप से आकस्मिकता और संयोग उपस्थित है पर कथानक के मुख्य आधार कहीं चरित्र हैं और कहीं संवेदनात्मक घटनाएँ। इसलिए संयोग के दोष उभर नहीं सके हैं। उदाहरण के लिए 'आँधी' कहानी में लैला का अपने प्रेमी रामेश्वर के मित्र से ही पत्र पढ़ाना, श्रीनाथ का अतिथि होना और लैला का वहीं डेरा लगाना आदि संयोग आधृत घटनाएँ ही हैं।

प्रसाद यहाँ तिलस्मी प्रभाव से अछूते नहीं रह पाए हैं। पर इनकी कहानियों में ये कहीं दोष रूप में उभर नहीं पाते। आकस्मिकता और संयोग का उपयोग कहानी को रोचक और जीवन्त बना देता है।

(६) पात्र-कल्पना

प्रसाद ने अपनी कहानियों में जीवन के विविध पक्षों से पात्रों का चयन किया है। पर विभिन्न वर्गों से आने पर भी इन पात्रों में अत्यधिक समानता है। प्रसाद के अनुरूप ही स्त्री-पुरुष सभी पात्र भावुक, सौन्दर्यनिष्ठ और प्रेमी हैं तथा जीवन के प्रति उनका एक ही दृष्टिकोण है। पर इन पात्रों का विकास परिस्थिति और देशकाल की विभिन्न स्थिति के अनुरूप होने के कारण वे एक दूसरे से अलग और अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनमें वैयक्तिकता का आग्रह अधिक है, इसलिए वे किसी वर्ग के प्रतिनिधि न लगकर व्यक्ति विशेष ही जान पड़ते हैं। 'गुलाम' कहानी का गुलाम कादिर, 'भिखारिन' की भिखारिन, 'देवदासी' की देवदासी पद्मा, 'छोटा जादूगर' का छोटा लड़का और 'गुण्डा' का ठाकुर नन्हकू सिंह आदि सभी पात्र यद्यपि वर्ग विशेष के चित्रण के उद्देश्य से योजित हैं, पर इनमें वर्गगत सामान्य विशेषताओं की अपेक्षा इनकी निजी विशिष्टता ही प्रधान हो उठी है। इसी प्रकार 'मधुआ' का शराबी, शराबी की विशिष्टताओं से युक्त होकर भी इस दुनियाँ को देखने-समझने की एक अलग दृष्टि रखता है। उसकी संवेदनशीलता तथा दार्शनिक दृष्टिकोण उसे असाधारण पात्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त प्रसाद के स्त्री-पात्रों में करुणा की कोमल छाप और उत्सर्ग भावना भी स्पष्ट दिखायी देती है। यह उन्हें बौद्धदर्शन से विरासत में मिली थी। पर प्रेम और मधुर लालसा सबके जीवन की मूल वृत्ति है और प्रसाद की कहानियों में इसी के विभिन्न स्वरूपों की भरमार है। कहीं कोई सामाजिक मर्यादा के सम्मुख घुटने टेककर बलि वेदी पर आत्म बलिदान कर देता है (रसिया बालम) और कहीं वह प्रतिशोध की ज्वाला में अपने विरोधी को जला कर स्वयं नष्ट हो जाने में तृप्ति अनुभव करती है (चन्दा) तथा कहीं वह मोना की तरह अपने को बिलकुल अलग और टूटी हुई समझकर एकान्त में बैठकर अपना जीवन बिता लेना चाहती है (स्वर्ग के खण्डहर में)। वस्तुतः डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का यह कथन सत्य है कि—"प्रसाद के व्यक्तित्व पर सबसे गहरा प्रभाव बौद्ध दर्शन का था और वे स्वयं स्वभावतः भावुक, सौंदर्य निष्ठ और प्रेमी थे फलतः इनके चरित्र बोध पर क्रमशः दो प्रभाव पड़े। एक ओर बौद्ध दर्शन के प्रभाव से इनके चरित्र अत्यन्त कारुणिक हो गए और दूसरी ओर भावुक और प्रेमी।"[१]

(क) नारी पात्र—बौद्ध दर्शन के प्रभाव से प्राप्त करुणा-भावना लगभग सभी नारी पात्रों के जीवन में किसी-न-किसी रूप में प्रवेश कर उन्हें एक धरातल पर ला उपस्थित करती है। चाहे वह प्रतिशोध में ज़ल रही 'चन्दा' की चंदा हो या चाहे 'गूदड़ी के लाल' के रूप में स्वाभिमान को सँजोकर रखनेवाली अज्ञात-नामा बुढ़िया हो, अथवा 'आकाशदीप' की कातर चंपा हो, 'आँधी' की उत्सर्ग-मयी लैला हो या नियति की ठोकर खाई हुई 'नूरी' की नूरी हो—सभी का जीवन करुणा से आप्लावित है।

प्रसाद के नारी चरित्र नाटक और काव्य की भाँति कहानियों में भी सम्पूर्ण परिस्थिति की नियामिका और संचालिका रूप में उपस्थित हैं। पर ये स्त्री शक्तियाँ कभी पुरुष को पतन की ओर नहीं ले जाती, वरन् पुरुषों को सर्वथा कर्त्तव्य का बोध कराती हुई उन्हें प्रेरणा प्रदान करती है। प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों के सम्पूर्ण नारी चरित्रों को तीन प्रेरक दिशाओं में विभक्त किया जा सकता है। (१) अतीत के गौरव और प्राचीन आदर्शों की प्रतीक ('जहाँनारा' की जहाँनारा, 'अशोक' की तिष्यरक्षिता, 'चित्तौड़ उद्धार' की राज कुमारी) (२) आधुनिक परिस्थिति के जीते जागते उदाहरण ('दासी' की

---

१. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल श्रीवास्तव : हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास, पृ० १७४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इरावती आदि) (३) प्रेम के नशे में सदा डूबे और उन्मत्त चरित्र ('तानसेन' की चंदा, 'पाप की पराजय' की नीरा आदि)।

कोमल नारी हृदय की मधुरिमा में अंतर्द्वन्द्व तथा प्रतिहिंसा की उद्भावना कर कठोरता का प्रकटीकरण प्रसाद की कला की विशिष्टता है। प्रसाद के इस गुण ने उनकी कहानियों को मानवीय धरातल से दूर नहीं जाने दिया है। यह कठोरता कहीं तो कर्त्तव्य की प्रेरक बनकर उपस्थित है ('पुरस्कार') और कहीं प्रतिशोध की आग के रूप में ('चंदा' तथा 'अशोक') और कहीं बलिदान की ज्योति बनकर आयी है ('देवरथ'), कहीं मान-या आत्म सम्मान का स्वरूप लेकर उपस्थित है, ('दासी' और 'भीख में')। 'आकाशदीप' की चंपा, 'पुरस्कार' की मधूलिका और 'आँधी' की लैला की परिस्थिति-जन्य कठोरता में कर्त्तव्य, प्रतिशोध, बलिदान और आत्म-सम्मान आदि सभी स्वरूप दिखायी देते हैं। वस्तुतः इस कसौटी में कसकर इन पात्रों का जो स्वरूप उभरा है वह नितान्त नवीन, अत्यन्त आकर्षक और सजीव है।

प्रसाद के नारी चरित्रों पर यदि विकास-क्रम से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि छाया तथा प्रतिध्वनि संग्रह की नारियाँ अपने पूर्ण विकसित व्यक्तित्व में नहीं उपस्थित हैं। कहीं कोई रेखा अधिक उभार पा गई है और कोई कम। 'चित्तौर उद्धार' की राजकुमारी इसका उदाहरण है, जो पति के लिए पिता के किले का दरवाजा खोल देती है। वह पति-भक्ति में पिता के प्रति अपने कर्त्तव्य भाव को भूल-सी जाती है। 'पाप की पराजय' की केतकी बन की रानी, 'सहयोग' की मनोरमा, 'कलावती की शिक्षा' की कलावती, 'दुखिया' की दुखिया आदि नायिकाओं के चित्र अत्यन्त अधूरे और धुंधले से प्रतीत होते हैं। पर आकाशदीप तक आकर लेखक ने उत्कृष्ट चरित्रांकन कला का उदाहरण प्रस्तुत किया है। 'चित्तौर उद्धार' की रानी की स्थिति तथा 'आकाशदीप' की चंपा की स्थिति समान है पर जहाँ रानी एक साथ पिता और पति के प्रति कर्त्तव्य निर्वाह में असफल सिद्ध हुई है, वहीं चंपा अपने प्रेमी तथा पिता दोनों के प्रति कर्त्तव्यों का सम्यक् निर्वाह करती है। इस संग्रह की लगभग सभी कहानियों में सशक्त नारी चरित्र का निर्माण है। नारी चरित्रों की इस प्रधानता से पुरुष पात्र कुछ कमजोर हो गए हैं। 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'वैरागी', 'बनजारा', 'अपराधी' आदि कहानियाँ इस कथन को शक्ति प्रदान करती हैं।

'आँधी' की लैला, 'दासी' की फिरोजा, और इरावती, 'घीसू' की बिन्दो, 'नीरा' की नीरा तथा 'पुरस्कार' की मधूलिका में भावुकता कम जीवन के यथार्थ तत्वों का आधिक्य है। 'इन्द्रजाल' संग्रह की कहानियों में नारी-पात्रों का पूर्ण

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विकास दिखायी देता है। 'इन्द्रजाल' की बेला, 'सलीम' की प्रेमा, 'नूरी' की नूरी और 'चित्रवाले पत्थर' की मंगला, 'गुण्डा' की पन्ना और दुलारी, 'देवरथ' की सुजाता तथा 'सालवती' की सालवती के व्यक्तित्व में तो प्रसाद की नारी भावना की विभिन्न परिस्थितियों और भिन्न-भिन्न मुद्राओं में अंकित किए गए चित्र सजीव हो उठे हैं।

(ख) पुरुष पात्र--नारी पात्रों के समान ही प्रसाद के पुरुष पात्र भी भावुक, सुन्दर, प्रेम-निष्ठ और मनस्वी होने के साथ-साथ किसी-न-किसी अन्तर्द्वन्द्व से आक्रांत हैं। उनका यह दाह उन्हें उत्कट आत्मबल प्रदान करता है तथा उत्सर्ग की भावना से उद्वेलित करता है। 'रसिया बालम' का रसिया, 'आकाशदीप' का बुद्धगुप्त, 'दासी' का बलराज, 'पुरस्कार' का अरुण, 'इन्द्रजाल' का गोली, 'गुण्डा' का नन्हकू सिंह, 'सालवती' का अभय आदि सभी पुरुष चरित्रों के व्यक्तित्व की मूल प्रेरक शक्ति यही अंतर्द्वन्द्व है।

स्त्री चरित्रों की भाँति ही प्रसाद के पुरुष चरित्रों के भी अनेक स्तर दिखायी पड़ते हैं। प्रारंभिक कहानियों के पात्र एकांगी से प्रतीत होते हैं। यद्यपि 'छाया' संग्रह की कहानियों में 'गुलाम' कहानी का गुलाम कादिर और 'मदन मृणालिनी' का मदन अपेक्षाकृत अधिक विकसित व्यक्तित्व के रूप में उपस्थित हैं, पर फिर भी वे एकांगी से प्रतीत होते हैं। मृणालिनी के लिए मदन द्वारा किया गया त्याग निश्चय ही असाधारण है पर सिर्फ जाति-भेद के कारण मृणालिनी को अपनाने से इनकार कर देना न तो संगत प्रतीत होता है और न स्वाभाविक। 'आकाशदीप' के पुरुष पात्र स्त्री पात्रों की तुलना में दबे-दबे से जान पड़ते हैं। यद्यपि 'वैरागी', 'बनजारा', 'बिसाती', 'हिमालय का पथिक', आदि कहानियों का नामकरण पुरुष पात्रों के ही आधार पर हुआ है। पर पुरुष पात्रों के क्रिया-कलाप स्त्री पात्रों से ही संचालित होते हैं और कहानी का केन्द्रविन्दु स्त्री पात्रों के ही हाथ में दिखायी देता है।

प्रसाद के पुरुष चरित्रों का स्वाभाविक विकास हमें 'आँधी' संग्रह की कहानियों में 'घीसू', 'वेड़ी', 'मधुआ', 'अमिट स्मृति' और 'पुरस्कार' में दिखायी देता है। वस्तुतः जीवन की विविध स्थितियों, समस्याओं से संचालित ये पात्र अपने आप स्वयं विकसित होते हैं। और 'इन्द्रजाल' तक आकर प्रसाद के पुरुष पात्र पूर्ण विकसित, सहज मानवीय एवं अत्यन्त परिचित से लगने लगते हैं। गोली (इन्द्रजाल), छोटा जादूगर (छोटा जादूगर), ब्रजराज (भीख में), नन्हकू सिंह (गुण्डा), सलीम (सलीम) और अभय (सालवती) इसी प्रकार के पात्र हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद के इन चरित्रों का विशिष्ट गुण है उनका विरागमिश्रित अनुराग और विवृत्ति मूलक सन्यास के विरुद्ध प्रवृत्ति की कर्मण्यता से व्यक्तित्व को निखारने वाली तपस्या की अग्नि। सामाजिक मर्यादा के स्तर से च्युत पात्र भी इस तपस्या की अग्नि में तपकर अपने कलुष को जलाकर अत्यन्त पवित्र बन जाते हैं। मंगला (चित्रवाले पत्थर), सुजाता (देवरथ), सालवती (सालवती) आदि परिस्थितिवश अथवा मानवीय दुर्बलतावश नारी मर्यादा से स्खलित नारियाँ हैं किन्तु इनके जीवन में जो अगला मोड़ उपस्थित किया गया है उस पर चलती हुई ये नारियाँ अंधकार के गर्त से निकल कर उज्ज्वल आलोक में पहुँच जाती हैं। 'चूड़ीवाली' जैसी वेश्या भी अपने इसी तप के कारण 'तितली' उपन्यास की तितली जैसी पवित्र कुलवधू बन जाती है। 'आकाश दीप' की चंपा 'बनजारा' की मोना और 'देवरथ' की सुजाता का विराग मिश्रित राग भी एक तप ही है।

पुरुष पात्रों में इस तप का आलोक 'आकाशदीप' के बुद्धगुप्त और 'गुण्डा' के नन्हकू सिंह में अधिक दिखायी देता है। दुर्दान्त जलदस्यु बुद्धगुप्त भी इसी ज्वाला में पिघल कर अत्यन्त कोमल बन जाता है, और अपनी विशाल संपत्ति, साम्राज्य का त्याग कर बैठता है। नन्हकू सिंह भी बाहर से अत्यन्त दुर्धर्ष गुण्डा है किंतु भीतर से अत्यन्त कोमल।

कहानी का लक्ष्य चरित्रांकन का नहीं होता। उसकी छोटी सीमा में यह संभव भी नहीं है। इसीलिए कहानीकार को आरंभ से लेकर अंत तक अत्यन्त सतर्क रहना पड़ता है कि कहीं चरित्र उद्घाटन का सुअवसर नष्ट न हो जाए। इसीलिए प्रसाद जी पात्रों का परिचय देते समय ही उसके व्यक्तित्व का पूरा खाका खींच देते हैं। कहीं यह परिचय वर्णन द्वारा होता है और कहीं मात्र संकेत द्वारा। कहानी में अवसर मिलने पर पात्रों के क्रिया-कलापों, कथोपकथनों और परिस्थिति के सूक्ष्म निर्देशों द्वारा यथास्थान वे उनकी विविध विशेषताओं को उद्घाटित करते चलते हैं। वैसे प्रसाद ने चरित्र-चित्रण में व्याख्या का कम, व्यंजना और संवेदना का अधिक सहारा लिया है।

लेखक द्वारा प्रारम्भ में ही नायिका ममता का दिया गया रूप चित्र यहाँ द्रष्टव्य है—"रोहतास दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण प्रवाह को देख रही है। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी, आँखों में पानी की बरसात लिए वह सुख के कंटक शयन में विकल थी। वह रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की अकेली दुहिता थी···परन्तु विधवा थी···तब उसकी विडम्बना का कहाँ अन्त था।"[१]

लेखक व्यंजना द्वारा उपर्युक्त पंक्तियों में ममता के संबंध में सब कुछ बता जाता है, जहाँ वह उसके यौवन का रूप खींचता है वहीं वह उसके अंतस् में चल रहे आन्दोलन को रूपायित करता है।

प्रसाद ने मनोवैज्ञानिक चित्रणों द्वारा व्यक्तित्व के भीतर छिपी प्रकाश रेखाओं को आलोकित किया है और इसके द्वारा उन्होंने यह बताने का प्रयत्न किया है कि बुरे-से-बुरे मनुष्य में भी अच्छाई की कोई-न-कोई किरण अवश्य विद्यमान रहती है। 'मधुवा' का शराबी इसका उदाहरण है। एक तरफ उसमें शराबी के सभी दुर्गुण विद्यमान हैं और दूसरी तरफ उसमें मानव संवेदना का भी अभाव नहीं है। एक बालक का दुखी जीवन उसके जीवन में भी पूर्णतया नवीन मोड़ उपस्थित कर देता है। उस दीन-हीन बालक की करुण गाथा, सिसकी और आँसू शराबी के कठोर हृदय को पिघला देते हैं।

चरित्र विकास को दिखाने के लिए प्रसाद जी ने विभिन्न मानसिक या व्यावहारिक परस्पर विरोधी घात-प्रतिघात की बिंबात्मक अवतारणा की है और उसके आलोक में पात्रों की मनःस्थिति का आकर्षक चित्र अपने आप आ उपस्थित होता है। 'चंपा' (आकाशदीप) और 'मधूलिका' (पुरस्कार) के व्यक्तित्व को निखार देने के लिए प्रसाद जी ने इसी कौशल का उपयोग किया है। राष्ट्रप्रेम और व्यक्ति प्रेम के अंतर्द्वन्द्व में झूलती हुई मधूलिका की दुविधा-पूर्ण मनःस्थिति का अन्धकाराच्छन्न प्रकृति से सारूप्य दिखलाकर जो बिंबात्मकता उत्पन्न की गई है, उससे मधूलिका का व्यक्तित्व ही जीवंत हो उठा है। एक तरफ उसे उसका वंश गौरव और राष्ट्रप्रेम खींच रहा है, दूसरी तरफ उसका व्यक्तित्व-प्रेम आकर्षित कर रहा है। इस अंतर्द्वन्द्व और दो विरोधी परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से मधूलिका के चरित्र पर कितना प्रकाश पड़ता है, इसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है।

"पथ अंधकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़-तम से घिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी, पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी— वह क्यों सफल हो?. .मगध कोशल का चिर शत्रु! ओह, उसकी विजय... सिंहमित्र कौशल का रक्षकवीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है?

१. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह, ममता कहानी से, पृ० २५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं, नहीं। 'मधूलिका!' 'मधूलिका!!' जैसे उसके पिता उसे अंधकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी, रास्ता भूल गयी।"[१]

नाटकीय स्थिति, नाटकीय चित्रों और नाटकीय व्यंजना की सहायता से चरित्र की समस्त भंगिमाओं के उद्‌घाटन करने की कला में प्रसाद बेजोड़ कहानीकार हैं। 'पुरस्कार' कहानी के अंतिम अंश में इसका सुन्दर उदाहरण दिखायी देता है। कर्त्तव्य की प्रेरणा से प्रेरित मधूलिका ने अरुण के कुचक्रों से श्रावस्ती दुर्ग को तो बचा लिया पर व्यक्तिगत प्रेम के प्रति उपेक्षा भाव तथा अरुण के ऊपर आई हुई विपत्ति की उसके हृदय पर हुई प्रतिक्रिया का विवरण देने का लेखक ने प्रयत्न नहीं किया है। वह अंतर्द्वन्द्व पूर्ण मनःस्थिति को सिर्फ एक वाक्य में प्रकाशित कर देता है—"तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले, कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।"

संवादों द्वारा संकेत रूप में चरित्रों को अलोकित करने की कला इतनी बारीक और पेशल हो गई है कि उससे चरित्र की विभिन्न भंगिमाओं का प्रकाशन तो होता ही है, कहानी की रसात्मकता में भी अभिवृद्धि होती है, उदाहरणार्थ एक दासी, राजमाता पन्ना और दुलारी का निम्नलिखित वार्तालाप नन्हकू सिंह के चरित्र पर स्पष्ट तथा पन्ना के चरित्र पर जो सूक्ष्म प्रकाश डालता है वह द्रष्टव्य है—

"महारानी! नन्हकू सिंह अपनी सब जमींदारी स्वांग, भैंसों की लड़ाई, घुड़दौड़ और गाने-बजाने में उड़ाकर अब डाकू हो गया है। जितने खून होते हैं, सब में उसका हाथ रहता है।" उसे रोककर दुलारी ने कहा—'यह झूठ है। बाबू साहब के ऐसा धर्मात्मा तो कोई है ही नहीं। कितनी विधवाएँ उनकी दी हुई धोती से अपना तन ढकती हैं। कितनी लड़कियों की शादी-व्याह होता है...।'

"रानी पन्ना के हृदय में तरलता उद्वेलित हुई। उन्होंने हँसकर कहा, "दुलारी वे तेरे यहाँ आते हैं न। इसी से तू उनकी बड़ाई...।"

"नहीं सरकार, शपथ खाकर कह सकती हूँ, कि बाबू नन्हकू सिंह ने आज तक कभी मेरे कोठे पर पैर नहीं रखा।"

"राजमाता न जाने क्यों इस अद्‌भुत व्यक्ति को समझने के लिए चंचल हो उठीं थीं। तब भी उन्होंने दुलारी को आगे कुछ न कहने के लिए तीखी दृष्टि से देखा।"[२]

---

१. प्रसाद : आँधी संग्रह, पुरस्कार कहानी से, पृ० १५३।

२. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह की 'गुण्डा' कहानी से, पृ० ९१-९२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस संवाद द्वारा लेखक एक तरफ नन्हकू सिंह के दो विरोधी पक्षों को स्पष्ट करता है, दूसरी ओर पन्ना के हृदय में छिपे हुए नन्हकू के संचित प्रेम का भी संकेत कर देता है। यही वह स्थल है जहाँ पर पहली और अंतिम बार यह पता लगता है कि नन्हकू सिंह का प्रेम एकांगी न था। पन्ना राजरानी है उसे अपनी मर्यादा निभानी है। पर उसे यह सोच कर ही कष्ट होता है कि उसका प्रेमी किसी अन्य नारी को भी प्रेम कर सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रसाद के चरित्र-चित्रण में पात्रों की आत्म-चिंतना के रूप में आए निर्देश, लेखक द्वारा दिए गए वर्णनात्मक संकेत और चरित्रों का उद्घाटन करने वाले कथोपकथन, प्रगीत काव्य जैसी वैयक्तिक अनुभूतियों की तीव्र व्यंजना, नाटकीय कौशल और उच्चकोटि की लाक्षणिकता का अद्भुत समावेश हुआ है।

(७) नाटकीय कौशल

प्रसाद की कहानियों का सर्वप्रमुख और विभेदक गुण है—नाटकीयता। इसके तीन रूप कहानियों में मिलते हैं (१) संवाद के रूप में, (२) संघर्ष के रूप में और (३) चरमोत्कर्ष के विधान रूप में।

संवाद—कहानियों में प्रसाद के संवादों के दो रूप दृष्टिगोचर होते हैं। एक तो वह स्थिति है जहाँ कथोपकथन के स्वरूप और भाव दोनों तत्त्वों में नाट-कीयता का समावेश दृष्टिगत होता है। उदाहरण के लिए "आकाशदीप' का निम्न अंश लिया जा सकता है—

"वन्दी!"
"क्या है? सोने दो।"
"मुक्त होना चाहते हो?"
"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर!"
"फिर अवसर न मिलेगा।"
"बड़ा शीत है, कहीं से कम्बल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"
"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे वन्धन शिथिल हैं।"
"तो क्या तुम भी वन्दी हो?"
"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"[१]

---

१. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह, आकाशदीप कहानी से, पृ० ९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

दूसरे प्रकार के संवादों में केवल कथोपकथन के भाव-तत्त्व में ही नाटकीयता दिखायी देती है। वस्तुतः सम्वद्ध पात्रों की मुद्रा, स्थिति, वातावरण और क्रिया-कलापों के निर्देश के कारण संवादों की स्वरूपगत नाटकीयता अंशतः दब सी जाती है। 'सालवती' कहानी का एक अंश उदाहरण के लिए यहाँ प्रस्तुत है:

"वृद्ध ठठाकर हँस पड़ा। उसने कहा, 'मेरा उपास्य मेरी झोपड़ी में है, इस सदानीरा में है, और मेरे परिश्रम में!'

—सालवती चकित हो देखने लगी।

वृद्ध ने कहा, 'चौंक मत बेटी! मैं हिरण्यगर्भ का उपासक हूँ। देख, सदानीरा की शिलाओं में स्वर्ण की प्रचुर मात्रा है।'

'तो क्या पिता जी! तुमने इसीलिए इन काले पत्थरों से झोपड़ी भर रखी है?' सालवती ने उत्साह से कहा।"[१]

पर इन्हें सरलतापूर्वक अलग कर पाना दुष्कर है। प्रायः इनका मिश्रित रूप ही प्रसाद की कहानियों में व्यवहृत है।

प्रसाद मूलतः कवि और नाटककार थे। इसी कारण साहित्य के जिस क्षेत्र में भी उन्होंने हाथ लगाया उसमें नाटकीय तथा काव्यात्मक गणों को वे तिलांजलि नहीं दे पाए। कहीं यह दोष के रूप में भी सामने आया है पर कहानी की तो यह आत्मा होता है। और आधुनिक कहानियों के स्वरूप तथा संवादों में इस तत्व का सामंजस्य आवश्यक होता है। नाटकीयता की यह योजना ही कहानी को अविस्मरणीय बनाती है। प्रसाद ने अपनी इस कला का सुन्दर और समुचित उपयोग किया है। कहानियाँ इसी नाटकीय योजना के कारण पाठक के मानस पर स्थायी प्रभाव छोड़ती हैं।

प्रसाद के कथोपकथन की यह विशेषता है कि वे कथानक में आगे आने वाली घटनाओं की ओर भी संकेत करके, कुतूहल का संवर्द्धन करते हुए पात्रों की चरित्र-गत भंगिमाओं का भी नाटकीय ढंग से उद्‌घाटन करते चलते हैं। अनेक कहानियों में देश, काल तथा परिस्थिति के विभिन्न पक्षों का चित्र संवादों में इतने नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि कहानी का वातावरण अद्‌भुत जीवंत हो उठा है। उदाहरणसरूप 'सालवती' कहानी में आठों कुलपुत्रों, मगध राज के महामंत्री और सालवती के संवादों को लिया जा सकता है।

'छाया' और 'प्रतिध्वनि' के अधिकांश संवाद ऋजु और सुष्ठु होने पर भी भावशवल हो गए हैं। 'आकाशदीप' के सूक्ष्म कथानक वाली कहानियों के संवाद

---

१. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह, सालवती कहानी से, पृ० ११७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

भी लगभग इसी ढग के हैं। किंतु जहाँ कथानक स्पष्ट है उनमें सवादों का स्वाभाविक स्वरूप दिखायी पड़ता है।

(८) संघर्ष एवं चरम सीमा का विधान

कहानियों में तीन प्रकार के सघर्षों की योजना प्रायः की जाती है—(क) मनुष्य का भौतिक जगत से संघर्ष, (ख) मनुष्य का मनुष्य से संघर्ष और (ग) मनुष्य का अपने ही दो विरोधी भावों से संघर्ष।

प्रसाद की कहानियों में संघर्ष के ये तीनों रूप दिखायी पड़ते हैं, कहीं अलग-अलग, कहीं साथ-साथ और कहीं तीनों का मिला जुला स्वरूप। प्रसाद ने कथानक को गति और चरित्रों को निखार देने में संघर्ष के आयोजन से सर्वाधिक सहायता ली है।

प्रसाद की प्रारम्भिक कहानियों में पहले और दूसरे प्रकार के संघर्ष का स्वरूप ही दिखायी पड़ता है। चंदा' की चंदा, 'रसिया बालम' के रसिया, 'गुलाम' के कादिर का संघर्ष अपने आसपास की परिस्थिति से ही है। 'देवदासी', 'इन्द्र-जाल', 'चूड़ीवाली' और 'आँधी' कहानियाँ भी इसी प्रकार की हैं। उपर्युक्त प्रथम दो कहानियों में जहाँ दो पुरुषों में एक नारी के लिए प्रतिस्पर्धा है वहीं अंतिम दो कहानियों में दो नारी एक पुरुष के लिए परस्पर संघर्षरत हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि (क) और (ख) वर्ग के संघर्ष की अवतारणा प्रायः चरित्र का विकासक्रम दिखाने के उद्देश्य से की गई है पर अंततः इन दोनों की चरम परिणति अंतःसंघर्ष के रूप में चित्रित हुई है। 'आकाशदीप' और 'पुरस्कार' कहानी इसके उदाहरण हैं। दोनों में क्रमशः चंपा और मधूलिका का प्रारंभिक द्वन्द्व बाह्य द्वन्द्व ही है पर इसकी चरम परिणति क्रमशः बुद्धगुप्त और अरुण के अंतः संघर्ष के रूप में ही होती है:

"जैसे वेला से चोट खा कर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ। या जलते हुए स्वर्ण-गोलक सदृश अनंत जल में डूब कर बुझ जाऊँ?"

यहाँ चम्पा के हृदय में उसका अपना और प्रकृति का वाह्य संघर्ष दोनों एकीभूत होकर समा जाते हैं। वह बुद्धगुप्त को घृणा करना चाहकर भी घृणा नहीं कर पाती और अपने को प्रेम करने से नहीं रोक पाती।

प्रसाद ने संघर्ष की अवतारणा के लिए कथानक को मोड़ या तनाव देकर एक विशेष कौशल से नाटकीय चित्र विधान की योजना की है। जिसके परिणाम स्वरूप कहानियों में गतिवत्ता और पात्रों के व्यक्तित्व में नवीनता आ गई है। विभिन्न प्रकार के बाह्य और आन्तरिक संघर्ष, सोपान पर सोपान जोड़ते हुए,

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कुतूहल की सृष्टि करते जाते हैं और अंतिम संघर्ष के साथ पिछले सभी संघर्षों के प्रभाव घनीभूत होकर चरम सीमा में अन्तर्लीन हो जाते हैं। 'बिसाती' कहानी को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। इसमें बाह्य संघर्ष की स्थिति को अप्रत्यक्ष रखते हुए ही कथानक पर पड़ते शीरी के अन्तर्द्वन्द्व के सूक्ष्म प्रभाव को नाटकीय कौशल से रूपायित किया गया है। प्रथम दृश्य में प्रकृति के सान्निध्य में शीरी अपने प्रेमी बुलबुल के लिए आकुल दिखायी देती है दूसरे दृश्य में शीरी के मानसिक अवसाद का और सघन चित्रण हुआ है। वह अपने प्रेमी के कष्टों की सोच में डूबी पड़ी है। उसकी इच्छा है कि वह हिन्दुस्तान के हर गृहस्थ के पास इतना धन रख दे कि अनावश्यक होने पर भी वे उसके प्रेमी की सभी वस्तुएँ खरीद कर उसका बोझ हल्का कर दें। तीसरे दृश्य में लेखक एक हल्का-सा बाह्य संघर्ष का आभास देता है। शीरी का व्याह एक धनी सरदार से हो गया। शीरी की मानसिक अवस्था यहाँ थोड़ी बदली नजर आती है, वह प्रकृति में अपना ही द्वन्द्व देखती और सहती है। और यहीं चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर लेखक एकाएक ही अंत की अवतारणा अत्यन्त नाटकीय ढंग से कर देता है। घूमता-फिरता शीरी का प्रेमी युवक पीठ पर गट्ठर लादे शीरी के दरवाजे पर पहुँचता है। शीरी को उपहार देने की इच्छा से उसका पति सरदार युवक से कुछ कश्मीरी सामानों को खरीदना चाहता है, पर प्रेमी युवक के इस उत्तर पर कि मैं उपहार देता हूँ, बेचता नहीं, सरदार नाराज होकर सामान उठा ले जाने की आज्ञा देता है। ऐसी परिस्थिति में भी शीरी चुप ही रहती है और अपने मन के भीतर चल रहे भीषण अंतर्द्वन्द्व को प्रत्यक्ष नहीं होने देती। थोड़ी देर में लौटकर आने का बहाना करके युवक अपना गट्ठर छोड़कर चला जाता है। बाह्य तथा भीतरी संघर्षों के विभिन्न मोड़ों से होती हुई कहानी यहाँ आकर अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और युवक के साथ-साथ लेखक भी कहानी को छोड़कर अलग जा खड़ा होता है। संघर्ष की नाटकीय योजना द्वारा ही लेखक ने एक सूक्ष्म कथानक के आधार पर इतनी बड़ी कहानी की योजना कर डाली है। अपने इसी कौशल द्वारा लेखक ने शीरी और बुलबुल का चरित्र अत्यन्त उत्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया है। प्रसाद ने प्रायः सभी उत्कृष्ट कहानियों को गति प्रदान करने में इस पद्धति को अपनाया है और संघर्ष की चरम स्थिति पर पहुंच कर कथानक को सहसा समाप्त कर दिया है। आकाशदीप, आँधी, पुरस्कार, मधुआ, नूरी, गुंडा, देवरथ और सालवती सब में यह कौशल द्रष्टव्य है। इसी कौशल के परिणामस्वरूप 'पुरस्कार' कहानी की चरम सीमा अत्यधिक नाटकीय और व्यंजक बन सकी है। देशभक्ति के कारण राजा की अनुग्रह की अधिकारिणी मधूलिका राजा के बार-बार पुरस्कार

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

माँगने के आग्रह पर अपने मृत्युदण्ड प्राप्त प्रेमी अरुण के पास जाकर खड़ी हो जाती है और केवल इतना कहती है कि "तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।" उसे मृत्युदण्ड मिला या उसके अपराधी प्रेमी को भी उसके कारण जीवन-पुरस्कार, इसे पाठक के निर्णय पर छोड़ लेखक कहानी को यहीं छोड़ देता है तथा पाठक को मिलती है एक तिलमिलाहट और खीझ। वस्तुतः यही तो श्रेष्ठ कहानी की पहचान है। प्रसाद अपने इस कौशल में बेजोड़ हैं।

राजेन्द्र यादव के अनुसार—"भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति उनकी (प्रसाद) अनुरक्ति कहानियों के वातावरण, काल, घटनास्थल, पात्र इत्यादि के चुनाव में भी प्रकट है। लेकिन उनका झुकाव छायावादी काव्य-बोध का ही है। उनकी 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'व्रतभंग', 'देवरथ' इत्यादि कहानियाँ प्रायः व्यक्तिगत भावना और स्थापित नैतिकता का द्वन्द्व सामने रखती हैं, वहाँ विकल्प, भावना और कर्त्तव्य का है—कभी यह कर्त्तव्य, राष्ट्रप्रेम, कभी मठमर्यादा और कभी पारिवारिक शत्रुता के निर्वाह का है। इस द्वन्द्व में छटपटाती और उसमें कर्त्तव्य की ओर झुकती हुई उनकी कहानियों की नायिकाएँ अकसर उस मानसिक स्थिति की शिकार हैं जिसे मनोविज्ञान में 'एम्बिलेन्सी' कहते हैं। अर्थात् एक ही व्यक्ति या वस्तु के प्रति प्यार और घृणा की समान तीव्र भावना का होना।"[१]

वातावरण

"प्रसाद की कहानियों में वातावरण के भाव पूर्ण चित्रण पर जोर है जिससे पाठक कथासूत्र को पकड़ कर सहज वेग से आगे नहीं बढ़ता, बल्कि परिदृश्यों की सौंदर्य छटा में उनका मन उलझता रमता चलता है।"[२]

वातावरण आधुनिक कहानी का सर्वप्रमुख तत्त्व है। इसकी सृष्टि द्वारा लेखक कथ्य के प्रति पाठक के मन में अधिक विश्वसनीयता का भाव उत्पन्न करता है। उसे वह कल्पनालोक की वस्तु न रहने देकर जीवन के दैनंदिन में घटने वाली घटना मानने के लिए बाध्य होता है। प्रसाद ने अपनी हर कहानियों में वातावरण का सजीव निर्माण किया है। उनकी अधिकांश कहानियों में चाहे वे ऐतिहासिक हों या अनैतिहासिक, उनके कथानक में वातावरण इतने सघन रूप में समाया हुआ है कि पाठक के मनोजगत में कहानी की प्रभावान्विति के साथ-साथ उसकी

---

१. राजेन्द्र यादव : कहानी : नई कहानी तक, पृ० २३।

२. शिवदान सिंह चौहान : हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष, पृ० १८०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

एक स्पष्ट हलकी सी छाया उभर आती है। पाठक के मनोजगत की यह प्रक्रिया कहानी पढ़ना प्रारंभ करने से शुरू होती है और कहानी के अन्त तक पाठक कहानी से सम्बद्ध देश-काल और परिस्थिति की अनुभूति से पूर्णतया अभिभूत हो जाता है। वस्तुतः इसका प्रमुख कारण यह है कि लेखक ने वातावरण और कथानक को दो भिन्न उपादान न मान कर उन्हें एक रूप में ग्रहण किया है और उसी के अनुरूप उनकी योजना भी की है। बात भी सही ही है कि वातावरण की योजना कथानक को तीव्रतम बनाने के लिए की जाती है। और यदि वातावरण की योजना लेखक अलग से न करके कथानक के साथ ही करता है तो कहानी निश्चय ही अधिक प्रभावपूर्ण बन जाती है। वातावरण निर्माण की इस कुशलता को दृष्टि में रखकर ही डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल ने कहा है—"वातावरण का निर्माण प्रसाद की कहानी-कला की सबसे बड़ी मौलिकता है। मुख्यतः ऐतिहासिक और भावात्मक कहानियों में वातावरण का निर्माण आश्चर्यजनक हुआ है।"[१]

प्रसाद जी की यह अपनी विशेषता है और अपनी इसी अत्यधिक प्रभावपूर्णता के कारण उनकी अनेक कहानियाँ हिन्दी कहानी जगत में महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं। उदाहरण के लिए 'पुरस्कार', कहानी ली जा सकती है। इसका कथानक वातावरण से इतना अभिन्न है कि उसे अलग नहीं किया जा सकता। दोनों के एक-रूप चित्रण से ही कहानी का आरम्भ होता है। दूर तक परिस्थिति अंकन के रूप में वातावरण और कथानक आपस में घुले-मिले चलते हैं। लेखक ने कहानी के प्रारंभ में अपने चित्रण-कौशल के माध्यम से इन्द्र पूजनोत्सव के अनुरूप प्रकृति का चित्र प्रस्तुत कर दिया है। इस दृश्यांकन के पश्चात् कथानक तीव्र वेग से आगे बढ़ता है और वातावरण संवाद, संकेत तथा क्रिया-कलापों की व्यंजना द्वारा प्रत्यक्ष होने लगता है।

'छाया' (ऐतिहासिक कहानियों को छोड़कर), 'प्रतिध्वनि' (खण्डहर की लिपि और 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' को छोड़कर) 'आकाशदीप', 'आँधी', और 'इन्द्रजाल' की कहानियों में लेखक ने अत्यन्त जीवन्त वातावरण का निर्माण किया है। विषय के प्रारंभ में ही लेखक एक बार प्रकृति चित्रण के साथ वातावरण का एक स्थूल दृश्य उपस्थित कर देता है और आगे चलकर कथानक की गति के साथ-साथ नाटकीय संवाद और संकेत द्वारा उसमें विविध रेखाएँ उभारता चलता है। कथानक के वेग के प्रभाव स्वरूप वातावरण के हल्का पड़ने पर लेखक दृश्य,

---

१. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास, पृ० २११।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चित्र और परिस्थिति का उपयोग कर गंभीरता का बाना पहना देता है। 'आकाश-दीप', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'देवरथ', 'सालवती' आदि कहानियों में वातावरण की अत्यन्त कलापूर्ण योजना हुई।

'बिसाती', 'बनजारा', 'प्रतिध्वनि', 'समुद्र संतरण', 'आँधी' आदि कहानियों में लेखक ने स्वच्छन्दतावादी प्रेम भावना के साथ नाटकीयता का समावेश करके अत्यन्त सजीव वातावरण का निर्माण किया है। सामाजिक कहानियाँ भी प्रसाद के कलात्मक वातावरण के निर्माण के कारण अत्यन्त स्वाभाविक, मार्मिक तथा प्रभावशाली बन गयी हैं। प्रसाद जी ने वातावरण निर्माण के लिए दृश्यांकन का अधिक सहारा लिया है। इनकी कहानियों में स्थिर और गतिशील दोनों प्रकार के दृश्यों की अवतारणा हुई है। इन विभिन्न दृश्यचित्रों में प्राकृतिक दृश्य के साथ-साथ मानव के स्वाभाविक क्रिया-कलापों के विविध चित्र भी उभरे हैं। 'बैरागी' के कुटी और उसके शान्त वातावरण का चित्रण द्रष्टव्य है:

"पहाड़ की तलहटी में एक छोटा-सा समतल भूमि खण्ड था। मौलसिरी, अशोक, कदम्ब और आम के वृक्षों का एक हरा-भरा कुटुम्ब उसे आबाद किए हुए था। दो-चार छोटे-छोटे पौधे कोमल मृत्तिका के थालों में लगे थे। सब आर्द्र और तरल थे। तपी हुई लू और प्रभात का मलय-पवन एक क्षण के लिए उस निभृत कुंज में विश्राम कर लेते।"

वस्तुतः वातावरण पीठिका की साज-सज्जा और क्रिया-कलापों के परिवेश निर्माण से भी आगे की चीज़ है। वह इनसे निर्मित होकर भी इनसे थोड़ा अलग है। प्रसाद की वातावरण प्रधान कहानियों में प्रेम, रोमांस और भाव विमुग्धता का मानसिक वातावरण छाया हुआ दिखायी पड़ता है। ऐतिहासिक कहानियों में, 'स्वर्ग के खण्डहर में' तथा इतिहासेतर कहानियों में 'समुद्र संतरण' को प्रसाद की वातावरण प्रधान कहानियों का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की कहानियों में अत्यन्त सजीव और प्रसंग के अनुरूप वातावरण का निर्माण प्रसाद की कहानी कला का निजी और प्रमुख वैशिष्ट्य है। 'सलीम' कहानी को उदाहरण के लिए जा सकता है। जिसे पढ़ने के पश्चात् पाठक के मानस पटल पर पश्चिमोत्तर प्रान्त का वह गाँव और उसमें रहने वाले सीधे-साधे नन्दराम, प्रेमा, अमीर और सलीम का चित्र हठात् अंकित हो जाता है। 'पुरस्कार', 'आकाशदीप', 'दासी' आदि कहानियों के प्रभाव के साथ ही वातावरण की ऐसी छाया पाठक के मानस पटल को आवृत्त कर लेती है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(१०) रूप-चित्र, प्रगीतात्मकता एवं रस-योजना

पात्रों का विविध स्थितियों और मुद्राओं में रूप चित्र प्रस्तुत करना प्रसाद के कथा शिल्प का महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। चरित्र-चित्रण के समान ही रूप चित्रण में भी उन्होंने नारी और पुरुष पात्रों में कुछ साम्य-वैषम्य रखा है। नारी पात्रों के रूपांकन में कहीं नाटकीयता के सहारे एक ही दो वाक्य में व्यंजना द्वारा उनका अत्यंत सटीक रेखांकन किया गया है, और कहीं उसे अधिक स्पष्ट करके अत्यन्त आकर्षक बना दिया गया है। संकेतात्मक रूप चित्रण के उदाहरण स्वरूप 'आकाश दीप' की 'प्रतिध्वनि' कहानी में श्यामा का रूप-चित्रण लिया जा सकता है। 'कुमार यौवन अपनी क्रीड़ा में विह्वल था, पागल यौवन अभी उस पगली के पीछे लगा था।' यहाँ लेखक ने अधिक अस्पष्टता की अपेक्षा लाक्षणिकता का सहारा लिया है।

इसके विपरीत लेखक ने जहाँ अधिक स्पष्ट रूप चित्र प्रस्तुत किया है वहाँ रोमांस और कल्पना के सामंजस्य ने उसे अत्यन्त भावुक बना दिया है और पाठक ऐसे स्थलों पर अत्यन्त रसमग्न हो जाता है। छोटी भाव प्रधान कहानियों में ऐसे रूप चित्रों में दीप्ति तथा ओज अधिक है। बड़ी कहानियों के नारी रूप-चित्र में मृदुता सौकुमार्य तथा मनोहारिता के तत्त्व प्रधान हैं। जहाँ लेखक ने इन रूप चित्रों के निर्माण में सबसे अधिक सहारा व्यंग्यात्मकता और काव्यात्मकता का लिया है वहीं इन्हीं के सहारे वह अत्यन्त साधारण-से-साधारण रूप में नवीनता और आकर्षण की चरम अवतारणा करने में सफल हो सका है। वस्तुतः ये दोनों तत्त्व इस प्रकार के चित्रण के प्राण हैं। 'इन्द्रजाल' कहानी की 'बेला' कोई बहुत रूपवती नहीं थी पर लेखक द्वारा खींचा गया उसका रूप चित्र उसके सौंदर्य को कितना प्रभविष्णु बना देता है। यह निम्न उदाहरण से द्रष्टव्य है:

"बेला साँवली थी। जैसे पावस की मेघमाला में छिपे हुए आलोक-पिण्ड का प्रकाश निखरने की अदम्य चेष्टा कर रहा हो, वैसे ही उसका यौवन सुगठित शरीर के भीतर उद्वेलित हो रहा था। गोली के स्नेह की मदिरा से उसकी कजरारी आँखें लाली से भरी रहतीं। वह चलती तो थिरकती हुई, बातें करती तो हँसती हुई एक मिठास उसके चारों ओर बिखरी रहती।"[१]

नारी पात्रों के समान ही पुरुष पात्रों का भी रूपांकन अत्यन्त सजीव है। पुरुष पात्रों में उनके व्यक्तित्व की कोमलता उभारने की अपेक्षा व्यक्ति की विभिन्न भंगिमाओं को उभारने का प्रसाद का प्रयास रहा है। इनमें काव्यात्मकता का

---

१. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह, इन्द्रजाल कहानी से, पृ० २।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभाव है और व्यंजना तत्त्व की प्रधानता। भावानुभूति के रंग में रँगने की अपेक्षा सादे चित्रों की प्रत्येक रेखा को उभार देना ही लेखक ने अपना लक्ष्य स्वीकारा है। उदाहरण के लिए गुण्डा कहानी के नन्हकू सिंह का रूप-चित्र प्रस्तुत है:

"वह पचास वर्ष के ऊपर का था। तब भी युवकों से अधिक वलिष्ट और दृढ़ था।....उसकी चढ़ी मूंछें बिच्छू के डंक की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेटा, जिसमें सीप की मूंठ का बिछुवा खुंसा रहता था। उसके घुंघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफे का छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कन्धे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गंड़ासा। यह थी उसकी सज। पंजों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुंडा था।"[१]

छोटी कहानियों में भी जहाँ उन्होंने संकेत से रूप-चित्र की योजना की है वहाँ भी पुरुष पात्रों के रूप-चित्र में व्यंजना का ही प्राधान्य है। 'बैरागी' का रूप-चित्र इस कथन को प्रमाणित कर देगा।

"एक शिला-खण्ड पर बैरागी पश्चिम की ओर मुख किए ध्यान में निमग्न था। अस्त होने वाले सूर्य की किरणें उसकी बरौनियों में घुसना चाहती थीं, परन्तु बैरागी अटल था अचल था। वदन पर मुस्कराहट और अंग पर ब्रह्मचर्य की रूक्षता थी। यौवन की अग्नि निर्वेद की राख से ढंकी थी।"[२]

प्रसाद की अनेक कहानियों में **प्रगीतात्मकता** का प्राधान्य है। दृश्य, रूप और चरित्र-चित्रण आदि सभी में इस तत्त्व की प्रधानता है। 'प्रतिध्वनि', 'समुद्र संतरण', 'विसाती', 'ग्राम गीत' आदि कहानियाँ उदाहरण स्वरूप ली जा सकती हैं। इनका अंतर-बाह्य सब कुछ प्रगीतमय है। अन्य अनेक कहानियों में स्वतंत्र ढंग से भी गद्य गीतों की योजना की गयी है। 'नूरी' में लोग गाते हैं:

"मैंने अपने प्रियतम को देखा था।"
वह सौंदर्य मदिरा की तरह नशीला, चाँदनी-सा उज्ज्वल, तरंगों-सा यौवन-पूर्ण और अपनी हँसी-सा निर्मल था।
किंतु हलाहल भरी उसकी अपांग-धारा! आह निर्दय!
"मरण और जीवन का रहस्य उन संकेतों में छिपा था।"

---

१. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह, गुण्डा कहानी से, पृ० ८४।
२. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह, बैरागी कहानी से, पृ० ११३-१४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"आज भी न जाने क्यों भूलने में असमर्थ हूँ।'

"कुंजों में, फूलों के झुरमुट में तुम छिप सकोगे? तुम्हारा वह चिर विकास मय सौन्दर्य! वह दिगन्त व्यापी सौरभ! तुमको छिपने देगा?"

'मेरी विकलता को देखकर प्रसन्न होने वाले! मैं बलिहारी!"[१]

'वनजारा', 'दासी', 'सलीम' और 'नूरी' कहानियों में भी ऐसे स्वतंत्र गीत आए हैं। 'नूरी' कहानी का गीत रहस्यवादी प्रभाव से पूर्ण है।

प्रायः सभी भाव और चरित्र प्रधान कहानियों के प्रभाव में भी गीतों की सी मृदुल कातर और मार्मिक गूंज समाहित हैं। 'आकाशदीप' की प्रायः सभी कहानियाँ, 'आँधी' ('विजया' और व्रतभ्रग' को छोड़कर शेष सभी कहानियाँ) तथा 'इन्द्रजाल' की 'इन्द्रजाल' 'सलीम', 'छोटा जादूगर', 'नूरी', 'भीख में', 'चित्र वाले पत्थर', 'गुण्डा', 'अनबोला', 'देवरथ' और 'सालवती' आदि के प्रभाव में यह मार्मिकता भरी पड़ी है। कहीं-कहीं **रस योजना** के लिए लेखक को अनपेक्षित विस्तार देना पड़ा है जिससे कहानी में कुछ स्थूलता भी आ गई है। डॉ० शर्मा के अनुसार "आकाशदीप कहानी कला की दृष्टि से अपने छठे खण्ड के अन्त में ही समाप्त हो जानी चाहिए।" पर यहाँ पर रस की पूर्ण आयोजना नहीं हो पाती इसलिए लेखक ने इस कहानी को थोड़ा और आगे बढ़ाया है। रस-सिद्धि की तुलना में यह कलात्मक दोष ग्राह्य ही है।

वस्तुतः प्रसाद का कवि व्यक्तित्व कहानियों में कहीं भी ओझल नहीं हुआ है। एक ओर उनकी गीति प्रतिमा कहानियों के भावपक्ष में निरन्तर रसोद्रेक करती है और दूसरी ओर उनका नाट्य कौशल व्यंजना द्वारा गति प्रदान करता है। प्रसाद की कहानी कला में इन दोनों तत्त्वों के सामंजस्य से निखार आ गया है और उनकी कहानियाँ युगों पुरानी कथा को लेकर भी नितान्त नवीन और आधुनिक परिवेश से परिचालित प्रतीत होती हैं।

(११) शैली

कहानी को कहने या प्रस्तुत करने की पद्धति शैली होती है। कहानी के विभिन्न उपकरण—कथावस्तु, चरित्र, कथोपकथन, वातावरण आदि को प्रस्तुत करने की लेखक की अपनी शैली होती है। भाषा भी एक शैली ही है। प्रसाद की शैली में उनके व्यक्तित्व की गंभीर छाप अंकित है। उनकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत और गंभीर है। उन्होंने इस गंभीर और परिष्कृत शैली में प्रेषणीयता

---

१. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह, नूरी कहानी, पृ० ३९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और भावाभिव्यंजन की क्षमता लाने के लिए इसे अलंकृत बना दिया है। अभिव्यक्ति को संवेद्य बनाने के लिए उन्होंने लाक्षणिकता तथा नाटकीयता का सहारा लिया है।

प्रसाद ने मूलत: दो शैलियों का—चित्रात्मक, संलाप—सहारा लिया है। पात्रों के वाह्य क्रिया-कलापों के चित्रण, भाव-विवृति आदि के लिए चित्रात्मक शैली का सहारा लिया है। इसके भी दो रूप दिखायी पड़ते हैं। कहीं इसमें विदग्धता तथा भाषा में भावोच्छ्वास अधिक है। उदाहरण के लिए 'प्रलय' कहानी का निम्न अंश प्रस्तुत है।

"सूर्य का अलात चक्र के समान शून्य में भ्रमण और उसके विस्तार का अग्नि स्फुलिंग-वर्षा करते हुए आश्चर्य-संकोच! हिम टीलों का नवीन महानदी के रूप में पलटना, भयानक ताप से शेष प्राणियों का पलटना! महाकापालिक के चिताग्नि साधन का वीभत्स दृश्य!! प्रचंड आलोक का अंधकार!!!"

दूसरी स्थिति में चित्रात्मक शैली बिना किसी विदग्धता या अलंकरण के उस स्थिति अथवा पात्र का विम्बात्मक रूपांकन प्रस्तुत कर देती है। ऐसी स्थिति में भाव-मुक्त होने के कारण भाषा अधिक वेगवान तथा तीव्र है। गुंडा के मौलवी कुवरा खाँ का रूप चित्रण द्रष्टव्य है—

"हांथ में हरौती की पतली-सी छड़ी, आँखों में सुरमा, मुँह में पान, मेंहदी लगी हुई दाढ़ी, जिसकी सफेद जड़ दिखायी पड़ रही थी, कुव्वेदार टोपी, छलकिया अंगरखा और साथ में लैसदार परतले वाले दो सिपाही! कोई मौलवी साहब हैं....।"

संलाप शैली में प्रासाद ने भाषा का व्यवहार, पात्र और परिस्थिति को दृष्टि में रखकर नहीं अपितु भाव और परिस्थिति को दृष्टि में रखकर किया है। प्रसाद ने कहानी की तीन शैलियाँ अपनाई हैं। (१) ऐतिहासिक शैली, (२) आत्म प्रकाशन शैली और (३) नाटकीय शैली। कहीं-कहीं इन तीनों के सम्मिश्रण से एक नवीन शैली में रचित कहानी भी देखने को मिल जाती है।

तटस्थ द्रष्टा के रूप में रहकर कहानी कहते चलने की पद्धति का प्रयोग जिन कहानियों में किया है उनमें ऐतिहासिक शैली का व्यवहार मिलता है। प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ इसी शैली में लिखी गयी हैं। 'आँधी', 'वेड़ी', 'देवदासी' आदि कुछ इनी-गिनी कहानियों में प्रसाद ने आत्म प्रकाशन शैली अपनाई है। प्रसाद ने 'देवदासी' में 'पत्रात्मक' शैली का भी उपयोग किया है। नाटकीय शैली के आधार पर स्वतंत्र रूप से किसी कहानी की रचना कर पाना अत्यन्त कठिन है। वस्तुत: ऐतिहासिक और आत्म-प्रकाशन शैली में लिखित कहानियों में ही

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसका उपयोग हुआ है। उनकी कोई भी कहानी नाटकीयता के तत्त्व से अछूती नहीं है। यह अलग बात है कि किसी में यह तत्त्व अधिक है और किसी में कम। कहीं यह प्रधान शैली के रूप में उपस्थित है और कहीं किसी सहायक के रूप में प्रसाद ने अपनी ऐतिहासिक कहानियों में भी आत्म प्रकाशन और नाटकीयता की पद्धति का सहारा लिया है। इसलिए उन्होंने अपनी अधिकांश कहानियों की रचना उपर्युक्त तीनों शैलियों के मिश्र रूप से निर्मित एक नितांत नई शैली में की है।

प्रसाद की भाषा की दुर्बोधता तथा उससे कहानी की अस्पष्टता आदि संबंधी अनेक आरोप किए जाते हैं। पर यह भाषा, स्वच्छन्दतावादी मसृण कल्पना की अनिवार्यता थी। प्रसाद की भाषा कहीं भी विचारों के प्रकाशन और भावों की अभिव्यक्ति में विफल या बाधक नहीं है। यदि उनकी कहानियों में कहीं दुर्बोधता आती भी है तो उसका कारण उनकी कहानी की भाव शबलता और लाक्षणिकता है। प्रसाद की कहानियों में सहज तथा गंभीर दोनों प्रकार की भाषा की झांकी मिल जाती है। 'इन्द्रजाल' संग्रह की अनेक कहानियों में भाषा की सहजता, अकृत्रिमता तथा प्रवाहमयता देखी जा सकती है, जिसमें न तो संस्कृत-निष्ठ तत्सम शब्दावली अपनाने का आग्रह है और न लम्बे-लम्बे वाक्यों का बन्धन। सामान्यतः नित्य प्रति व्यवहार में आने वाले अपने में पूर्ण और गतिशील शब्द तथा वाक्य व्यवहृत हैं।

वस्तुतः प्रसाद न तो प्रेमचन्द की भाषा में 'समुद्र संतरण', 'ज्योतिष्मती' 'पुरस्कार' और 'सालवती' की रचना कर सकते थे और न हीं प्रेमचन्द प्रसाद की भाषा में 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी' और 'कफन' जैसी कहानियाँ लिख सकते थे। भाषा लेखक के व्यक्तित्व के आधार पर निर्मित होती है। सिर्फ प्रश्न उठता है उसके प्रवाह, विचारों की अभिव्यक्ति और सम्बद्धता का। इसमें प्रसाद की भाषा पूर्णतया सफल है। कहीं भी भाव की अभिव्यक्ति में, कहानी के प्रवाह में और कथानक की सम्बद्धता में वह बाधक नहीं बनती।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

५ | प्रसाद के निबन्ध, प्राक्कथन एवं सम्पादकीय

छायावाद के चारों यशस्वी कवियों––प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी–– ने निबंधों की रचना की। यद्यपि प्रसाद की निबन्धात्मक रचनाएँ निराला की अपेक्षा कम हैं, विषय की वह विविधता भी प्रसाद में नहीं है जो निराला में है; दूसरी तरफ प्रसाद के निबन्धों में सामयिक समस्याओं का भी अभाव है। पर इस क्षेत्र में जितना यश प्रसाद को मिला है उतना अन्य किसी कवि को नहीं।

प्रसाद के निबंधों के दो संग्रह—'चित्राधार' और 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' हमें उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रसाद ने अपनी नाट्य-रचनाओं के 'प्राक्कथन' के रूप में अनेक ऐतिहासिक एवं खोजपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है। यद्यपि इन्हें हम विशुद्ध निबंध की संज्ञा तो नहीं दे सकते ये भूमिका से भी भिन्न हैं और इनमें लेखक की अनेक मौलिक उद्भावनाएं निहित होने से इन्हें समीक्षा की श्रेणी में भी नहीं रखा जा सकता।

आरम्भिक निबंध 'चित्राधार'

'चित्राधार' प्रसाद की प्रारंभिक कृति है। इसमें संगृहीत निबंधों में लेखक की प्रौढ़ प्रतिभा का अभाव है। इनमें संगृहीत रचनाओं में 'प्रकृति सौंदर्य', 'सरोज' और 'भक्ति' शीर्षक निबंध ऐसे हैं जिन पर विचार किया जा सकता है। 'प्रकृति सौंदर्य' (सं० १९०९) में प्रकाशित लेखक का भावात्मक निबंध है। इसमें लेखक ने प्रकृति के अलौकिक स्वरूप से प्रभावित उसके शक्तिमय रूप का वर्णन किया है। इसमें प्रचलित काव्य परम्पराएँ और प्रौढ़ोक्तियों का सहारा लिया गया है—"हे प्रकृति देवी, तुमको नमस्कार है: तुम्हारा स्वरूप अकथनीय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है।"[१] कहीं-कहीं लेखक उन्मुक्त साहित्यिकता और रस के प्रवाह में बहता दिखायी देता है। काव्य का आकुल आग्रह सर्वत्र मुखर है—"हिम शीतल ललित कुसुम सदृश जान पड़ता है।"[२] आलंकारिकता और कल्पना का आग्रह भी दिखायी देता है, जिससे वह अत्यंत आकर्षक रूप-चित्र निर्मित करता है। भाषा की कृत्रिमता भी इसमें उपलब्ध है। प्रकृति के नीरव सौंदर्य, अनुभूति की तन्मयता, मानसिक कुतूहल तथा आत्म विह्वल जिज्ञासा के संकेत यहाँ द्रष्टव्य हैं, पर इनका कलात्मक मूल्य नहीं है। जिस भाव पीठिका पर छायावादी काव्य का समारंभ हुआ है, उसकी आधार-भूत सामग्री यहाँ भी एक है।[३] इस निबंध में प्रकृति की अनन्यता, उद्दीपन, विभाव और उसका दार्शनिक पक्ष बहुत कुछ उद्घाटित हुआ है।

'सरोज' (सं० १९१२) वर्णनात्मक निबंध है। इसमें शास्त्रीय आधार पर उद्धरण देकर लेखक अपनी बहुविज्ञता का भी परिचय दे देता है। यहाँ संस्कृत काव्य शैली का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जिस पर अलंकार मोह और भावात्मक प्रदर्शन की कुछ छाया दिखायी देती है।

'भक्ति' (स० १९०७) विचारात्मक एवं चिंतन प्रधान निबंध है। इसमें उपनिषदों का आश्रय लेकर मन की भूत-भविष्य के संबंध में चिंता प्रत्यक्ष है। यहाँ श्रद्धा का वह रूप चित्रित है, जिसका चरम विकास हमें 'कामायनी' में दिखायी देता है। इन्होंने पं० बालकृष्ण भट्ट की शैली के अनुरूप श्रद्धा का विषय-परक परीक्षण किया है—"श्रद्धा जल है—भक्ति वेग है, तथा उसका गमन ही ज्ञान है।"[४] श्रद्धा आलंबन पाकर पूर्ण हो जाती है। भक्ति ईश्वर में अनन्य प्रेम या मूल अनुभूति है। इस निबंध में भाषा और शिल्प का उत्कर्ष नहीं दिखायी देता। शब्द प्रायः अनगढ़ प्रतीत होते हैं।

वस्तुतः ये प्रसाद के प्रारम्भिक निबन्ध हैं, फिर भी निबंध की विकास परंपरा तथा लेखक के प्रयासकालीन निबन्धों में इनका अपना विशेष महत्त्व है। तीनों निबंध निबन्ध की तीन कोटियाँ—भावात्मक, वर्णनात्मक और विचारात्मक-— स्थापित करते हैं। कला की परिपक्वता यहाँ नहीं दिखायी देती, फिर भी विकास यात्रा के भावी पद्चिह्न यहाँ सुरक्षित हैं।

---

१. प्रसाद : चित्राधार, पृ० १२८।
२. वही, पृ० १३३।
३. डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित : साद का गद्य, पृ० १०६-७।
४. प्रसाद : चित्राधार, पृ० १३६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

विभिन्न स्फुट निबन्ध

स्फुट निबन्धों में प्रसाद का निबन्ध 'आर्यावर्त और उसका प्रथम सम्राट इन्द्र'[१] विशेष ध्यान देने योग्य है। अनुश्रुतियों में प्रचलित वैदिक साहित्य के साक्ष्य के आधार तात्त्विक विश्लेषण कर इन्द्र के स्वरूप का प्रामाणिक निर्धारण हुआ है। वस्तुतः इसने एक इतिहास का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। लेखक की बौद्धिकता एवं उसका अंतर्मंथन यहाँ अपने चरम स्वरूप में उपस्थित है। पर यह बौद्धिकता और अंतर्मंथन निबन्ध के शिल्प की दृष्टि से अधिक तर्कसंगत नहीं है। प्रसाद का यह निबन्ध उनके आगे चलकर नाटकों के प्राक्कथन रूप में आए ऐतिहासिक तथ्यों की अनेक मौलिक उद्भावनाओं की पृष्ठभूमि-सा है।

प्राक्कथन

प्रसाद ने पुस्तकों के प्राक्कथन भी लिखे हैं। यद्यपि इन्हें कुछ विद्वान निबन्ध की कोटि में रखने के पक्षपाती नहीं हैं, पर अन्य कुछ विद्वानों ने इन्हें निबन्ध मान लेने में संकोच नहीं किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार—"बुद्ध, मौर्य और गुप्तकाल के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अन्वेषणों पर 'प्रसाद' के निबन्ध-इतिहास की सूखी रूपरेखा पर तत्कालीन व्यापक उन्नति या अवनति के कारणों और रहस्यों का रंग चढ़ा देते हैं।"[२] प्रसाद की इसी दृष्टि के कारण भारतीय इतिहास और दर्शन दोनों ही राष्ट्रीय संस्कृति के अविच्छिन्न अंग बन गए हैं। प्रसाद ने इनमें अनेक मौलिक उपपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। भारत के प्राचीन इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति का उल्लेख कर उन्होंने अपने मत को प्रमाण परक बनाया है। बौद्ध, मौर्य, वर्द्धन और गुप्त युग संबंधी अनेक घटना-रहस्यों एवं तत्कालीन इतिहास के अनेक आवृत्त और अन्धकाराच्छन्न पृष्ठों को प्रकाशित करते हैं। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अन्वेषणों से पूर्ण उन निबन्धों पर विचार कर लेना यहाँ उचित है।

प्रसाद के ये प्राक्कथन अत्यन्त परिचयात्मक, व्याख्यात्मक और आत्म लोचन की पद्धति से परिपूर्ण हैं। ऐतिहासिक नाटकों की कथावस्तु के प्रतिपादन में प्रसाद ने उन मूलभूत तत्वों एवं सूत्रों को उद्घाटित किया है जो उसके प्रेरणा के मूल में हैं। कहीं-कहीं उन्होंने काल्पनिक पात्रों, घटनाओं की भी सृष्टि की है पर

१. प्रसाद : नागरीप्रचारिणी पत्रिका कोषोत्सव स्मारक ग्रंथ १८८५ ।

२. आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी : प्राक्कथन, काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसका स्पष्ट संकेत देकर। प्रसाद ने स्वयं स्वीकार किया है—"घटनाओं की परंपरा ठीक करने में नाटकीय स्वतंत्रता से अवश्य कुछ काम लेना पड़ा है जितनी किसी ऐतिहासिक नाटक लिखने में ली जा सकती है।"[1]

प्रसाद ने प्रत्येक घटना को हर दृष्टिकोण से इतिहास की कसौटी पर परखा है। अपने कथन की पुष्टि के लिए वे वैदिक ग्रन्थों, पुराणों एवं पूर्ववर्ती ऐतिहासिक कृतियों का साक्ष्य उपस्थित करते हैं। ध्रुवस्वामिनी की घटना को ऐतिहासिक सिद्ध करने के लिए उन्होंने आठवीं शती के संजात के ताम्रपत्र, सातवीं शती के बाणभट्ट एवं ग्यारहवीं शती के राजशेखर के मतों का उल्लेख किया है। भण्डारकर जी के मत का उल्लेख कर उन्होंने ध्रूवस्वामिनी से चन्द्रगुप्त के पुनर्लग्न की घटना को भी संस्कृति के अनुकूल सिद्ध कर दिया है। लेखक ने ध्रुवदेवी के बदले ध्रुव-स्वामिनी के नाम ग्रहण का भी तर्गसंगत आधार प्रस्तुत किया है। 'चंद्रगुप्त' नाटक के चन्द्रगुप्त को प्रसाद ने उच्चवर्गीय मौर्य कुल का क्षत्री सिद्ध किया। उन्होंने शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न होने की भ्रांति को समाप्त किया। चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का काल निर्धारित किया। उसके शासन की स्थिति का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया। चाणक्य के जन्म-स्थान की खोज की। अपनी इन खोजों और मान्यताओं के स्थापन में, भारतीय, पौराणिक, और विदेशी विद्वानों के मत उद्धृत किए, उनका परीक्षण किया तथा सही तथ्य प्रस्तुत किया। चन्द्रगुप्त की भूमिका में मौर्यकालीन भारत का पूरा इतिहास, तिथिक्रम सहित और अन्य इतिहासज्ञों के तर्कों सहित, इसमें उल्लिखित है। चाणक्य की प्रतिभा, उसकी अलौकिक क्षमता एवं बुद्धिबल के प्रमाण देकर लेखक ने उसे नाटकीय पात्र के रूप में ढाल लिया है। इस प्रकार यह प्रमाणित है कि इन प्राक्कथनों में लेखक ने अनेक उपयोगी संकेत, कृतित्व का तटस्थ आत्मालोचन और अन्य अनेक मौलिक उद्भावनाएं उपस्थित की हैं। इनके आधार पर प्रसाद साहित्य की समीक्षा करने में सुगमता होगी। वस्तुतः उन्होंने अपने इन प्राक्कथनों के माध्यम से भावी समीक्षा को एक आधार प्रदान किया है। इनका महत्त्व सामग्री की दृष्टि से अधिक है अपेक्षाकृत विशुद्ध निवंधात्मकता के। ऐतिहासिक तथा खोजपूर्ण निवंधों की कोटि में इनका महत्त्व असंदिग्ध है।

सम्पादकीय

प्राक्कथनों के अतिरिक्त प्रसाद ने कुछ संपादकीय भी लिखे हैं, जिनमें उनकी

---

१. प्रसाद : प्राक्कथन, 'जनमेजय का नागयज्ञ', पृ० ६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

निबंध कला का पूर्वाभास मिल जाता है। द्विवेदी युग की जर्जर नैतिकता, व्याकरण शुद्धि आदि से ऊबकर वे काव्य के नए युग की ओर संकेत करते हुए 'इन्दु' के एक संपादकीय में कहते हैं कि—"श्रृंगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी, मनोवृत्तियाँ शिथिल हो गई हैं। इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओं की आवश्यकता है। अस्तु, धीरे-धीरे जातीय संगीत की वृत्ति स्फुरण-कारिणी, आलस्य को भंग करने वाली, आनन्द बरसाने वाली, धीर-गंभीर पदविक्षेपकारिणी, शांतिमयी कविता की ओर हम लोगों को अग्रसर होना चाहिए। अब समय दूर नहीं है। सरस्वती अपनी मलीनता का त्याग कर रही है और प्रबल रूप धारण करके प्रभातिक उषा को भी लजा देगी। एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पंचम स्वर में ललकारेगी, भारत की भारती फिर से भारत ही की होगी।"[१] प्रेम रहस्यों और सौंदर्य पूर्ण रेखांकनों के प्रति भी उनकी उक्ति द्रष्टव्य है—"गद्य के साथ आधुनिक कविता ने करवट ली है। अभी उसका लड़कपन दूर नहीं हुआ है, पर नींद की इस नयी करवट ने उसे मधुर अवश्य बना दिया है। पहले वह सेवा की वस्तु थी, अब प्रेम की हो गई है। पुराने अभिभावकों को शिकायत है कि अस्पष्टता और उच्छृंखलता बढ़ रही है। पर वे भूल जाते हैं कि ये दोनों बातें ही तो जीवन का विकास हैं. . सौंदर्य सदैव एक रहस्य है; अतएव जहाँ जितनी सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता भी रहेगी। सौन्दर्य की भाषा में अस्पष्टता संकोच, लज्जा की सहेली है; वहीं साहित्य की प्रगति विज्ञान में प्रतियोगिता के चिह्न हैं।"[२]

प्रथम टिप्पणी में स्पष्ट ही प्रसाद गंभीर कविता रचना में प्रवृत्त होने की वकालत करते नजर आते हैं। दूसरे में वे कविता की मधुरिमा की ओर संकेत करते हैं और कहते हैं कि जहाँ कविता पहले सेवा की वस्तु थी वहाँ अब प्रेम की वस्तु हो गई है। सेवा से उनका तात्पर्य राजाश्रय में काव्य रचनाओं से है। नई कविता में भ्रम स्पष्टता और उच्छृंखलता बढ़ने का आरोप लगाया जाता है, पर प्रसाद इनका सटीक उत्तर देते हुए कहते हैं जहाँ जितनी सुन्दरता होगी, वहाँ उतनी ही अस्पष्टता भी रहेगी। सौंदर्य की भाषा में अस्पष्टता, संकोच, लज्जा की सहेली है यह सत्य है। क्या प्रसाद के काव्य को ये सूत्र परिभाषित नहीं कर देते। स्पष्ट है कि इन सम्पादकीय टिप्पणियों से लेखक का काव्यादर्श और सैद्धांतिक दृष्टिकोण प्रकाशित होता है।

---

१. इन्दु, कला २, किरण १, १९३७।
२. इन्दु, कला ८, किरण १, १९३७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसके अतिरिक्त रामरतन भटनागर के अनुसार प्रसाद ने 'हंस' (१९२८) और जागरण पाक्षिक (१९३२) के भी संपादकीय लिखे हैं। परन्तु 'हंस' और 'जागरण' के ये अंक मुझे उपलब्ध नहीं हो पाए इसलिए उनका विवेचन कर पाना कठिन है।

'काव्य और कला तथा अन्य निबंध'

प्रसाद की उत्कृष्ट निबंध कला का परिचय हमें सांध्यकाल में लिखे गए उनके 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' नामक संग्रह में उपलब्ध होता है। वस्तुतः लेखक ने इन निबंधों की रचना, साहित्य की द्विविधामयी अवस्था के समाधान, पाश्चात्य प्रभाव को दूर करने तथा शुक्ल जी और बाबू श्यामसुन्दर दास के अनेक भ्रामक मतों के खण्डन के लिए की। इसमें संकलित शीर्षकों को लेखक ने निबंध की कोटि में रखा है पर अनेक विद्वान इन्हें विशुद्ध निबंध की सीमा में स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं दिखायी देते हैं। उनके मत से उन्हें आलोचनात्मक साहित्य में स्थान दिया जाना चाहिए। इन विद्वानों का मत निश्चय ही एक सीमा तक सशक्त तर्क पर आधारित है, पर निबंध की एक श्रेणी भी शास्त्रीय या समीक्षात्मक निबंधों की होती है। इसलिए प्रसाद के इन निबंधों को उसी वर्ग में रखना चाहिए। 'प्रसाद' की मंशा इनके नामकरण के पीछे क्या थी यह तो नहीं पता लगता है, क्योंकि इसका प्रथम संस्करण उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हो पाया पर यह नामकरण यथेष्ट तर्कसंगत प्रतीत होता है। प्रस्तुत कृति की भूमिका में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने इसमें आए हुए लेखों को निबंध नाम से अभिहित किया है।

प्रसाद ने इन निबंधों में मुख्य-मुख्य दार्शनिक धाराओं के साथ मुख्य-मुख्य काव्य धाराओं का भी समीकरण करके इन दोनों का इतिहास प्रस्तुत किया है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने भी प्रसाद की इन उद्भावनाओं के संबंध में कहा है—'प्रसाद जी की ये उद्भावनाएँ इतनी मार्मिक हैं, इनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता का पुट इतना प्रगाढ़ है, और साथ ही इनकी मनोवैज्ञानिक विवृत्ति इतनी सुन्दर रीति से हृदय का स्पर्श करती है कि हम सहसा यह भूल जाते हैं कि ये अधिकांश एकदम नवीन है, किसी क्रमागत विचार-परिपाटी से इनका संबंध नहीं है।"[1]

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रस्तुत संग्रह के कुछ निबंधों में प्रसाद ने अपनी नितांत नवीन और मौलिक मान्यताएं स्थापित की हैं और तर्कपुष्ट प्रमाणों का आश्रय लेकर उन्हें सिद्ध भी कर दिया है। प्रसाद की ये समस्त उद्भावनाएँ भारतीय परंपरा के अनुकूल हैं। 'काव्य और कला' तथा 'नाटक' के संबंध में प्रसाद के अपने कुछ मौलिक विचार थे, जिनका विकास भारतीय परंपरा के अनुकूल हुआ था।[१] अपने इस विवेचन में प्रसाद ने बिलकुल नई शास्त्रीय अभिव्यंजना-शैली, तथ्य ग्राहिणी शक्ति एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य का परिचय दिया है। उन्होंने द्विवेदी युग से कहीं अधिक संयत तथा संतुलित विचार-पक्ष प्रस्तुत किया है। इन निबंधों में उनकी समन्वयपरक समालोचना, साहित्य और दर्शन का प्रकाण्ड ज्ञान, प्रकाशित हुआ हैं। तत्कालीन समीक्षा में पाश्चात्य धारणाओं को जो बल मिल रहा था, उसे प्रसाद ने मोड़ देकर एक नई दिशा प्रदान की। प्लेटो, रिचर्ड्स, अरस्तू और हीगेल के चिंतन को उन्होंने भारतीय काव्य के लिए अनुपयोगी सिद्ध किया। उनके सिद्धान्तों की उन्होंने धज्जी उड़ा दी। उन्होंने भारतीय वाङ्मय को रूढ़िग्रस्त स्तर से ऊपर उठाकर उसे एक नवीन प्रशस्त पथ प्रदान किया।

प्रसाद के वैचारिक दर्शन में पूर्णरूपेण एकसूत्रता और वैचारिक दृढ़ता विद्यमान है। विवेचन का तारतमिक प्रतिपादन उनकी विशेषता है और यह उनके व्यक्तित्व की स्थिरता का परिणाम है।[२] वास्तव में "जीवन-दर्शन की दृढ़ता ने उनके समस्त विचारों को एक सूत्रता दे दी थी।"[३] प्रसाद ने समीक्षा शास्त्र के भारतीय सिद्धांतों का पुनर्मूल्यांकन किया है। भारतीय साहित्य की आधारभूत मान्यताओं को पुनः स्थापित करते हुए प्रसाद ने कुछ मौलिक सिद्धांत भी प्रस्तुत किए हैं। कुछ विद्वानों ने प्रसाद की इन धारणाओं के पीछे पाश्चात्य प्रभाव को भी खोज निकाला है पर वे भ्रांतिमूलक हैं। प्रसाद ने भारतीय साहित्य शास्त्र की पृष्ठभूमि में काव्य का मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया है, उन्होंने दर्शन ग्रंथों का आधार ग्रहण कर अपने मत का प्रतिपादन किया है। शास्त्रीय विषयों के संबंध में उनकी स्थापनाओं से कतिपय विद्वान असहमत हैं। संभव है उनकी स्थापनाएँ सर्वमान्य न होकर व्यवितगत दृष्टिकोण की वाहक हों, किंतु वे संतुलित और स्वस्थ हैं। अतएव उन्हें स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं दिखायी देती। काव्य सिद्धान्तों की भिन्नता का कारण उनकी अनुभूतिगत भिन्नता है।

---

१. डॉ० गुलाब राय : अध्ययन और आस्वाद, पृ० ३९२।
२. डॉ० दीक्षित : प्रसाद का गद्य, पृ० १११।
३. डॉ० नामवर सिंह : हिन्दी के आलोचक, पृ० २६२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

डॉ० भगवत स्वरूप ने भी स्वीकार किया है कि—"अनुभूति की भिन्नता ही उनके काव्य-स्वरूप और अभिव्यंजना शैली की भिन्नता का प्रधान कारण है।"[1]

'काव्य और कला तथा अन्य निबंध' में आठ निबंध संगृहीत हैं। इन निबंधों में 'काव्य और कला', 'रस' 'नाटकों में रस का प्रयोग', शास्त्रीय निबंध की श्रेणी में, 'रहस्यवाद', 'यथार्थवाद' और 'छायावाद' सैद्धांतिक निबंध की श्रेणी में तथा 'नाटकों का आरंभ', 'रंगमंच' और 'आरंभिक पाठ्य काव्य' गवेषणात्मक एवं ऐतिहासिक निबंध की श्रेणी में आते हैं। इनका इसी क्रम से विस्तृत विवेचन प्रस्तुत है।

शास्त्रीय विवेचन

'काव्य और कला'

प्रसाद की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मुख्य उद्भावना यह है कि काव्य स्वतः आध्यात्मिक है, काव्य से ऊंची आध्यात्म नाम की कोई वस्तु नहीं है। साहित्य-शास्त्र में काव्य को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' यह श्रुति प्रसिद्ध भी है जिसमें कवि और मनीषी अर्थात् आध्यात्मिक को समान माना गया है। प्रसाद के अनुसार पश्चिमी विचार प्रणाली में मूर्त्त और अमूर्त्त का आध्यात्मिक भेद प्रचलित है। काव्य के मूर्त्त होने के कारण आध्यात्मिक सीमा से जिसमें अमूर्त्त के लिए स्थान है उसे अलग करने की चेष्टा की गयी है पर भारतीय विचारधारा में ब्रह्म के दो स्वरूप हैं वह मूर्त्त भी है और अमूर्त्त भी। अतः मूर्त्त होने के कारण काव्य को आध्यात्म से निम्न श्रेणी की वस्तु नहीं कह सकते। प्रसाद के शब्दों में ही—"ग्रीक लोग कलुषित और मूर्त्त संसार निम्न कोटि में, अमूर्त्त और पवित्र ईश्वर का स्वर्ग इससे परे उच्चकोटि में मानते हैं। भारतीय उपनिषदों का प्राचीन ब्रह्मवाद इस मूर्त्तविश्व को ब्रह्म से अलग निकृष्ट स्थिति में नहीं मानता।"[2] पुनः वे कहते हैं—"मूर्त्त नश्वर और अमूर्त्त, अविनश्वर दोनों ही ब्रह्म के रूप हैं।"[3]

इस प्रकार प्रसाद ने प्लेटो, अरस्तू और हीगेल का समर्थन न करके उसे भारतीय भूमि का आधार प्रदान किया है। अरस्तू कला को अनुकरण मानते हैं,

---

१. डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र : हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास, पृ० ४५९।

२. प्रसाद : 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', पृ० ३५।

३. वही, पृ० ३४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जहाँ लोकोत्तर आनंद की सत्ता नहीं है। प्लेटो ने कविता को संगीत माना है, जिसमें आध्यात्म का संस्पर्श नहीं इसके विपरीत प्रसाद काव्य को लोकोत्तर आनंद, ब्रह्मानंद सहोदर मानते हैं।

प्रसाद जी काव्य को कला का भेद नहीं स्वीकार करते। अपने इस मत की पुष्टि में दण्डी, भामह के भी मत को उद्धत करते हैं जो काव्य और कला को भिन्न वस्तु स्वीकार करते हैं। प्रसाद जी के अनुसार हीगेल ने पश्चिम में सौंदर्य-बोध की विचारधारा के अनुसार इसे कला का एक भेद स्वीकार किया है पर इन्हीं के अनुसार सौंदर्य-बोध और विचार-धारा की भारतीय परंपरा भिन्न है। "यहाँ काव्य की गणना विद्या में थी और कलाओं का वर्गीकरण उपविद्या में था।"... "कला का जो अर्थ पाश्चात्य विचारों में लिया जाता है, वैसा भारतीय दृष्टिकोण में नहीं।"[१] "काव्य कला के इस विभ्रम के कारण-स्वरूप अनेक विकृतियाँ हैं, जिन्होंने हमारी सौंदर्यानुभूति के प्रतीकों को अनेक प्रकार से भ्रमित करने का उद्योग किया है। पाश्चात्य काव्य लोकोत्तर आनंद का विचार नहीं करता, पर भारतीय सौंदर्य-बोध में इसके मूर्त्त-रूप की कल्पना आवश्यक है। प्रसाद की दृढ़ धारणा है कि सौंदर्य बोध बिना रूप के हो ही नहीं सकता। सौंदर्य की अनुभूति के साथ ही हम अपनी संवेदना को आकार देने के लिए और उसका प्रतीक बनाने के लिए वाध्य हैं। अमूर्त्त सौंदर्य बोध कहने का कोई अर्थ भी नहीं रह जाता।"[२]

प्लेटो कविता का संगीत के अंतर्गत वर्णन करते हैं किंतु प्रसाद के अनुसार —"वर्त्तमान विचारधारा मूर्त्त और कलाओं का भेद करते हुए भी कविता को अमूर्त्त संगीत कला से ऊँचा स्थान देती है....संगीत कला और कविता अमूर्त्त कलाएँ हैं। संगीत कला नादात्मक है और कविता उससे उच्चकोटि की अमूर्त्त कला है।"[३] अपनी इस मान्यता के द्वारा प्रसाद ने अनेक पूर्ववर्ती मान्यताओं का खण्डन किया है। डॉ० श्यामसुन्दर दास ललित कला के प्रभेद में मूर्त्त और अमूर्त्त आधार पर ललित कला के भेदों का प्रचलन सिद्ध करते हैं[४] और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कला विषयक जो व्याख्या प्रस्तुत करते हैं उसके विरोध में प्रसाद की यह स्थापना अधिक तर्कसंगत है। डॉ० श्यामसुन्दरदास के मत का खण्डन करते हुए उन्होंने

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३१।
२. वही, पृ० ३५।
३. वही, पृ० ३२।
५. डॉ० श्यामसुन्दरदास : साहित्यालोचन, पृ० २५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

कहा है—"अन्य सूक्ष्मताओं और विशिष्टताओं का संकेत न करके केवल मूर्त्त और अमूर्त्त के भेद से साहित्य कला की महत्ता स्थापित नहीं की जा सकती। अमूर्त्त सौंदर्य बोध कहने का कोई अर्थ ही नहीं, क्योंकि सौंदर्य बोध विना रूप के हो ही नहीं सकता।"[१] आचार्य शुक्ल कला को भारतीयता से अलग चीज मानते हैं, किंतु प्रसाद की धारणा इसके विपरीत है, उनके अनुसार अनुभूति और अभिव्यक्ति के अन्तरालवर्त्ती संबंध को जोड़ने के लिए हम चाहें तो कला को स्वीकार कर सकते हैं। प्रसाद कलावाद के समर्थक नहीं हैं। वे रूप को नहीं स्वीकार करते, उनकी दृष्टि में उसमें निहित वस्तु सौंदर्य पर स्थिर होती है।

प्रसाद के अनुसार सत्य की उपलब्धि के लिए ज्ञान की साधना आरंभ होती है। स्वाध्याय बुद्धि का यज्ञ है। स्वाध्याय के द्वारा मानव सत्य को प्राप्त होता है। हमारे सब बौद्धिक व्यापारों का सत्य की प्राप्ति के लिए सतत उद्योग रहता है। सत्य विराट है। उसके दो लक्षण माने गए हैं—श्रेय और प्रेय। इसलिए सत्य की अभिव्यक्ति हमारे वाङमय में दो प्रकार से मानी गयी है—काव्य और शास्त्र। शास्त्र में श्रेय का आज्ञात्मक ऐहिक आमुष्मिक विवेचन होता है और काव्य में श्रेय और प्रेय दोनों का सामंजस्य होता है। शास्त्र मानव-समाज में व्यवहृत सिद्धांतों का संकलन है। काव्य या साहित्य आत्मा की अनुभूतियों का नित्य नया-नया रहस्य खोलने में प्रयत्नशील है; क्योंकि आत्मा को मनोमय वाङमय और प्राणमय माना गया है।[२]

प्रसाद ने काव्य की मार्मिक व्याख्या करते हुए उसे आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति माना है। जिसका संबंध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। प्रसाद के अनुसार ही—"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन-क्रिया जो वाङमय रूप में अभिव्यक्त होती है, वह निःसंदेह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय दोनों से परिपूर्ण होती है।"[३]

आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की दो धाराएँ हैं—एक काव्यधारा और दूसरी वैज्ञानिक, शास्त्रीय या दार्शनिक धारा। कुछ विद्वान श्रेय और प्रेय-भेद

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३५।
२. वही, पृ० ३७।
३. वही, पृ० ३७-३८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से विज्ञान और काव्य का विभाजन करते हैं, किन्तु प्रसाद के उपर्युक्त मत से यह स्पष्ट है कि यद्यपि दर्शन और विज्ञान में श्रेय रूप से ही सत्य का संकलन किया जाता है और काव्य में प्रेय की प्रधानता है, किंतु श्रेय और प्रेय दोनों ही आत्मा के अभिन्न अंग हैं। काव्य के प्रेय में श्रेय की भी अप्रत्यक्ष निहिति है। काव्य की व्याख्या में उन्होंने कहा है कि—"संकल्पात्मक मूल अनुभूति कहने से मेरा जो तात्पर्य है उसे भी समझ लेना होगा। आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था है जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।"[1]

इस प्रकार मूर्त्त और अमूर्त्त की द्विविधा समाप्त कर प्रसाद ने श्रेय और प्रेय के झगड़े को स्पष्ट कर दिया है। पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि वे शास्त्र और काव्य में कोई अंतर नहीं मानते। उन्होंने न केवल इनका व्यावहारिक अंतर माना है, अपितु प्राचीन भारत की शिक्षा-व्यवस्था का भी विवरण दिया है, जिसमें इन दोनों की शिक्षा अलग-अलग दो केन्द्रों में दी जाती थी। शास्त्रीय व्यापार के संबंध में प्रसाद स्वयं कहते हैं—"मन संकल्प और विकल्पात्मक है। विकल्प विचार की परीक्षा करता है। तर्क-वितर्क कर लेने पर भी किसी संकल्पात्मक प्रेरणा के ही द्वारा जो सिद्धान्त बनता है, वही शास्त्रीय व्यापार है। अनुभूतियों की परीक्षा करने के कारण और इसके द्वारा विश्लेषणात्मक होते-होते उसमें चरुत्व की, प्रेय की कमी हो जाती है। शास्त्र संबंधी ज्ञान को इसीलिए विज्ञान मान सकते हैं कि उसके मूल में परीक्षात्मक तर्कों की प्रेरणा है और उनका कोटिक्रम स्पष्ट रहता है।"[2]

प्रसाद ने अपनी इस धारणा पर कि—"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है" स्वयं शंका उठायी है—"कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि संकल्पात्मक मन की सब अनुभूतियाँ श्रेय और प्रेय दोनों ही से पूर्ण होती हैं, इसमें क्या प्रमाण है?" उत्तर वे स्वयं देते हैं—"किंतु इसीलिए साथ-ही-साथ असाधारण अवस्था का भी उल्लेख किया गया है। असाधारण अवस्था युगों की समष्टि अनुभूतियों में अन्तर्निहित रहती है, क्योंकि सत्य अथवा श्रेय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं, वह एक शाश्वत चेतनता है, या चिन्मयी ज्ञान-धारा है, जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है। प्रकाश की

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ८।
२. वही, पृ० ३७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

किरणों के समान भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के दर्पण में प्रतिफलित होकर वह आलोक को सुन्दर और ऊर्ज्जस्वित बनाती है।"[१]

अपने इस उत्तर में असाधारण अवस्था का निर्वचन कर प्रसाद ने काव्य और उसकी व्याख्या को रहस्यात्मक पुट दे दिया है। प्रसाद ने प्रस्तुत पुस्तक में उस असाधारण अवस्था का ऐतिहासिक अनुशीलन भी किया है। उनके इस अनुशीलन से आत्मा की उस असाधारण अवस्था का, जिसे मननशील संकलपात्मक अनुभूति या काव्यावस्था कहते हैं, जो परिचय प्राप्त होता है, हम बहुत संक्षेप में उल्लेख कर सकते हैं। यह अवस्था आत्मा की है, इसलिए स्वभावतः अवस्था के साथ-साथ आत्मा-संबंधी विभिन्न युगों की धारणाओं का परिचय प्रसाद जी देते गये हैं। आत्मा का विशुद्ध अद्वय स्वरूप आनन्दमय है और उस अद्वयता में संपूर्ण प्रकृति सन्निहित हैं, यह प्रसाद जी की सुदृढ़ धारणा और उपपत्ति है। आदि वैदिक काल में इस आत्मवाद के प्रतीक इन्द्र थे और यही धारा शैव और शाक्त आगमों में आगे चलकर बही। यही विशुद्ध आत्मदर्शन था, जिसमें प्रकृति और पुरुष की द्वयता विलीन हो गयी थी। शैव और शाक्त आगमों में जो अन्तर है, उसे भी प्रसाद जी ने प्रकट किया है—"कुछ लोग आत्मा को प्रधानता देकर जगत् को 'इदम्' और इदम् को 'अहम्' में पर्यवसित करने के समर्थक थे, वे शैवागमवादी कहलाये। जो लोग आत्मा की अद्वयता को शक्तिरंग जगत में लीन होने का साधान मानते थे, वे शाक्तागमवादी हुए।" आत्मा का यही विशुद्ध अद्वय प्रवाह परवर्ती रहस्यात्मक काव्य में प्रसरित हुआ, इसलिए प्रसाद जी रहस्यात्मक काव्यधारा को ही आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा मानते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह शक्ति और आनन्द प्रधान धारा थी, जिसमें आदर्शवाद यथार्थवाद, दुःखवाद, बौद्धिक विवेकात्मक आदि, प्रसाद जी के मत से अनात्मवादी का, स्वीकार नहीं था। दुःख या करुणा के लिए यहाँ भी स्थान था किंतु यहाँ वेदना आनन्द की सहायक और साधक बनकर ही रह सकी।"[२]

'रस' और 'नाटकों में रस का प्रयोग'

प्रसाद जी की रस संवंघी उद्भावनाएँ अत्यन्त मौलिक हैं। वे काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभति मानकर उसे विश्लेषण, विकल्प और विज्ञान से अलग रखते हैं। रहस्यात्मक काव्यधारा को प्रसाद रस की मुख्य धारा के रूप

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ३८।

२. वही, पृ० ९-१०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में प्रतिपादित करते हैं जो उनकी नितांत नवीन, मौलिक और व्यक्तिगत अवधारणा है। संकल्पात्मक प्रेरणा से ही आनंदानुभूति-युक्त रस का प्रवाह अधिक संभव होता है। प्रसाद ने नाटक को रस-बोध का प्रधान साधन माना है, क्योंकि उससे रस का साधारणीकरण अधिक सहज है। आस्वाद के आधार पर वे सामाजिक अनुकर्त्ता तथा कृतिकार की स्थिति स्वीकार करते हैं। प्रसाद ने कवि को भी रसभोक्ता माना है।

रस के समक्ष प्रसाद वाग्वैचित्र्य और चरित्र-चित्रण को महत्व नहीं देते—"यह विचारणीय है कि चरित्र-चित्रण को प्रधानता देने वाले ये दोनों पक्ष रस से कहां तक सम्बद्ध होते हैं। इस दोनों पक्षों का रस से सीधा संबंध तो नहीं दिखायी देता; क्योंकि वर्तमान युग की मानवीय मान्यताएँ अधिक प्रभाव डाल चुकी हैं, जिसमें व्यक्ति अपने को विरुद्ध स्थिति में पाता है। फिर उसे साधारणतः अभेदवादी कल्पना, रस का साधारणीकरण कैसे हृदयंगम हो?"[१] अतः वे एकांगी आदर्श या यथार्थ के आधार पर दुःख संबंधी धारणा के पक्ष में नहीं हैं। भारतीय दर्शन में आनंद की महत्ता के कारण ही भारतीय नाट्यशास्त्र में ट्रेजडी का कोई स्थान नहीं है। प्रसाद इस मत के समर्थक नहीं हैं कि नाटकों में शांत रस का अभिनय असंभव है—प्रसाद ने 'तम' और 'निर्वेद' को अभिनयोपयोगी सिद्ध कर दिया है—"नट को आस्वाद तो होता ही नहीं, इसलिए शान्त भी क्यों न अभिनयोपयोगी रस माना जाय। यह कहना व्यर्थ है कि शान्तस्य शमसाध्यत्वान्नटे चेतदसम्भवात् अष्टावेव रसः नाट्ये न शान्तस्तत्र युज्यते। शम का अभाव नटों में होता है। शान्त का अभिनय असंभव है। नटों में तो किसी भी आस्वाद का अभाव है, इसलिए शान्त रस भी अभिनीत हो सकता है, इसकी आवश्यकता नहीं कि नट परम शान्त, संयत हो ही। किन्तु साधारणीकरण में रस और आस्वाद की यह कमी मानी नहीं गयी।"[२]

प्रसाद अभिनय में निम्न कोटि की रसानुभूति नहीं स्वीकार करते—"इधर एक निम्न कोटि की रसानुभूति की भी कल्पना हुई है। कुछ लोग कहते हैं कि 'जब किसी अत्याचारी के अत्याचार को हम रंगमंच पर देखते हैं, तो हम उस नट से अपना साधारणीकरण नहीं कर पाते। फलतः उसके प्रति रोष-भाव ही जाग्रत होता है, यह तो स्पष्ट विषमता है।" किन्तु रस में फलयोग अर्थात् अन्तिम संधि मुख्य है, इन बीच के व्यापारों में जो संचारी भावों के प्रतीक हैं, रस को खोज कर

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ८३।

२. वही, पृ० ८१-८२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उसे छिन्न-भिन्न कर देना है। ये सब मुख्य रस वस्तु के सहायक-मात्र हैं। अन्वय और व्यतिरेक में, दोनों प्रकार से वस्तु-निर्देश किया जाता है। इसलिए मुख्य रस का आनन्द वढ़ाने में ये सहायक मात्र ही हैं, वह रसानुभूति की निम्न कोटि की नहीं होती।"[1]

प्रसाद व्यक्ति-वैचित्र्य को साधन रूप में ही प्रयुक्त किए हैं, साध्य रूप में नहीं। इसके द्वारा रस में चमत्कार की थोड़ी वहुत सृष्टि होती है। वे लोक-मंगल की वर्तमानता भी काव्य में अप्रत्यक्ष रूप में स्वीकार करते हैं वह सामाजिक में दार्शनिक सूक्ष्मता के आधार पर अवतरित होती है, स्थूल रूप में उसमें वर्तमान नहीं रहती। भरत के रस-सूत्र की व्याख्या उन्होंने दार्शनिक आधार पर की है। वे स्पष्ट घोषित करते हैं कि—"आनन्द के अनुयायियों ने धार्मिक वुद्धिवादियों से अलग सर्वसाधारण में आनंद का प्रचार करने के लिए नाट्य रसों की उद्भावना की थी। हाँ, भरत में नाट्य-प्रयोग केवल कुतूहल शांति के लिए ही नहीं था।"[2] अभिनवगुप्त के मत की पुष्टि करते हुए वे नाट्यशास्त्र के पारमार्थिक प्रयोजन, आध्यात्मिक आधार और दार्शनिक लक्ष्यों को पूर्णरूप से सिद्ध करते हैं। रीति, वक्रोक्ति और अलंकार संप्रदायों को प्रसाद ने रसवादियों के प्रति विवेकवादियों की प्रतिक्रिया माना हैं। रस को काव्य की आत्मा सिद्ध करने वाले आचार्यों का वे सम्यक् विश्लेषण करते हैं।

रस विवेचन में प्रसाद ने कुछ व्यक्तिगत मौलिक सिद्धांत प्रतिष्ठापित किए हैं। साधारणीकरण के विशुद्ध शास्त्रीय अर्थ को वे एक वार पुनः प्रतिष्ठित करके तत्कालीन आचार्यों के भ्रम को समाप्त किये। रस की दार्शनिक प्रतिष्ठा का श्रेय निश्चय ही प्रसाद को है। 'नाटकों में रस' निवंध में उन्होंने रस-सम्प्रदाय और रस सिद्धान्त से सम्बद्ध अनेक विवादास्पद पहलुओं पर अपना पुष्ट मत प्रस्तुत किया है। प्रसाद के ये दोनों निबंध भारतीय काव्यशास्त्र का पूर्ण समर्थन करते हैं, तथा उनके मूलभूत निष्कर्षों को प्रकाशित करते हैं। प्रसाद ने रस संप्रदाय के विकास में अलंकार वक्रोक्ति, और रीति संप्रदाय की पूरी शव परीक्षा की है तथा रस की स्थिति को उन्होंने काव्य के जन्म लेने के समय से ही सिद्ध की है। प्रसाद के विवेचन में यद्यपि शैवागम की आनंद साधना का दार्शनिक पक्ष अधिक है, जिसके परिणाम-स्वरूप मत स्थापन में कहीं-कहीं दुराग्रह का आभास भी मिलता

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ८२-८३।
२. वही, पृ० ७०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है पर यह सहज स्वीकार्य है कि उनकी रस-व्याख्या अत्यधिक प्रामाणिक तथा नितांत नवीन है।

सैद्धांतिक विवेचन

रहस्यवाद

प्रसाद ने 'रहस्यवाद' को पूर्ण भारतीय उपज माना है। अपने इस निबंध में उन्होंने विद्वत्तापूर्ण खोजों और अपने मौलिक प्रतिपादनों द्वारा यह पूर्ण प्रमाणित कर दिया है कि न तो आचार्य शुक्ल की भाँति ईस्टर की दासियों के धार्मिक भावों से रहस्यवाद को प्रेरणा मिली और न ही इस पर ईसाईयत का प्रभाव है। "कुछ लोगों का कहना है मेसोपोटामिया या बाबिलिन के बाल, ईस्टर प्रभृति देवताओं के मंदिरों में रहने वाली देवदासियाँ ही धार्मिक प्रेम का उद्गम है और वहीं से धर्म और प्रेम का मिश्रण उपासना में कामोपभोग इत्यादि अनाचार का आरंभ हुआ तथा यह प्रेम ईसाई धर्म के द्वारा भारतवर्ष के वैष्णव धर्म को मिला। किंतु उन्हें यह नहीं मालूम कि काम का धर्म में अथवा सृष्टि के उद्गम में बहुत बड़ा प्रभाव ऋग्वेद के समय में ही माना जा चुका है—कामस्तदग्ने समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है और प्रेम से वह शब्द अधिक व्यापक भी है।"[1] यही नहीं उन्होंने यह भी सिद्ध कर दिया कि देवदासियों का मंदिरों में प्रवेश भी हमारे यहाँ मेसोपोटामिया या बाबिलन से प्राचीन है—"देवदासियों का प्रचार दक्षिण के मंदिरों में वर्तमान है और उत्त-रीय भारत में ईसवी सन से कई सौ बरस पहले शिव, स्कंद, सरस्वती इत्यादि देवताओं के मंदिर नगर के किस भाग में होते थे, इसका उल्लेख चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है और सरस्वती का मंदिर तो यात्रागोष्ठी तथा संगीत आदि कला-संबंधी समाजों के लिए प्रसिद्ध था। देवदासियाँ मंदिरों में रहती थीं परन्तु वे उस देवप्रतिमा के विशेष अन्तर्निहित भावों को कला के द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए ही रहती थी। उनमें प्रेम पुजारिनों का होना असंभव नहीं था। सूफी रविया से पहले ही दक्षिण भारत की देवदासी अन्दल ने जिस कृष्ण प्रेम का संगीत गाया था, उसकी आविष्कर्त्री अन्दल को ही मान लेने में मुझे संदेह ही है।"[2] वे रहस्यवाद के संदर्भ में भारतीय काव्य-परंपरा को उद्धृत करते हैं जिसके मूल में ही रहस्यवाद विद्यमान है। प्रसाद जी ने यह स्वीकार किया है कि "एक दूसरे के

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ४७।
२. वही, पृ० ४८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

साथ संपर्क में आने पर विचारों का आदान-प्रदान होता ही है" लेकिन इसी के साथ वे कहते हैं—"किंतु भारतीय रहस्यवाद ठीक मेसोपोटामिया से आया है यह कहना वैसा ही है जैसा वेदों को 'सुमेरियन डाकुमेण्ट' सिद्ध करने का प्रयास।"[१]

विद्वानों के इस मत के संदर्भ में कि रहस्यवाद का मूल उद्‌गम सेमेटिक धर्म-भावना है प्रसाद का मत है कि शाम देश के यहूदी जिनके पैगम्बर मूसा इत्यादि थे, सिद्धांत में ईश्वर को उपास्य और मनुष्य को जिहोवा का उपारक अथवा दास मानते थे। सेमेटिक धर्म में मनुष्य की ईश्वर से समता करना अपराध समझा गया है। क्राइस्ट, मंसूर और सरमद ने अपने को ईश्वर के समकक्ष सिद्ध करने का प्रयत्न किया था पर उन्हें सूली पर चढ़ा दिया गया। इसके विपरीत रहस्यवाद में मनुष्य की ईश्वर से समता मानी जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रहस्यवाद सेमेटिक धर्मभावना की उपज न होकर "सूफी संप्रदाय मुसलमानी धर्म के भीतर वह विचार-धारा है जो अरब सिंध का परस्पर संपर्क होने के वाद से उत्पन्न हुई थी।"[२]

रहस्यवाद को सेमेटिक धर्म भावना से प्रणीत न मानकर उसे भारतीय भावधारा सिद्ध करके प्रसाद ने शास्त्र सम्मत मीमांसा प्रस्तुत की है। उनके तर्कों के अनुसार बाह्य रहस्यानुभूति में आध्यात्म और अद्वैत की भावना नहीं है। रहस्य भावना और अध्यात्म दर्शन में परस्पर साहचर्य एवं वैचारिक सामंजस्य एक सीमा तक ग्राह्य है, किंतु वैदिक साहित्य प्रारंभिक युग तक रहस्यानुभूति का अपना स्वतः क्रम विकास है। प्रसाद उसका ऐतिहासिक अनुशीलन और पांडित्यपूर्ण विश्लेषण करते हुए शास्त्रानुमोदित सिद्ध करते हैं। उनके मतानुसार—"काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक मूल अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है।" प्रेम वैष्णव भावना में काम रूप से उपासना का विषय रहा है और उसे सौंदर्य एवं आनंद-भाव की उन्मद साधना प्रणाली माना गया है। शैव अद्वैत का सामरस्य और माधुर्य भाव रहस्य संप्रदाय से बहुत मेल खाता है। प्रसाद ने आनंद की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है—"जीवन में यथार्थ वस्तु आनंद है। कल्पित विवेक द्वारा यह आदर्श स्खलित हो जाता है। आर्य जाति क्रियाकलाप के बीच आनंद उल्लास और प्रमोद की उपासक रही है। आर्य लोग इसे आद्यंत व्यवहार्य वस्तु मानकर चले हैं। इन्द्र आतमवाद और आनन्द के प्रचारक तथा प्रतिनिधि हैं। वह स्वत्व के उपासक हैं। आत्मा में आनन्द-भोग का भारतीय आर्यों ने

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ४९।
२. वही, पृ० ४७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सदैव आदर किया है।"[१] और इसी आनंदवाद को स्वीकार न कर पाने से कुछ आलोचक रहस्यवाद को भारतीय विचार-धारा में स्थान नहीं देते हैं। "रहस्य-वाद के आनन्दपक्ष को उनके कल्पित भारतीयोचित विवेक में सम्मिलित कर लेने से आदर्शवाद का ढाँचा ढीला पड़ जाता है।"[२]

वस्तुतः उपनिषद में आनन्द की प्रतिष्ठा से प्रेम और प्रमोद की भी स्थिति स्वीकार की गयी है। आनन्दमय आत्मा की यह उपलब्धि विकल्पात्मक विचारों और तर्कों द्वारा नहीं हो सकती। ये समस्त श्रुतियां काव्यमयी हैं। श्रुति अनुसार आनन्द का स्वभाव ही उल्लास है। जगत् अन्तरात्मा की व्यावहारिक अद्वयता है।[३] प्रसाद ने भारतीय काव्य की मूल प्रेरणा में विरह भाव को सिद्ध किया है। यह सत्य है कि रहस्यात्मक संकेतों में प्रेम और सौन्दर्य का सम्मिश्रण होता है। "वर्तमान हिन्दी में जिस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी व्यंजना होने लगी है, वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के द्वारा अहं का इदम् से समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है। हाँ, विरह भी युग की वेदना के अनुकूल मिलन का साधन बनकर इसमें सम्मिलित है। वर्त्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी संपत्ति है, इसमें सन्देह नहीं।"[४] प्रसाद ने प्राचीन वेदों और उपनिषदों के प्रमाण देकर यहाँ यह सिद्ध कर दिया है कि यह भारत की मूल साधना है, कहीं उधार ली हुई नहीं। अपने इस प्रतिपादन द्वारा उन्होंने शुक्ल जी की[५] अनेक भ्रान्तियों का निरा-करण कर दिया है। प्रसाद की स्थापना है—भारतीय विचारधारा में रहस्यवाद एक प्रमुख पद्धति है।

प्रसाद की स्थापनाएँ अत्यन्त मौलिक और विचार सरणि को एक नवीन पथ प्रदान करने वाली हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है—"पिछले काल में भारत के दार्शनिक अनात्मवादी ही भक्तिवादी बने और बुद्धिवाद का विकास भक्ति के रूप में हुआ।"[६] प्रसाद ने काव्य के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण लेकर रहस्य-भावना की प्रकृत भावधारा का नैसर्गिक विकास सिद्ध किया है। प्रसाद के अनुसार

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ४९-५०।
२. वही, पृ० ४९।
३. डॉ० दीक्षित : प्रसाद का गद्य, पृ० ११९।
४. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ६८।
५. आचार्य शुक्ल : काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि, भाग २।
६. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ५१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इस प्रकार की रहस्यवादी युक्तियाँ चिरंतन हैं? वैदिक ऋषियों के गुह्य तथ्यों का चमत्कारिक एवं सांकेतिक आत्म प्रकाशन, सिद्धों व साधु संतों की अटपटी 'संध्या भाषा' और भक्त कवियों के प्रेम योग के मूल में यह रहस्य भावना ही है।

इस प्रकार प्रसाद ने आगमों में रहस्यवाद के मूल की प्रतिष्ठापना की एवं उसके विदेश से आने के आरोप का जोरदार खण्डन किया है। प्रसाद रहस्यवाद के काव्य-स्वरूप को प्रकृति प्रदत्त मानते हैं और उसे एक स्वाभाविक विकास-क्रम में घटित भी करते हैं। प्रसाद ने रहस्यवादी भावना को छायावादी काव्य प्रवृत्ति से पृथक् रखा है। प्रसाद के इस विवेचन में उनकी गम्भीर अध्ययन और तर्क-शक्ति तथा गम्भीर विश्लेषण क्षमता प्रमाणित हो उठी है।

'यथार्थवाद' और 'आदर्शवाद'

प्रसाद निवन्ध के प्रारम्भ में यथार्थवाद के विकास का संक्षिप्त परिचय देते हैं। भारतेन्दु काल से वे साहित्य में इसका उदय मानते हैं। उनके अनुसार —"साहित्य में पुनरुद्धार काल में श्री हरिश्चन्द ने प्राचीन नाट्य रसानुभूति का महत्व फिर से प्रतिष्ठित किया और साहित्य की भाव-धारा को वेदना तथा आनन्द में नये ढंग से प्रयुक्त किया।...किन्तु 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' इत्यादि में राष्ट्रीय अभावमयी वेदना भी अभिव्यक्त हुई।

श्री हरिश्चन्द ने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही जीवन के यथार्थ रूप का भी चित्रण आरंभ किया था। 'प्रेम योगिनी' हिन्दी में इस ढंग का पहला प्रयास है। और 'देखी तुमरी कासी' वाली कविता को भी मैं इसी श्रेणी की रचना समझता हूँ। प्रतीक विधान चाहे दुर्बल रहा हो, परन्तु जीवन की अभिव्यक्ति का प्रयत्न हिन्दी में उसी समय प्रारंभ हुआ। वेदना और यथार्थवाद का स्वरूप धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा।"[१] प्रसाद के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि यथार्थवाद के प्रारंभिक पुरस्कर्त्ता के रूप में वे भारतेंदु को स्वीकार करते हैं तथा वेदना और जीवन का चित्रण वे यथार्थवाद का प्रमुख कर्त्तव्य मानते हैं।

आगे चलकर वे स्पष्ट लिखते हैं कि "यथार्थवाद की विशेषताओं में प्रधान है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात। उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। लघुता से मेरा तात्पर्य है साहित्य के माने हुए सिद्धान्त के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ११६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जीवन के दु:खों और अभावों का वास्तविक उल्लेख।"[1] प्रसाद का यह मत सिद्धांत निरूपण के गूढ़ तथ्यों को उद्घाटित करते हुए भी संयत है। उनके विचार से समसामयिक प्रेरणा और युग के पुनरुद्धार का संकल्प ग्रहण करके यथार्थवाद जन्मा। प्रसाद ने यह कह कर कि—"उस व्यापक दुख: संवलित मानवता को स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है।[2] इस यथार्थवादिता में अभाव, पतन और वेदना के अंश का प्राचुर्य होता है"—वस्तुस्थिति को और भी स्पष्ट कर दिया।

सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिक्रिया को यथार्थ की भावभूमि पर सिद्ध करके वे इसे तथ्यवाद के नाम से अभिहित करते हैं। उनके मतानुसार क्षुद्र दुर्बलता की मूल भावना समेटकर भी यहाँ 'महत्' का साहित्य बन सकता है। प्रगतिशीलता के अभाव में सिद्धांत से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचन कर्त्ता बन जाता है। समाज को कैसा होना चाहिए वह यही आदेश करता है और यथार्थवादी सिद्धांत से ही इतिहासकार से अधिक कुछ नहीं ठहरता, क्योंकि यथार्थवाद इतिहास की संपत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज का क्या स्वरूप था। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद विशुद्ध यथार्थवादी को इतिहासकार से परे नहीं मानते और आदर्शवादी को धार्मिक प्रवचनकर्त्ता से अधिक नहीं स्वीकार करते। प्रसाद को इन दोनों के बीच की स्थिति स्वीकार्य है और दोनों का समन्वित रूप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद होता है। किन्तु साहित्य को वे इससे भिन्न मानते हैं। समय की वास्तविक स्थिति क्या है, इनको दिखाते हुए भी साहित्य उसमें आदर्शवाद का सामंजस्य स्थिर करता है। इसीलिए प्रसाद ने दोनों की अनिवार्यता स्वीकार की है और घोषित किया है कि—"दु:ख-दग्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है।"[3] लोक मंगल की कामना भी काव्य का एक अनिवार्य पक्ष है। प्रसाद ने प्रगतिशील साहित्य से वर्गगत आन्दोलन के प्रति असहमति प्रकट की है। प्रगति का यह विधान बड़ा विस्तृत है। उसमें अधिक उछलने में स्खलन का भी भय है। प्रसाद का दृष्टिकोण सर्वांगीण है।

प्रसाद की इन स्थापनाओं को हिन्दी आलोचक नतशिर स्वीकार करते हैं। यथार्थवाद की सारगर्भित परिभाषा से प्रसाद के यश में वृद्धि हुई। उन्होंने स्पष्ट कहा है—"महत्ता के काल्पनिक चित्रण से अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दु:ख

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ११८।
२. वही, पृ० ११९।
३. वही, पृ० १२१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

संवलित और अभावों का वास्तविक उल्लेख उस व्यापक दुःख संवलित मानवता का स्पर्श करने वाला साहित्य यथार्थवादी बन जाता है।" डॉ० नामवर सिंह ने भी प्रसाद के इस महत्वपूर्ण योगदान को स्वीकार किया है। "प्रसाद पहले आदमी थे, जिन्होंने छायावाद को ठीक-ठीक समझने के लिए उसके विपरीत यथार्थवाद को खड़ा किया और उन्होंने उन्हीं दोनों को युग की प्रधान प्रवृत्ति घोषित किया है।"[१] प्रसाद मनोविश्लेषणवादियों की एकांगी मनोवृत्ति की भर्त्सना करते हुए काव्यतत्वों में उसे स्वीकार नहीं करते। प्रसाद की स्थापना है कि साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन द्वारा लेखक केवल अपने मानसिक दौर्बल्य का परिचय देता है—"व्यक्ति की दुर्बलता के कारण की खोज में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था और सामाजिक रूढ़ियों को पकड़ा जाता है और इस विषमता को ढूंढ़ने पर वेदना ही प्रमुख होकर सामने आती है। साहित्यिक न्याय की व्यावहारिकता में वह संदिग्ध होता है।"[२]

प्रसाद के इस यथार्थवाद के विवेचन से स्पष्ट है कि उनकी पकड़ कितनी सूक्ष्म थी। उन्होंने यथार्थवाद के उद्‌गम से लेकर उन प्रवृत्तियों तक का उल्लेख किया जिनके द्वारा यह वाद हिन्दी साहित्य में उपस्थित हुआ है। उन्होंने इसके मूल में लेखकों की बदलती स्थिति और प्रवृत्ति को प्रमुख कारण माना। उनके अनुसार जहाँ पहले लेखक आदर्श चरित्रों के रूप में दैवी चरित्रों या प्रख्यात् वंश के नायक नायिकाओं को ही अपने काव्य का विषय बनाते थे वहाँ भारतेन्दु काल के बाद लेखक की दृष्टि जन साधारण की तरफ गयी। उन्होंने अपनी रचना को जीवन के अधिक निकट बनाने के लिए उसी के चित्रण का लक्ष्य सामने रखा। और जीवन के यथार्थ चित्रण की तरफ जब वे आकृष्ट हुए तो उन्होंने सिर्फ वेदना ही देखी। और वेदना की विवृत्ति ही यथार्थवाद का मूल है। लेखकों के इस बदलाव का कारण था राजा-महाराजा या दैवी चरित्रों के प्रति जनता में अविश्वास की भावना। जनता विदेशी शासकों से त्रस्त थी, उसे न तो उसके राजा महाराजा त्राण दे पाए और न दैवी चरित्र। इसलिए उसकी उदासीनता ने लेखकों के दिशा परिवर्तन में बहुत अधिक सीमा तक प्रेरणा प्रदान की। प्रसाद ने स्वयं स्वीकार किया है—"जाति में जो धार्मिक और साम्प्रदायिक परिवर्तनों के स्तर आवरण स्वरूप बन जाते हैं, उन्हें हटाकर अपनी प्राचीन वास्तविकता को खोजने की चेष्टा भी साहित्य में तथ्यवाद की सहायता करती है। फलतः

---

१. डॉ० नामवर सिंह : हिन्दी के आलोचक, पृ० २६८।

२. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

आरंभिक साहसपूर्ण और विचित्रता से भरी आख्यायिकाओं के स्थान पर—जिनकी घटनाएँ राजकुमारों से ही सम्बद्ध होती थीं—मनुष्य के वास्तविक जीवन का साधारण चित्रण आरंभ होता है। भारत के लिए उस समय दोनों ही वास्तविक थे—यहाँ के दरिद्र जनसाधारण और महाशक्तिशाली नरपति। किन्तु जनसाधारण और उनकी लघुता के वास्तविक होने का एक रहस्य है। भारतीय नरेशों की उपस्थिति भारत के साम्राज्य को बचा नहीं सकी। फलतः उनकी वास्तविक सत्ता में अविश्वास होना सकारण था। धार्मिक प्रवचनों ने पतन में और विवेक दम्भपूर्ण आडम्बरों ने अपराधों में कोई रुकावट नहीं डाली। तब राजसत्ता का कृत्रिम और धार्मिक महत्व व्यर्थ हो गया और साधारण मनुष्य, जिसे पहले लोग अकिंचन समझते थे, वही क्षुद्रता में महान दिखलायी पड़ने लगा।"[1]

प्रसाद ने आदर्शवाद और यथार्थवाद का भी बड़ा मौलिक अंतर प्रस्तुत किया। रावण की पराजय और पतन आदर्शवाद का परिणाम हैं पर यथार्थवादी के यहाँ यह मान्य हैं कि मनुष्य में दुर्वलताएँ होतीं हैं। प्रसाद के अनुसार ही—"आरंभ में जिस आधार पर साहित्यिक न्याय की स्थापना होती हैं—जिसमें राम की तरह आचरण करने के लिए कहा जाता हैं, रावण की तरह नहीं—उसमें रावण की पराजय निश्चित है। साहित्य में ऐसे प्रतिद्वन्द्वी पात्र का पतन आदर्शवाद के स्तंभ में किया जाता है, परन्तु यथार्थवादियों के यहाँ कदाचित यह भी माना जाता है कि मनुष्य में दुर्वलताएँ होती ही हैं। और वास्तविक चित्र में पतन का भी उल्लेख आवश्यक है। और फिर पतन के मुख्य कारण क्षुद्रता और निन्दनीयता भी—जो सामाजिक रूढ़ियों के द्वारा निर्धारित रहती हैं—अपनी सत्ता बनाकर दूसरे रूप में अवतरित होती हैं।"[2]

प्रसाद का निबंध व्यक्तित्व इस निबंध में पूर्ण रूप से प्रकाशित हुआ है। उनकी गम्भीर, तर्कसंगत और नितांत मौलिक स्थापनाएँ इसकी प्रमाण हैं।

छायावाद

छायावाद की व्याख्या और सैद्धांतिक प्रतिपादन में प्रसाद अत्यन्त संगत और संतुलित हैं। छायावाद को उन्होंने—"वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ११९।

२. वही, पृ० ११९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अभिव्यक्ति"[1] माना है। रीतिकालीन प्रचलित परंपरा से इस प्रकार की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति हुई। जहाँ रीतिकाल में वाह्य वर्णन की प्रधानता थी वहीं नवीन भावों में आंतरिक स्पर्श की पुलक एवं आभ्यंतर सूक्ष्म भावों की प्रेरणा थी, जिससे बाह्य व स्थूल आकार में विचित्रता उत्पन्न होती है। प्रसाद ने यह स्वीकार किया है कि "सूक्ष्म आभ्यंतर भावों के व्यवहार में प्रचलित पदयोजना असफल रही। उनके लिए नवीन शैली, नया वाक्य विन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यंतर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी।"[2] मोती के भीतर की छाया और तरल लावण्य की समानता देकर प्रसाद ने छायावाद को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया। उनके मतानुसार—"शब्द और अर्थ की यह स्वाभाविक वक्रता विच्छित्ति, छाया और कांति का सृजन करती है। इस वैचित्र्य का सृजन करना विदग्ध कवि का ही काम है।"[3] यही नहीं वे आगे चलकर कहते हैं कि कुंतक इस छाया को वक्रता की उद्भावना के मूल में मानते हैं।

यह प्रतीयमान छाया अपनी अभिव्यक्ति के लिए कई माध्यम अपनाती है। इसमें वाह्य और आंतर सादृश्य प्रकट होता है और स्वानुभूत संवेदनीय वस्तु उक्ति वैचित्र्य के साथ प्रकट होती रहती है। इस काव्य-विधा में प्रकृति के सुकुमार भावों की महत्ता स्थापित है तथा आत्मानुभूति की प्रवलता भी स्वीकार्य है। छायावाद को प्रसाद ने हिन्दी की अनिवार्यता माना है। प्रसाद ने कहा है कि—"ये अनुभूतिमय आत्मस्पर्श काव्य जगत के लिए अत्यन्त आवश्यक थे। काकु या श्लेष की तरह यह सीधी वक्रोक्ति भी न थी। वाह्य से हटकर काव्य की प्रवृत्ति आन्तर की ओर चल पड़ी थी।"[4] वस्तुतः इस कथन द्वारा प्रसाद ने छायावाद के लिए आत्माभिव्यक्ति और अन्तर्मंथन की अनिवार्यता स्वीकार की है।

छायावाद पर कतिपय विद्वानों ने अस्पष्टता का भी आरोप लगाया है पर प्रसाद ने इस आरोप का जोरदार खण्डन प्रस्तुत किया है—"हो सकता है, जहाँ कवि ने अनुभूति का पूर्ण तादात्म्य नहीं कर पाया हो, वहाँ अभिव्यक्ति विश्रृंखलित हो गई हो, शब्दों का चुनाव ठीक न हुआ हो, हृदय से उसका स्पर्श न होकर मस्तिष्क से ही मेल हो गया हो, परन्तु सिद्धांत रूप में ऐसा रूप छायावाद का ठीक

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२१।
२. वही, पृ० १२२।
३. वही, पृ० १२३।
४. वही, पृ० १२५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नहीं कि जो कुछ अस्पष्ट हैं छायावाद है, वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद हैं।"[१] प्रसाद के इस स्पष्ट कथन से भी कतिपय विद्वानों को भ्रांति हो गई हैं। 'प्रसाद का गद्य' के लेखक डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने इसका बड़ा भ्रामक रूप, पूर्णतया विपरीत रूप उपस्थित किया है। जहाँ प्रसाद छायावाद पर अस्पष्टता, के आरोप को अस्वीकार करते हैं, वहीं डॉ० दीक्षित प्रसाद द्वारा इसे स्वीकार करा देते हैं। डॉ० दीक्षित ने प्रसाद के आधे वाक्य को ही उद्धृत किया है—"जो कुछ अस्पष्ट छायामात्र हो, जहाँ वास्तविकता का स्पर्श न हो, वही छायावाद है।"—उन्होंने प्रारम्भिक नकारात्मक अंश—"परन्तु सिद्धान्त में ऐसा रूप छायावाद का ठीक नहीं हैं कि—"को छोड़ दिया हैं।[२]

प्रसाद ने छायावाद को रहस्यवाद से अलग माना है—"हाँ, मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है"[३] प्रसाद ने इस धारणा को भ्रामक बताया है कि "प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब हैं, इसलिए प्रकृति को काव्यगत व्यवहार में ले आ कर छायावाद की सृष्टि होती है।"[४] यहाँ भी डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित ने प्रसाद के मत को भ्रामक बना दिया है।[५] प्रसाद ने स्पष्ट कहा हैं कि—"यद्यपि प्रकृति का आलंवन स्वानुभूति का प्रकृति से तादात्म्य नवीन काव्य-धारा में होने लगा हैं, किंतु प्रकृति से संबंध रखने वाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।"[६] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसाद छायावाद में प्रकृति की स्थिति तो अवश्य स्वीकार करते हैं, किंतु मात्र प्रकृति की ही नहीं, प्रसाद ने अपने निष्कर्ष में कहा हैं—"छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती हैं। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ हैं।"[७]

प्रसाद ने अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष पर अधिक बल देकर साहित्य के नैसर्गिक महत्व की स्थापना की हैं। वर्णन प्रधान काव्य पर प्रसाद का यह मत चरितार्थ नहीं होता। प्रसाद की दृष्टि बीसवीं शती के छायावादी काव्य पर हैं,

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ० १२५।
२. डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित : प्रसाद का गद्य, पृ० १२०।
३. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध पृ० १२६।
४. वही, पृ० १२६।
५. डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित : प्रसाद का गद्य, पृ० १२१।
६. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२६।
७. वही, पृ० १२६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

जो द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया स्वरूप पुष्पित पल्लवित हुई। द्विवेदी युग के बाद काव्य-विकास की स्वाभाविक विवृत्ति छायावाद के रूप में प्रतिफलित हुई।

प्रसाद ने छायावाद में सूक्ष्म आंतर भाव, नवीन वाक्य विन्यास, वचन भंगिमा और नवीन उपकरण निर्दिष्ट किए हैं। शास्त्रीय मतों का उल्लेख कर प्रसाद ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्राचीन काव्यों में तथा आचार्यों ने छाया शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया हैं। छायावाद का सौष्ठव वे ध्वन्यालोक के आधार पर निरखते-परखते हैं। ध्वन्यालोककार के रमणीयत्व तथा लावण्य आदि शब्दों को प्रसाद ने 'विच्छित्ति' और 'छाया' का रूप दिया है। इसी छाया की तरलता को काव्य में उपस्थित कर प्रसाद ने 'छायावाद' के संदर्भ में अपना नवीन सिद्धांत स्थापित किया। उनके अनुसार इस छाया सृजन के लिए कवि में विदग्धता की स्थिति अनिवार्य हैं और यह विदग्धता अनुभूति की प्रवणता का परिणाम होती है। हृदय का स्पर्श पाकर बुद्धि का सम्मिलित रूप 'छायाभास' देने में सफल होता है। आचार्य शुक्ल ने छायावाद को प्रकृतिवाद तक ही सीमित कर रखा था। पर प्रसाद ने स्पष्ट घोषित किया है कि "प्रकृति से संबंध रखने वाली कविता को ही छायावाद नहीं कहा जा सकता।"[1]

प्रसाद ने इस विवेचन में अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रकाशित किया हैं। प्रसाद रहस्यवाद को छायावाद से अलग ही रखते हैं। प्रसाद ने इन सभी प्रवृत्तियों का अपना अलग अस्तित्व निरूपित किया हैं। छायावाद में उन्होंने अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को सर्वाधिक महत्व दिया। युगीन शंकाओं को प्रसाद ने अपने प्रबल तर्कों और सटीक व्याख्या से प्रशमित किया।

गवेषणात्मक एंवं ऐतिहासिक विवेचनात्मक निबन्ध

प्रसाद के तीन निबंध (१) नाटकों का आरम्भ , (२) रंगमंच और (३) आरम्भिक पाठ्यकाव्य गवेषणात्मक पद्धति पर लिखे गए निबन्ध हैं।

(१) नाटकों का आरम्भ

नाटकों के आरंभ के संबंध में उनकी गवेषणा समादरणीय हैं। प्रसाद ने अपने शोध द्वारा नाटक का मूल रामायण और महाभारत से प्राचीन सिद्ध किया है। भरत के नाट्य शास्त्र का उल्लेख कर उन्होंने उसमें उल्लिखित दो नाटकों— 'अमृत मंथन' और 'त्रिपुर दाह' का उल्लेख किया हैं। पतंजलि ने भी 'कंस वध' और 'बालिवध नामक' नाटकों का उल्लेख किया है। नाटकों का बीज वे वैदिक संवादों

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १२६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में भी खोज निकालते हैं। वैदिक काल के अभिनय का एक प्रसंग भी प्रसाद ने उपस्थित किया है।

"सोम-विक्रयी ! सोम राजा वेचोगे ?"

'बिकेगा।'

'तो लिया जायगा।'

'ले लो।'

'गौ की एक कला से उसे लूंगा।'

'सोम राजा इससे अधिक मूल्य के योग्य है।'

'गौ भी कम महिमावाली नहीं। इसमें मट्ठा, दूध, घी सब है।'

'अच्छा, आठवाँ भाग ले लो।'

'नहीं, सोम राजा अधिक मूल्यवान हैं।'

'तो, चौथाई लो।'

'नहीं, और मूल्य चाहिए।'

'अच्छा, आधी ले लो।'

'अधिक मूल्य चाहिए।'

'अच्छा, पूरी गौ ले लो भाई।'

'तब सोम राजा बिक गये, परन्तु और क्या दोगे ? सोम का मूल्य समझकर और कुछ दो।'

'स्वर्ण लो, कपड़े लो, गाय के जोड़े, बछड़ेवाली गौ, जो चाहो सब दिया जाएगा।' (यह मानो मूल्य से अधिक चाहने वाले को भुलावा देने के लिए अध्वर्यु कहता।)"[१]

यही नहीं प्रसाद 'देवासुर संग्राम' के बाद इन्द्रध्वज के महोत्सव पर देवताओं के द्वारा नाटक का आरंभ मानते हैं।[२]

प्रसाद ने नाट्य में नृत्य के समावेश के कारणों की भी खोज की है। "भरत ने नाट्य के साथ नृत्त का समावेश कैसे हुआ, इसका भी उल्लेख किया है। कदाचित् पहले अभिनयों में—जैसा कि सोमयाग-प्रसंग पर होता था—नृत्त की उपयोगिता नहीं थी, किन्तु वैदिक काल के बाद जब आगमवादियों ने रस-सिद्धान्त वाले नाटकों को अपने व्यवहार के लिए प्रयुक्त किया, तो परमेश्वर के ताण्डव के अनुकरण में, उसकी संवर्द्धना के लिए, नृत्त में उल्लास और प्रमोद की पराकाष्ठा देखकर नाटकों में इसकी योजना की।"[३]

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ८८।
२-३. वही, पृ० ८९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

नृत्य के दो भेद होते हैं—ताण्डव और लास्य। ताण्डव नृत्य प्रायः देव संबंध में होता था। लास्य लौकिक और सुकुमार होता था। लास्य के दस अंग होते हैं। नृत्त, नृत्य, ताण्डव, और लास्य विषय के अनुसार चार प्रकार के होते थे। नाटकों में इन सबका समावेश था। नाट्य के साथ नृत्य की योजना ने अति प्राचीन काल में ही अभिनय को संपूर्ण बना दिया था।

प्रसाद ने अपने इस शोधपूर्ण निबंध द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि नाटक की परंपरा भारत की अपनी और बहुत ही प्राचीन है। इसलिए प्रसाद जी का स्पष्ट मत है कि —"यह कहना ठीक नहीं कि भारत में अभिनय कठपुतलियों से आरंभ हुआ, और न तो महावीर चरित ही छाया नाटक के लिए बना।"[१] इसे और स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं—"कठपुतलियों से नाटक आरंभ होने की कल्पना का आधार सूत्रधार शब्द है। किंतु सूत्र के लाक्षणिक अर्थ का ही प्रयोग सूत्रधार और सूत्रात्मा जैसे शब्दों में मानना चाहिए। जिसमें अनेक वस्तुएँ ग्रथित हों और जो सूक्ष्मता से सब में व्याप्त हो, उसे सूत्र कहते हैं। कथावस्तु और नाटकीय प्रयोजन के सब उपादानों का जो ठीक-ठीक संचालन करता हो, वह सूत्रधार है, आजकल के डाइरेक्टर की तरह का होता था।"[२]

प्रसाद ने नाटकों के ऐतिहासिक विवेचन के साथ लगे हाथ गीति नाट्यों का भी उद्गम खोज निकाला है। "राघव विजय और मारीच-वध नाम के राग काव्य ठक्क और ककुभ राग में कदाचित् अभिनय के साथ ताल के अनुसार गाए जाते थे। ये प्राचीन राग-काव्य ही आजकल की भाषा में गीति-नाट्य कहे जाते हैं।"[३]

अंत में प्रसाद अपने निष्कर्ष में स्पष्ट रूप से अपना मत स्थिर करते हैं कि—"इस तरह अति प्राचीन काल में ही नृत्य के अभिनय से संपूर्ण नाटक और गीति नाट्य भारत में प्रचलित थे। वैदिक, बौद्ध तथा रामायण और महाभारत काल में नाटकों का प्रयोग भारत में प्रचलित था।"

प्रस्तुत निबंध में प्रसाद ने अपनी विद्वत्तापूर्ण गवेषणा द्वारा नाटक की भारत में प्राचीनता सिद्ध की है। उन्होंने आधुनिक विद्वानों के इस मत को कि—"अभिनय का आरम्भ कठपुतलियों से हुआ"—पूर्णतया गलत सिद्ध किया है और उसका मूल वैदिक काल में खोज निकाला है। इस विभ्रम के मूल 'सूत्रधार'

---

१. प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ९९।

२. वही, पृ० ९१।

३. वही, पृ० ९१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शब्द की भी उन्होंने तर्कसगत, स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की और सूत्रधार का अर्थ उन्होंने कथावस्तु और नाटकीय प्रयोजन का संचालन करने वाला माना हैं। नाटक के साथ ही उन्होंने गीति नाट्यों का मूल भी प्राचीन काव्यों में खोज निकाला है और उसे पूर्ण भारतीय सिद्ध किया। इस प्रकार प्रसाद ने नाटक, अभिनय, सूत्रधार और गीति नाट्य के संदर्भ में आधुनिक विद्वानों के मानस में उपजी भ्रांतियों को तर्कसंगत प्रमाण देकर दूर कर दिया है। इस क्षेत्र में प्रसाद का योग बहुत महत्वपूर्ण है।

रंगमंच

'रंगमंच' प्रसाद का दूसरा गवेषणात्मक निबंध है जिसमें उन्होंने रंगमंच के इतिहास, उसके आकार-प्रकार की विद्वत्तापूर्ण खोज प्रस्तुत की हैं। "प्राचीन काव्यों में आए नाट्य मंदिरों के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि पर्वत की गुफाओं में खोदकर बनाए जाने वाले मंदिरों के ढंग पर ही नगर की रंगशालाएँ बनती थीं। नाट्य मंदिर इस तरह से बनाए जाते थे, जिससे उनका प्रदर्शन विमान का सा हो। उन्होंने लिखा है कि नाट्य मण्डप तीन तरह के होते थे—विकृष्ट, चतुरस्र और व्यस्य। विकृष्ट नाट्य मण्डप की चौड़ाई लम्बाई से दूनी होती थी। उस भूमि के दो भाग किए जाते थे। पिछले आधे के फिर दो भाग होते थे। आधे में रंग-शीर्ष और रंगपीठ और आधे में पीछे नैपथ्य गृह बनाया जाता था। आगे के बड़े आधे भाग में बैठने के लिए, जिससे दर्शकों को रंगशाला का अभिनय अच्छी तरह दिखलाई पड़े, सोपान की आकृति का बैठक बनाया जाता था। ईंटों और लकड़ियों से ये सीढ़ियाँ एक हाथ ऊँचाई पर बनायी जाती थीं। इसी प्रसंग में मत्तवारणी का भी उल्लेख है। किंतु मेरी समझ में यह मत्तवारणी रंगपीठ के बराबर केवल एक ही ओर चार खम्भों से रुकावट के लिए बनाई जाती थी। मत्तवारणी शब्द से भी यही अर्थ निकलता है कि वह मतवालों को वारण करे। यह डेढ़ हाथ ऊँची रंगपीठ के अगले भाग में लगा दी जाती थी।"[१]

इस प्रकार प्रसाद ने रंगमंच का एक नक्शा ही प्रस्तुत कर दिया है और मत्त-वारणी के संबंध में मतभेदों को समाप्त कर अपना स्पष्ट मत स्थिर किया हैं।

प्रसाद ने 'यवनिका' के सम्वन्ध में भी अपना स्पष्ट मत दिया है और उसे शुद्ध भारतीय शब्द माना है। "कुछ लोगों का कहना है कि भारतवर्ष में 'यवनिका' यवनों अर्थात् ग्रीकों से नाटकों में ली गयी है, किन्तु मुझे यह शब्द शुद्ध रूप से

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ९३-९४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यवहृत 'जवनिका' भी मिला।...जवनिका से शीघ्रता का द्योतन होता है। जव का अर्थ वेग और त्वरा से है। तब जवनिका उस पट को कहते हैं, जो शीघ्रता से उठाया या गिराया जा सके।"[1]

प्रसाद ने यहीं नाटकीय वस्तु और उसके देशकाल का भी संकेत दिया है। उनके अनुसार एक अंक का समय एक वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए। पाँच अंक नाटक के रंगमंच के अनुकूल इसलिए माने जाते थे कि उनमें कथावस्तु की पाँचों संधियों का क्रम विकास होता था।

रंगमंच की बाध्य-बाधकता के संदर्भ में विचार करते हुए प्रसाद ने स्पष्ट कहा है कि—"काव्यों के अनुसार प्राचीन रंगमंच विकसित हुए और रंगमंचों की नियमानुकूलता मानने के लिए काव्य बाधित नहीं हुए। अर्थात् रंगमंचों को ही काव्य के अनुसार अपना विस्तार करना पड़ा और यह प्रत्येक काल में माना जाएगा कि काव्यों के अथवा नाटकों के लिए ही रंगमंच होते हैं। काव्यों की सुविधा जुटाना रंगमंच का काम है। क्योंकि रसानुभूति के अनन्त प्रकार नियमबद्ध उपायों से प्रदर्शित नहीं किए जा सकते और रंगमच ने सुविधानुसार काव्यों के अनुकूल समय-समय पर अपना स्वरूप-परिवर्तन किया है।"[2]

प्रसाद ने नौटंकी और भाण को प्राचीन परम्परा में सिद्ध किया है। "मेरा निश्चित विचार है कि भाणों की परिहास की अधिकता संस्कृत-भाण मुकुन्दानन्द और रस सदन आदि की परंपरा में है, और नाटकीय या नाटकी प्राचीन राग काव्य अथवा गीति-काव्य की स्मृतियाँ हैं।"[3]

प्रसाद ने भारतीय अभिनय पर विदेशी प्रभावों को खासकर पारसी व्यवसायी कपनियों के प्रभाव को—स्वीकार किया है। किंतु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि "दक्षिण भारतीय रंगमंच निजी स्वरूप में अपना अस्तित्व रख सका।"[4]

प्रसाद ने पारसी स्टेज के आधार पर स्टेज पर यथार्थपूर्ण अभिनय की कल्पना करने वालों की कड़ी टीका की है। प्रसाद जी ने इस कटु सत्य को भी स्वीकार किया है कि हिन्दी का अपना कोई रंगमंच नहीं है। जब उसके पनपने का अवसर था, तभी सस्ती भावुकता लेकर वर्तमान सिनेमा में बोलने वाले चित्रपटों का अभ्युदय हो गया, फलतः अभिनयों का रंगमंच नहीं-सा हो गया।

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ९६।
२. वही, पृ० १०१।
३. वही, पृ० १०२।
४. वही, पृ० १०३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

हिन्दी में रंगमंच के अभाव का कारण स्त्रियों का अभाव भी है। सवाक चित्र और अन्य साधन न होने से यथार्थ मंचन अथवा हिन्दी नाटकों का स्वाभाविक अभिनय नहीं हो सकता।

भाषा के सरलीकरण और स्वाभाविकता, की समस्या भी प्रसाद के समक्ष आयी है। वे बाह्य प्रभावों के असम्बद्ध स्पष्टीकरण को और भी क्लिष्ट मानते हैं। "पात्रानुकूल भाषा के समर्थक होकर भी प्रसाद विभिन्न भाषाओं की नुमाइश रंगमच पर नहीं उतारना चाहते हैं।"[1]

प्रसाद का अंतिम निष्कर्ष है कि—"रंगमंच के संबंध में भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जायं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हों।"

'प्रसाद' ने इस निबंध में जहाँ रंगमंच का इतिहास और उसके स्वरूप का विशद विवेचन किया है वहीं उन्होंने हिंदी रंगमंच की हीन अवस्था, उसके कारणों का उल्लेख किया है साथ ही हिन्दी रंगमंच की कमियों का संकेत किया है। उन्होंने पारसी रंगमंच के प्रभाव, तथा उससे हिन्दी रंगमंच के विकास की प्रवृत्ति को घातक बताया है। विद्वानों के इस मत का कि—"भाषा सरल पात्रानुकूल और स्वाभाविक हो" की कटु आलोचना की है, उनके अनुसार इस तरह से नाटक भाषा की नुमाइश हो जाएगा। उन्होंने भाषा की क्लिष्टता के आरोप को भी अस्वीकार किया है, उनके अनुसार अभिनय का मुख्य कार्य भाषा को संवेद्य वनाना होता है। प्रसाद जी नाटक की रचना रंगमंच के लिए नहीं मानते उनके अनुसार नाटकों के अनुकूल रंगमंच का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रसाद ने अपने इस गवेषणापूर्ण निबंध द्वारा रंगमंच तथा हिन्दी रंगमंच की अनेक भ्रांतियों को दूर कर दिया है।

आरम्भिक पाठ्य काव्य

प्रसाद ने श्रव्य काव्य को पाठ्य काव्य की संज्ञा दी है। इसी पाठ्य को वे वर्णनात्मक काव्य भी कहते हैं। और प्लेटो के वर्णनात्मक तथा अभिनयात्मक भेद भी स्वीकार करते हैं। पाठ्य के लिए वे परोक्ष अनुभूति अनिवार्य मानते हैं। इसके अंतर्गत उन्होंने काल्पनिक आदर्शवादी तथा वस्तुस्थितिपूर्ण (यथार्थवादी) काव्यों की गणना की है। तुलसी को वे समन्वयवादी, रीति कवियों को बौद्धिक, कृष्ण काव्य को मधुरोपासक, रहस्यवादी संतों को अनुभूतिपरक तथा

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० १०६-७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वीर-गाथा को वे संकल्पनात्मक सिद्ध करते हैं। इस निबंध में प्रसाद ने समस्त वर्णनात्मक काव्य की परोक्ष अनुभूति और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति को आधार बनाकर एक मौलिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया और उसके आधार पर अपना निश्चित मत प्रतिपादित किया। रामायण को वे शोक-पूर्ण महाकाव्य मानते हैं। परंतु उसे आदर्शवादी महाकाव्य मानते हैं। महाभारत को वे यथार्थवादी रचना मानते हैं। तथा उसमें व्यक्ति-वैचित्र्य का भी पूरा समावेश मानते हैं। प्रसाद ने आधुनिक हिन्दी काव्य का युग संदिग्ध और अनिश्चित माना है। उनके अनुसार "इसमें न तो पौराणिक काल की महत्ता है और न है काव्य-काल का सौंदर्य।"[१]

प्रसाद की दृष्टि में धर्म की आड़ में रामायण काव्य न होकर धर्मग्रंथ बन गया।

प्रस्तुत निबंध में प्रसाद ने पाठ्य काव्य का पूर्ण सर्वेक्षण तथा उसकी सीमा का निर्धारण किया है। उनके निष्कर्ष प्रमाण पुष्ट और गंभीर हैं।

प्रसाद का आलोचक व्यक्तित्व

प्रसाद के इन आठ निबंधों में उनकी विशाल बहिर्मुखी एवं अंतर सूक्ष्मदर्शी जीवनानुभूति का परिचय मिलता है। इन समीक्षाओं में प्रसाद का कवि हृदय तथा दार्शनिक आत्मचेतन जागरूक है। उनकी सुसंस्कृत, तत्सम, तथा परिनिष्ठित भाषा विचार बोझिल होकर भी अत्यंत प्रेषणीय है। इस रचना में यद्यपि मुहावरों का प्रयोग कम है, और भाषा दुर्बोधगम्य भी प्रतीत होती है पर दार्शनिकता, वैचारिकता और मौलिकता के संगुंफन से यह शिल्प आत्यधिक रूप से प्रभावपूर्ण है। शब्दों का सटीक चयन, असाधारण प्रतिपादन तथा पुष्ट विचार इस समीक्षक की प्रमुख विशेषता है।

प्रसाद ने अपनी इस कृति में अत्यन्त न्यायपूर्ण संतुलित और सर्वमान्य सिद्धान्तों की स्थापना की है। अनेक भ्रामक स्थापनाओं का खण्डन किया। आचार्य शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास और अनेक पाश्चात्य विचारकों के अस्वीकार्य मतों का खण्डन किया और अनेक भारतीय शास्त्रीय मतों का समर्थन सफलता पूर्वक किया। उन्होंने काव्य को कला का भेद न मानकर उसे अलग माना। अपने इस मत के समर्थन में उन्होंने भारतीय मनीषियों के मतों, तथा भारतीय विचारधारा का प्रमाण प्रस्तुत किया। उन्होंने मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों को ब्रह्म

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, पृ० ११६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का अंश बताया। इस प्रकार काव्य को निम्न स्थान से उठाकर उसे आध्यात्म की स्थिति के समकक्ष ला खड़ा किया। उन्होंने सौंदर्य की भारतीय मान्यता का परिचय दिया। श्रेय और प्रेय के झगड़े को समाप्त किया। 'रस' निबंध में उन्होंने काव्य के लिए 'रस' की अनिवार्यता सिद्ध की और अलंकार, रीति, वक्रोक्ति संप्रदायों में उसके मूल की शोध की। 'नाटकों के लिए रस' नामक निबंध में उन्होंने शांत रस को भी नाटकों की रचना के लिए उपयुक्त माना। रहस्यवाद निबंध में उन्होंने आचार्य शुक्ल आदि अन्य विचारकों के इस मत का प्रबल तर्कों के आधार पर खण्डन किया कि 'रहस्यवाद' सेमेटिक धर्म भावना की वस्तु है और मेसोपोटामिया या बाबिलिन के ईस्टर देवताओं के मंदिरों में रहने वाली देव-दासियाँ ही धार्मिक प्रेम के उद्गम के मूल में हैं। वेदों, पुराणों का उद्धरण देते हुए प्रसाद ने यह स्पष्ट कर दिया कि रहस्यवाद मूल रूप में भारतीय विचार-धारा है। प्राचीन काल से ही इसके स्रोत यहाँ मिलते हैं। प्रसाद पहले समीक्षक हैं जिन्होंने 'यथार्थवाद' की सीमा का निर्धारण किया, उसके विकास-सूत्र को खोज निकाला तथा उसकी एक मान्य और निश्चित परिभाषा दी। उन्होंने 'छायावाद' को पूर्ण भारतीय दर्शन सिद्ध किया। और ध्वन्यालोक के रमणीयार्थक आदि शब्दों को छाया और विच्छित्ति की संज्ञा दी। प्रसाद के अनुसार छायावाद का स्वरूप भरत आदि के काल से ही मिलता है। भरत, भामह, दण्डी अभिनवगुप्त आदि आचार्यों का उद्धरण देकर उन्होंने यह सिद्ध किया कि 'छाया' के समावेश से ही काव्य चरम कोटि का होता है। 'छायावाद प्रकृति विश्वात्मा की छाया या प्रतिबिम्ब है' आचार्य शुक्ल के इस आरोप का भी उन्होंने खण्डन किया। उन्होंने प्रकृति के साथ-साथ अन्य उपकरणों को भी छायावाद के लिए आवश्यक ठहराया। इसकी उन्होंने केवल मान्य परिभाषा ही नहीं दी अपितु सीमा का भी निर्धारण किया। 'नाटकों का आरंभ' नामक निबंध में प्रसाद ने अपनी गवेषणात्मक प्रतिभा का परिचय दिया और नाटकों का सूत्र वैदिक काल से खोज निकाला है। 'रंगमंच' निबंध में 'रंगमंच' के विकास उसके भेद तथा उसके स्वरूप के परिचय के साथ-साथ हिन्दी रंगमंच की हीन स्थिति के कारणों की खोज की है। प्रसाद ने अनेक विद्वानों के आरोपों का उत्तर देते हुए कहा है कि 'रंगमंच' के अनुकूल या उसे दृष्टि में रखकर नाटकों का निर्माण नहीं होता अपितु नाटक के अनुकूल रंगमंच का निर्माण होता है। इस प्रकार प्रसाद ने अपने नाटकों पर लगे अनभिनेयता के आरोपों का भी लगे हाथ खण्डन कर दिया है। 'आरम्भिक पाठ्य काव्य' निबन्ध में उन्होंने श्रव्य काव्यों को पाठ्य काव्य की संज्ञा दी है। वर्णनात्मक काव्य को भी उन्होंने इसी श्रेणी में स्थान दिया। हिन्दी के काव्यों

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

की दुराशा की तरफ इन्होंने ध्यान आकृष्ट किया जिसमें धर्म के प्रभाव के कारण तुलसी का रामायण धर्मग्रंथ बन गया।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से प्रसाद की मौलिक प्रतिभा का आभास मिल जाता है। उन्होंने अत्यन्त गूढ़ और विवादास्पद विषयों को लेकर उस पर अपनी विचारपूर्ण तर्कसंगत मौलिक मान्यताएँ स्थापित कीं। अनेक विदेशी तथा भारतीय विद्वानों के आक्षेपों से हिन्दी वाङ्मय को मुक्त किया। प्रसाद की आलोचक प्रतिभा निःसन्देह ही बड़ी प्रखर है। प्रसाद का इस क्षेत्र में योगदान निश्चय ही अविस्मरणीय है।

निबन्ध : रचनात्मक मूल्यों और प्रतिमानों की प्रतिष्ठा

प्रसाद के ये निबन्ध उनकी रचनात्मक दिशा तथा उनके प्रतिमानों के सच्चे वाहक हैं। 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में उन्होंने जिस प्रकार सौंदर्य की महत्ता प्रतिपादित की, उसी प्रकार सौंदर्य की प्रतिष्ठापना उनके संपूर्ण साहित्य में देखी जा सकती है। प्रसाद सौन्दर्य और प्रेम के गायक हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य सौन्दर्य की छटा से आलोकित है। उन्होंने अनुभूति की प्रवणता और अतर्मुखी प्रवृत्ति पर जोर दिया। उनका संपूर्ण साहित्य अनुभूतिमय है। और उनकी प्रवृत्ति उनमें अंतर्मुखी ही है। रहस्यवाद का उन्होंने जो भारतीय स्वरूप दिया उसी की छाप उनकी कुछ काव्य रचनाओं पर देखी जा सकती है। उन्होंने आनंद की प्रतिष्ठापना पर अपने निबन्धों में बल दिया। उनका संपूर्ण साहित्य चाहे वह काव्य हो या नाटक, उपन्यास हो या कहानी—'आनद' का ही वाहक है। 'छायावाद' की जो परिभाषा उन्होंने दी वस्तुतः वे उनकी कविताओं की व्याख्या के सूत्र हैं। उनकी कविताएँ इन्हीं सिद्धान्तों पर प्रतिपादित हैं। रस की अनिवार्यता उनके संपूर्ण वाङ्मय में देखी जा सकती है। प्रसाद ने शांत रस को भी साहित्य की रचना के उपयुक्त माना। क्या कामायनी, स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, अजातशत्रु तथा उनके अनेक साहित्य शांतरस के उत्तम उदाहरण नहीं हैं? प्रसाद ने यह स्पष्ट कहा कि नाटकों की रचना रंगमच को दृष्टि में रखकर नहीं होती अपितु रंगमंच का निर्माण नाटकों के अनुरूप किया जाता है। प्रसाद का संपूर्ण नाट्य-साहित्य इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने स्वतंत्र नाट्य कला विकसित की। रंगमंच की बाध्यता को उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रसाद के ये निवंध उनके रचनात्मक मूल्यों और प्रतिमानों के वाहक हैं। यदि उनके संपूर्ण साहित्य को समझना है, तो उसके पूर्व उनके इन निबंधों का मनन आवश्यक है, जिसमें उनके संपूर्ण मानदण्ड और सिद्धांत उपस्थित हैं। वस्तुतः ये निबंध उनके साहित्य की कुंजी हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

उपसंहार | प्रसाद का गद्य : एक समग्र आकलन

प्रसाद एक श्रेष्ठ स्वच्छन्दतावादी कलाकार थे। अतएव उनकी रचनाओं में स्वच्छन्दतावादी विशेषताओं का समावेश स्वाभाविक है। वस्तुतः स्वच्छन्दता-वादी प्रवृत्तियाँ ही प्रसाद के गद्य के नियामक हैं। इसलिए स्वच्छन्दावादी प्रवृत्तियों के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद के गद्य साहित्य का आकलन इस अध्याय का प्रतिपाद्य है।

(१) स्वच्छन्दतावादी नवोन्मेष और हिन्दी गद्य-साहित्य

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल सामान्यतः भारतेन्दु-युग से आरम्भ होता है। भारतेंदु तथा तद्युगीन साहित्यकारों ने साहित्य की विविध विधाओं के प्रवर्तन के साथ ही उनका स्वरूप सुनिश्चित किया। साहित्य रचना संसार में भारतेन्दु के आगमन के पूर्व ही १८५७ की स्वातंत्र्य क्रांति विफल हो चुकी थी। अंग्रेजी शिक्षा नीति का प्रचार-प्रसार विपुल मात्रा में हो रहा था। पाश्चात्य सभ्यता हमारे जीवन में प्रवेश कर चुकी थी। बंगला साहित्य इससे सीधे प्रभावित हुआ। तद्युगीन हिन्दी साहित्यकारों ने भी अनेक बंगला और अंग्रेजी रचनाओं का अध्ययन किया तथा जीवनोपयोगी समझकर उनके अनुवाद भी प्रस्तुत किए। वस्तुतः इसके कई दशाब्दी पूर्व अंग्रेजी में रोमांटिसिज्म आन्दोलन प्रारंभ हो चुका था। यह रोमांटिक आन्दोलन क्लैसिक आन्दोलन के विरोध में था। पहला स्वच्छन्दता का समर्थक है और दूसरा परंपरा के पालन का। १९वीं शताब्दी का संपूर्ण आंग्ल साहित्य स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का वाहक है। बंगला के माध्यम से तथा बहुत कुछ पाश्चात्य सभ्यता के संपर्क के कारण हिन्दी साहित्य पर

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। विशेषकर छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि में यही विचारधारा है। उस काल का संपूर्ण गद्य साहित्य भी इस विचारधारा से अछूता नहीं रह पाया है। 'प्रसाद' छायावादी युग के प्रमुख कवियों में से हैं।

अट्ठारहवीं शताब्दी से ही रोमांटिसिज्म की मूल प्रवृत्ति के संबंध में व्यापक मतभेद रहा है। इसके विषय, पक्ष, रूप और दृष्टिकोण के संबंध में पाश्चात्य विचारकों ने जो मत व्यक्त किए हैं उनमें पर्याप्त मतभेद है। स्वच्छन्दतावाद के संबंध में 'ग्लासेरी आफ लिटरेरी टर्म्स' में विचार करते हुए होमर ने कहा है—"स्वच्छन्दतावाद स्थूल रूप से कला अथवा साहित्य में, जीवन को उस रूप में चित्रित करने की प्रवृत्ति है, जैसा वह वस्तुतः नहीं है—या तो कल्पना का सहारा लेकर वास्तविक जगत को विरूपित करना अथवा रोमांस के धूमिल साम्राज्य में प्रवेश कर उससे (वास्तविक संसार से) पूर्णतया पलायन करता है। इसी से स्वच्छन्दतावाद सामान्यतः यथार्थवाद के विपरीत है।"[१]

स्वच्छन्दतावाद की विशेषताओं पर विचार करते हुए रीडर्स इनसाइक्लोपीडिया में कहा गया है—"स्वच्छन्दतावाद की मुख्य विशेषताएँ हैं व्यक्तिवाद, प्रकृति पूजा...स्वतंत्र विचार और धार्मिक रहस्यवाद की ओर प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति, राजनैतिक सत्ता और सामाजिक परम्परा के प्रति विद्रोह, शारीरिक वासनाओं का उन्नयन, स्वान्तः सुखाय भावनाओं और उत्तेजनाओं को प्रोत्साहन तथा अलौकिक, दूषित एकांकित और निर्दय के प्रति अविरल आकर्षण।"[२]

---

1. Romanticism : In loose sense, the tendency in art or Literature to present life as is not-either with the help of the imagination to distort the real world or to escape from it entirety into the shadowy realm of romance. Hence romanticism is commonly opposed to realism."

—Glossary of Literary terms : A Dictionary of English Literature by Homer A. Watt.

2. The leadic characteristics of romanticism are individualism nature worship...a paradoxical tendency towards both free thought and social religious mysticism, revolt against political authority and social convention, the exalation of physical passion and the encouragement of emotion had

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

इसी से मिलती-जुलती बात इनसाइक्लोपीडिया आफ अमेरिकाना में कही गयी है—"चूंकि स्वच्छन्दतावाद भावात्मक जीवन में जो विचित्र और रहस्यात्मक है, उसे अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है, वह स्वभावतः अपनी सामग्री का आधार भूत में खोजता है और विशेषतया मध्ययुग में सहानुभूति रखता है, जबकि भावनागत लालसायें, शौर्य या साहसिकता के प्रति प्रेम और रहस्यात्मक बोध अपनी अभिव्यक्ति करती थी।. . . .अतः अतीत के प्रति सहानुभूति और मानवता के प्रति नवीन रुचि रोमांटिसिज्म के चिह्न हैं।"[1]

इन परिभाषाओं को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि स्वच्छन्दतावाद की दो मूल प्रवृत्तियों—भावात्मक और स्वच्छन्दता—को सबने स्वीकार किया है। स्वच्छन्दता के अन्तर्गत सामाजिक विधि-विधानों के प्रति विद्रोह भाव एवं वैयक्तिकता के प्रति आग्रह तथा भावात्मकता के अंतर्गत गीतात्मकता, उपचेतना कल्पनात्मक सर्जना की अभिरुचि, स्वानुभूति और सहज भावना आदि भावप्रधान प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं। 'रोमांटिसिज्म' विषय की दृष्टि से अतीतोन्मुख होता है और उसने मध्ययुगीन जीवन के प्रति प्रेम दिखलाया, सामान्य की अपेक्षा विशेष को अपनाया अतीन्द्रिय और अति प्राकृत तत्त्वों तथा भावनाओं के प्रति आग्रह भाव प्रकट किया एवं दुःख, आँसू और करुणा को विशेष प्रश्रय दिया। वैयक्तिकता इसका प्रधान दृष्टिकोण और सर्वप्रधान गुण रहा है। जिस प्रकार इन मूल प्रवृत्तियों को ग्रहण करके भी वर्ड्सवर्थ, शैली कीट्स आदि अपने-अपने दृष्टिकोण में मौलिक रहे, वैसे ही प्रसाद, पंत, निराला आदि कवियों ने भी रोमांटिसिज्म की इन प्रवृत्तियों को अपनाकर भी अपनी वैयक्तिक विशेषताओं को

---

sensation for their own sake, and a persistant attraction to the super natural the morbid, the maloncholy, and the cruel."

—Readers Encyclopedia.

1. "As romanticism endeavors to express what is strange and mysterious in the life of spirit, it naturally, seeks its natural in the past and feels itself especially in sympathy with the middle ages, when aspirations of the spirit its love of adventures and sense of mysterious expressed themselves in quest..... Thus a sympathy with the past, a new interest in humanity as such marks."

—Romanticism Encyclopedia of Americana, Vol. 23.

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

बचाए रखा। 'प्रसाद' में परंपराओं के प्रति विद्रोह और आक्रोश का भाव उतना प्रबल नहीं है जितना गीतात्मकता, भावुकता, प्रेम और करुणा की उदात्त भावना, अतीतोन्मुखता तथा संस्कृति प्रेम तथा चिंतनशील रहस्यभावना का प्राधान्य है। प्रसाद तो अपने साहित्य में सौंदर्य के उपासक और स्वच्छन्द प्रेम के उन्मुक्त गायक के रूप में अधिक दिखायी देते हैं, क्रांतिकारी और विद्रोही रूप में कम। जहाँ कहीं विरोध भाव उभरा भी है वहाँ वह परंपराओं और रूढ़ियों के असत् पक्ष के निर्मूलन में ही प्रवृत्त है, सत् पक्ष के सम्मुख वह सदा नत शिर है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निम्न विशेषताएँ स्वच्छन्दतावाद और प्रसाद साहित्य की मूलधारा हैं:

(क) विधिबद्ध जीवन दृष्टि का विस्तार
(ख) वैयक्तिक अनुभूति और संवेग को महत्त्व
(ग) सौंदर्यानुभूति और प्रेम व्यंजना
(घ) कल्पना तत्त्व की प्रधानता
(ङ) नवीन सांस्कृतिक चेतना
(च) अतीत का अनुराग
(छ) राष्ट्रीयता
(ज) प्रकृति प्रेम
(ट) यथार्थ बोध

(क) विधिबद्ध जीवन दृष्टि का विस्तार

प्रसाद का संपूर्ण गद्य साहित्य इस बात का साक्षी है कि उन्होंने परंपरा विहित रूढ़िबद्ध विचारों का विरोध किया। वस्तुतः परंपरावादियों ने अपने सिद्धांतों द्वारा जीवन को अत्यन्त संकुचित बना दिया था। प्रसाद ने इस संकोच को तोड़कर उसे विस्तार प्रदान किया। हम यह कह सकते हैं कि उन्होंने जलाशय के जल को नदी की धारा से जोड़कर उसे स्वच्छ और निर्मल बनाया। उन्होंने परंपरा की जंजीरों से आबद्ध सामाजिक जीवन को स्वच्छन्दतावादी दृष्टि देकर जीवंत बनाया।

प्रसाद के नाटक और उसके पात्र उपर्युक्त मत का पूर्ण समर्थन करते हैं। 'स्कंदगुप्त' (स्कंदगुप्त नाटक) के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि अधिकार ही सब कुछ नहीं। अधिकार के प्रति निस्पृह भाव रखते हुए यदि कोई आजीवन संघर्ष पथ ग्रहण करता है तो निश्चय ही वह परंपरावादी जीवन या चरित्र से अलग सिद्ध होगा। उच्चकुल उत्पन्न, राज्य का योग्य उत्तराधिकारी होकर भी

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

स्कंदगुप्त के मन में राजगद्दी के प्रति उदासीनता के भाव हैं, वह आजीवन खड्ग लेकर जनता के कष्टों को दूर करने तथा साम्राज्य की रक्षा के लिए सन्नद्ध दिखायी देता है और संपूर्ण राज्य को निष्कंटक बनाकर उसे अपने विरोधी भाई पुरगुप्त को सौंप देता है। देवसेना के साथ-साथ वह विजया के सौंदर्य के प्रति भी आकर्षित है। जब वह देवसेना को ग्रहण करने के लिए तत्पर होता है तब तक बहुत देर हो गयी रहती है। देवसेना के अस्वीकार करने पर वह भी आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प लेता है। परंपरावादी लेखक यहीं स्कंदगुप्त का विकास दूसरे ढंग से करता। वह स्कन्दगुप्त के अंतस् में राज्य के प्रति स्पृहा पैदा करता, उसे विजयी बनाकर राजगद्दी पर आरूढ़ करता, तथा देवसेना को उसकी महिषी बना देता। पर प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि ने इस परंपरावादी पद्धति की पूर्ण अवहेलना कर यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि जीवन का महत्त्व स्वार्थ लिप्सा से अधिक त्याग में है। साथ ही प्रसाद ने परंपरावादी लेखकों की भांति स्कंदगुप्त को दैवी गुणों से संपन्न न बनाकर उसे मानवोचित स्वरूप प्रदान किया, जिसमें गुण और दोष दोनों होते हैं। यही कारण है कि प्रसाद का यह चरित्र सर्वाधिक प्रभावशाली वन पड़ा है। उसे जन-साधारण की सहानुभूति प्राप्त है। इसी नाटक की नायिका देवसेना भी भारतीय नारी का एक विलक्षण आदर्श प्रस्तुत करती है। वह त्याग और तपस्या की मूर्ति है। वह स्कंदगुप्त को हृदय से प्यार करती है, पर यह जानकर कि स्कंदगुप्त के मन में विजया के प्रति आकर्षण है, वह उससे दूर रहती है। इस पर भी वह स्कंदगुप्त की आराध्य के रूप में उपासना करती है, स्कंदगुप्त की रक्षा के लिए चैतन्य रहती है तथा स्कंदगुप्त को अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत करने का दायित्व भी संभालती है। स्कंदगुप्त के विवाह के प्रस्ताव पर वह अपने आजीवन अविवाहित रहने की घोषणा करती है—"आपको अकर्मण्य बनाने के लिए देवसेना जीवित न रहेगी। सम्राट क्षमा हो। इस हृदय में. . . .आह! कहना ही पड़ा स्कंदगुप्त को छोड़कर न तो कोई दूसरा आया और न वह जाएगा। अभिमानी भक्त के समान मुझे निष्काम होकर उसी की उपासना करने दीजिए, उसे कामना के भंवर में फँसाकर कलुषित न कीजिए। नाथ! मैं आपकी ही हूँ, मैंने अपने को दे दिया है, अब उसके बदले कुछ लिया नहीं चाहती।"[१]

यही नहीं नाटक के अंतिम अंक में कर्ममय जीवन से सन्यास लेते हुए उसका निम्न कथन उसे मानवीय स्तर पर ला खड़ा करता है: "हृदय की कोमल कल्पना!

---

१. प्रसाद : स्कंदगुप्त, पृ० १३५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सो जा। जीवन में जिसकी संभावना नहीं, जिसे द्वार पर आए हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी वात है? आज जीवन के भावी सुख, आशा और आकांक्षा—सबसे मैं विदा लेती हूँ।"[१]

देवसेना की संपूर्ण तपस्या स्कंदगुप्त की प्राप्ति के लिए होती है। पर वह उस मूर्ति को कलुषित नहीं होने देना चाहती। इसलिए विवाह के आमंत्रण को अस्वीकार करती है पर उसके आराध्य स्कंदगुप्त ही हैं। प्रसाद ने अपने इस चरित्र द्वारा स्पष्ट घोषित किया है कि जीवन का एक रूप त्याग और तपस्या का तथा निःस्वार्थ सेवा भाव का भी होता है। परंपरावादियों द्वारा नारी का प्रस्तुत स्वरूप वस्तुतः संकुचित है। प्रसाद ने इस संकोचन को दूर किया उसे विस्तार दिया तथा एक नवीन रूप में उसे प्रस्तुत किया जो अधिक जीवित और प्राणवान है।

'चन्द्रगुप्त' की मालविका चन्द्रगुप्त के प्रेम में आवद्ध है। पर जब मालविका वास्तविक जगत् में प्रेम का आलम्बन नहीं कर पाती, जब चन्द्रगुप्त का सशरीर उसके पास रहना भी अभाव रूप में ही रहता है, तव उसकी वेदना चन्द्रगुप्त की शैय्या मात्र का सहारा लेकर सुख का सृजन करती है और वलिदान के लिए प्रस्तुत होती है—"जाओ प्रियतम ! सुखी जीवन विताने के लिए और मैं रहती हूँ चिर दुखी जीवन का अंत करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है और मरण है उसका अटल उत्तर। आर्य चाणक्य की आज्ञा है—"आज घातक इस शयनगृह में आवेंगे, इसलिए चन्द्रगुप्त यहाँ न सोने पायें, और षड़यन्त्रकारी पकड़े जायं।" (शैय्या पर वैठकर)—यह चन्द्रगुप्त की शैय्या है। ओह, आज प्राणों में कितनी मादकता है। मैं. . .कहाँ हूँ? कहाँ? स्मृति, तू मेरी तरह सो जा! अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन वन जा।"[२]

मालविका का प्रेम स्वच्छन्द प्रेम का सवसे बड़ा प्रमाण है। वह चन्द्रगुप्त को प्रेम करती है। चन्द्रगुप्त सशरीर उसे नहीं प्राप्त हो पाता पर अनुभूति और भावना की गहनता उसे चन्द्रगुप्त की शैय्या के साथ भी आकर्षण में आवद्ध कर देती है। वह अपना वलिदान देकर भी चन्द्रगुप्त की रक्षा करती है।

'अजातशत्रु' की मल्लिका भारतीय नारी के शील और सौमनस्य का महनीय आदर्श स्थापित करती है। यह जानकर भी कि उसके पति की शक्ति से आतंकित होकर षड़यंत्र द्वारा प्रसेनजित ने उसकी हत्या करवा दी, वह युद्ध में घायल प्रसेनजित की सुश्रुषा करती है और अजातशत्रु को उससे वदला लेने की भावना

---

१. प्रसाद : स्कंदगुप्त, १४७।

२. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १६९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से विरत कर वापस भेज देती है और भाई नारायण के मन में देश के प्रति और राजा की रक्षा का भाव उत्पन्न करती है। मल्लिका परंपरा की अनुवर्त्तिनी नहीं है वह सामान्य नारी स्तर से बहुत ऊपर उठा हुआ चरित्र है।

'ध्रुवस्वामिनी' का चन्द्रगुप्त कुल की मर्यादा, शील और सौहार्द्र के लिए राज्य और अपनी वाग्दत्ता पत्नी ध्रुवस्वामिनी का त्याग करता है। किंतु रामगुप्त की क्लीवता, कापुरुषता के परिणामस्वरूप ध्रुवस्वामिनी को उस पर आए संकट से उवारता है और शकराज से साम्राज्य की रक्षा करता है। ध्रुवस्वामिनी पहले आत्मरक्षा की प्रार्थना करती है, पर उसकी अस्वीकृति पर उसमें नारी का सहज तेज जागृत हो जाता है। वह अपने विवाहित पति को न तो अपना प्यार दे पाती है और न उसके विलास की सहचरी ही बनती है। उसके हृदय में तो एक दूसरी ही तेजोद्दीप्ति मूर्ति आलोकित है—वह है चन्द्रगुप्त। वह चन्द्रगुप्त को अंत में वरण करती है। रामगुप्त के बन्धन से वह छुटकारा चाहती है। पंडित से धर्मशास्त्र के पन्ने पलटवाती है। क्या परंपरावादी नारी भी ध्रुवस्वामिनी के पथ का अनुसरण कर सकती है?

यही नहीं परंपरा का विरोध और जीवन दृष्टि का यह विस्तार उनके उपन्यासों में भी वर्त्तमान है। 'कंकाल' उनका सर्वश्रेष्ठ यथार्थवादी उपन्यास है। इसमें उन्होंने समाज के तथाकथित उच्चवर्ग के घृणित कृत्यों का भण्डाफोड़ किया है और यह सिद्ध कर दिया है कि सामाजिक मर्यादा के कारण जिन्हें हम उच्च समझते हैं वे अत्यन्त नीचे गिरे हुए तथा जिन्हें हम निम्न समझते हैं उनमें बड़ी महत्ता है। धनी समाज की प्रतिनिधि किशोरी की पुत्र लालसा उसे पतन के गर्त में गिराती है। धर्म के ठेकेदार तपस्वी निरंजन दास की दो संताने हैं—विजय और तारा (यमुना)। दूसरी तरफ समाज सुधारक मंगलदेव, समाज के जिन दोषों को दूर करने का प्रयत्न करता है उन्हीं में वह लिप्त हो जाता है। तारा के साथ पत्नी का सुख भोगकर भी विवाह से तथा समाज की कटूक्तियों से बचने के लिए तारा को असहाय अवस्था में छोड़कर भाग खड़ा होता है। विजय अपनी माँ से विद्रोह करता है। यमुना के देवगृह में जाने से निरंजनदास द्वारा उसके अपमान को वह सह नहीं पाता और उन्हें खरी-खोटी सुनाता है। प्रसाद ने अपने इस विद्रोही चरित्र का अंत भी अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। परंपरावादी लेखक विजय के ऐसे चरित्र का कभी भी समर्थक नहीं वन सकता। प्रसाद ने अपनी स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का सहारा लेकर बद्ध जीवन दृष्टि को विस्तार दिया और यमुना, विजय, मंगल, किशोरी जैसे चरित्रों की सृष्टि की। जो बंधे-बंधाएँ ढर्रे पर न होकर नितांत नवीन प्रतीत होते हैं। प्रसाद की इस दृष्टि का

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

परिचय उनके 'तितली' उपन्यास के पात्रों के चित्रण में भी मिलता है। तितली स्वयं ही परंपराओं को छिन्न-भिन्न कर डालती है। वह जीवन को नई दृष्टि से देखती है, और उसका उपयोग भी उसी भाँति करती है। मधुवन अपने आभिजात्य को भूलकर युगानुरूप स्वरूप ग्रहण करता है और एक श्रमिक बन जाता है।

प्रसाद की कहानियों में परंपरा में जकड़ी जीवन दृष्टि के विकास का स्वरूप यथेष्ट रूप में मिलता है। 'आकाशदीप' की चंपा एक तरफ अपने प्रेमी बुद्धगुप्त से प्रेमाधिक्य के कारण घृणा भी नहीं कर पाती, अपने पिता की हत्या का बदला भी नहीं ले पाती, दूसरी तरफ उसे स्वीकार भी नहीं कर पाती। उसके विवाह के प्रस्ताव को वह ठुकरा देती है। इस प्रकार के अंतर्द्वन्द्वात्मक चरित्र-सृष्टि का मूल कारण प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी दृष्टि है जो यह स्वीकार करते हैं कि जीवन वही नहीं है, जिसे हम बाहर से देख रहे हैं अपितु इसके अतिरिक्त भी जीवन का स्वरूप है, जिसे हम महसूस करते हैं। उन्होंने एक पिटी-पिटाई लकीर को न अपनाकर जीवन को नवीन दृष्टि दी। इसी प्रकार 'पुरस्कार' कहानी की मधूलिका भी राष्ट्र और प्रेमी के मध्य चुनाव के द्वन्द्व में पड़ी है। वह राष्ट्र को बचाती है, पर प्रेमी विद्रोही अरुण को भी नहीं त्याग पाती। जन जीवन में एक धारणा बन चुकी है कि 'गुण्डा' निश्चय ही क्रूर, अमानवीय कृत्यों का समर्थक, कठोर और भयंकर दिखायी देने वाला व्यक्ति होगा। पर प्रसाद ने 'गुण्डा' के माध्यम से गुंडा को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उनमें भी कोमल भावनाओं का भाण्डार होता है, आन पर मर मिटने की उत्कंठा और त्याग तथा शौर्य की वे प्रतिमूर्ति होते हैं। समाज के लिए वे सर्वथा अवांछनीय ही नहीं हैं अपितु कभी कल्याणकारी भी सिद्ध हो सकते हैं।

(ख) वैयक्तिक अनुभूति और संवेग को महत्व

अनुभूति की तीव्रता और संवेग की प्रखरता रचना धरातल पर हर रचनाकार को एक-दूसरे-से दूर कर देती है। यही कारण है कि एक ही विषय पर लिखी गयी प्रसाद, पंत और निराला की रचनाएँ एक दूसरे से बिलकुल भिन्न दिखायी देती हैं। प्रसाद ने ऐतिहासिक या अनैतिहासिक वस्तु को ग्रहण कर अनुभूति और संवेदना के धरातल पर उन्हें नवीन स्वरूप प्रदान किया।

प्रसाद के नाटकों की पृष्ठभूमि अतीत ही है। प्रसाद ने ऐतिहासिक कथावस्तु को अवश्य ग्रहण किया पर अपनी प्रखर कल्पना और गहरी अनुभूति तथा संवेदना के माध्यम से उसे अत्यन्त सजीव बना दिया है। मध्यकालीन भारत का इतिहास सिर्फ कल्पना पर आधृत था, प्रसाद ने अपनी खोज से उसका प्रामाणिक इतिहास

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ही नहीं प्रस्तुत किया अपितु अपने पात्रों की भी प्रामाणिकता सिद्ध की और उनका स्वरूप निश्चित किया। 'चन्द्रगुप्त' के चरित्र को लेकर अनेक नाटक रचे गए हैं पर प्रसाद ने चाणक्य, चन्द्रगुप्त, अलका और मालविका तथा सिंहरण, पोरण और आम्भीक का जो रूप-चित्र प्रस्तुत किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है। चाणक्य वह पात्र है जो संपूर्ण घटनाचक्र को संयोजित करता है, वह संचालन सूत्र अपने हाथ में रखता है। चन्द्रगुप्त का एक तरफ वीर, दर्पयुक्त धैर्यवान पुरुष का स्वरूप प्रस्तुत है दूसरी तरफ उसके अंतर्द्वन्द्व को प्रत्यक्ष कर लेखक ने उसके अंतस् में चल रही भयानक आँधी चित्रित की है। इस प्रकार वह चाणक्य के हाथों की कठपुतली होकर भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखता है। जबकि द्विजेन्द्रलाल राय का चन्द्रगुप्त अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व पूरी तरह खो चुका है। प्रसाद ने चन्द्रगुप्त को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर परखा है। चाणक्य, सिंहरण सभी उसे छोड़कर चले जाते हैं, इसी समय उसे सिल्यूकस के आक्रमण की सूचना मिलती है। वह धैर्य और साहस के साथ अकेले ही सिल्यूकस से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध है—"चन्द्रगुप्त युद्ध करना जानता है। और विश्वास रक्खो, उसके नाम का जयघोष विजयलक्ष्मी का मंगल गान है। आज से मैं ही बलाधिकृत हूँ, मैं आज सम्राट नहीं, सैनिक हूँ। चिन्ता क्या ? सिंहरण और गुरुदेव न साथ दें, डर क्या ! सैनिको ! सुन लो, आज से मैं केवल सेनापति हूँ, और कुछ नहीं। जाओ, यह लो मुद्रा और सिंहरण को छुट्टी दो। कह देना कि तुम दूर खड़े होकर देख लो, सिंहरण ! चन्द्रगुप्त कायर नहीं है।"[१]

मालविका का चरित्र प्रसाद की स्वतंत्र रचना है जिसमें उनकी संवेदना, संपूर्ण अनुभूति और कल्पना साकार हो उठी हैं। मालविका का यह चरित्र प्रसाद को सबसे अलग खड़ा कर देता है। अलका, आम्भीक आदि के माध्यम से राष्ट्रीय भावना की योजना प्रसाद की व्यक्तिगत अनुभूति का ही परिणाम है।

कार्नेलिया का चरित्र प्रसाद की गहरी संवेदना का परिणाम है। वह भारत में आकर भारत की हो जाती है।

'स्कंदगुप्त' नाटक प्रसाद की तीव्र अनुभूति और गहन संवेदना का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है। प्रसाद की कला ने इस नाटक के पात्रों को अविस्मरणीय बना दिया है। स्कंदगुप्त और देवसेना जैसा अनुभूति प्रवण संवेदनात्मक चरित्र अन्य नाटकों में दुर्लभ है। एक तरफ स्कंदगुप्त का शौर्य, साहस और धैर्य का चित्र प्रस्तुत है तो दूसरी तरफ वह कल्पना जगत में विचरण करने वाला भावुक, प्रेमी, तपस्वी

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १८५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और त्यागी है। जीवन तथा सत्ता दोनों के प्रति वह निस्पृह भाव युक्त है, राग-द्वेष से बहुत दूर एक पवित्र प्रतिमूर्ति है। मानवीय कमजोरियाँ भी उसमें हैं। एक तरफ वह देवसेना को प्यार करता है, उसके त्याग से प्रभावित है दूसरी तरफ विजया के प्रति भी उसका आकर्षण है। सत्ता के इतना निकट रह कर भी उसका उससे राग नहीं, पूरा साम्राज्य आक्रांताओं से निष्कंटक बनाकर वह अपने चिर विरोधी भाई पुरगुप्त के लिए छोड़ जाता है। पिता की हत्या का आयोजन करने वाली महत्त्वाकांक्षिणी विमाता अनंतदेवी तथा भटार्क को क्षमा करता है। देवसेना के साथ वह अंत समय जीवन बिताने की इच्छा व्यक्त करता है पर देवसेना के अस्वीकार पर वह आजीवन अविवाहित रहने का संकल्प ग्रहण करता है। स्कंदगुप्त का यह स्वरूप निश्चय ही प्रसाद की अपनी कल्पना वैशिष्ट्य, अनुभूति प्रवणता और संवेदना की तीव्रता का परिणाम है। राज्यसत्ता के प्रति वितृष्णा का भाव रखते हुए भी वह साम्राज्य की रक्षा के लिए आजीवन संघर्ष करता है।

देवसेना में प्रेम का कोमल स्वरूप और राष्ट्र भावना का तीव्र आलोक है। राष्ट्र रक्षा के लिए वह अपमान भी सहती है। स्कंदगुप्त को समय-समय पर इस दिशा में प्रेरित करती है। मालव के समर्पण के लिए जयमाला को तैयार करती है। अपने प्रेम जीवन में वह असफल होकर भी सफल बन जाती है। यह आभास होते ही कि स्कंदगुप्त के मन में विजया के प्रति आकर्षण है, वह स्कंदगुप्त से दूर-दूर रहती है। फिर भी वह अपने प्रेम को त्याग नहीं पाती। उसके प्रेम में स्वर्गीय सुख का आभास है। वह राष्ट्र-प्रेम के भाव में ओत-प्रोत है। देवसेना भारतीय नारियों के समक्ष एक नया आदर्श प्रस्तुत करती है। प्रेम को वह अत्यन्त पवित्र मानती है, जिसमें ईर्ष्या, घृणा और द्वेष को स्थान नहीं। प्रेम का महत्त्व वह त्याग में समझती है। प्रसाद का यह चरित्र उनकी वैयक्तिक संवेदना और अनुभूति का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है जो उसे सबसे अलग-थलग कर देता है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक का चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी तथा 'अजातशत्रु' का अजातशत्रु, मल्लिका, छलना आदि के चरित्र प्रसाद की इस विशेषता के परिणाम हैं।

उपन्यासों में भी प्रसाद की यह विशेषता वस्तु-चयन, रूप चित्रण, चरित्र योजना तथा संवादों में मुखर है। प्रसाद प्रेमचन्द के समकालीन थे। प्रेमचन्द ने अनेक उपन्यासों की सृष्टि ग्राम्य-जीवन के आधार पर की है। प्रसाद के 'तितली' उपन्यास की पृष्ठभूमि भी ग्रामीण-जीवन ही है, पर दोनों लेखकों ने अपनी-अपनी अनुभूति और संवेदना से गाँवों का अलग-अलग रूप उपस्थित किया।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'तितली' जैसे चरित्र प्रेमचन्द के उपन्यासों में कम ही मिलते हैं। भारतीय ग्रामीण नारी की वह आदर्श मूर्ति है। बड़ी-से-बड़ी विपत्ति में भी वह न तो अपना साहस खोती है, और न आत्म-सम्मान त्यागती है। तथा धैर्य और वीरता के साथ वह उनका सामना करती है, उनके समक्ष वह झुकती नहीं, अपितु सिंहनी की भाँति सर उठाए रहती है। श्रम के महत्त्व का वह प्रतिपादन करती है। श्रम से वह अपनी बनजरिया को स्वर्ग बना देती है। उपन्यास में मधुवन का दो रूप चित्रित है। एक में उसमें परिस्थितियों से संघर्ष का अमिट उत्साह है, साहस और धैर्य है, दूसरे रूप में वह जीवन संघर्ष से थका हारा सैनिक है। मधुवन, तितली का यह रूप निश्चय ही प्रेमचन्द से अलग है। इस दूरी का एकमात्र कारण लेखक की अनुभूति प्रवणता और संवेदना की तीव्रता का अंतर है। यही नहीं शैला के माध्यम से प्रसाद ने भारतीय और पाश्चात्य विचार-धारा की तुलना करके भारतीय विचारधारा को श्रेष्ठ सिद्ध किया है। शैला के इस प्रश्न पर कि मधुवन तुम्हारे लिए अनेक संकट खड़ा करके भाग गया और वह एक डाकू है, क्या यह जानकर भी तुम अभी उससे प्रेम करती हो ? तितली का उत्तर भारतीय नारी के उस आदर्श को प्रस्तुत करता है जिसके समक्ष सभी विचार-धाराएँ नतमस्तक हैं।

उपन्यास के रूप में 'कंकाल' 'प्रसाद' का अन्यतम उपन्यास है जो समाज की मान्यताओं, विडंबनाओं का भण्डाफोड़ करता है। प्रसाद की अनुभूति और संवेदना का ही परिणाम है कि समाज का यह स्वरूप सिर्फ इतिवृत्त मात्र न रहकर अत्यंत सजीव रूप में प्रस्तुत है। विजय, यमुना, विशेषकर गाला के रूप में प्रसाद की ये विशेषताएँ अधिक प्रकाशित हैं।

(ग) सौन्दर्यानुभूति और प्रेमव्यंजना

मूलतः प्रसाद सौंदर्य और प्रेम के गायक थे। उनका समूचा साहित्य-भाण्डार ही इस प्रवृत्ति से भरा पड़ा है। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी सब में इनसे संबद्ध कोमल भावनाओं के चित्रण का वे अवकाश निकाल ही लेते हैं। वस्तुतः प्रसाद स्वच्छन्दतावादी कलाकार थे और कल्पना तथा भाव-प्रवणता द्वारा अप्रतिम सौंदर्य प्रतिष्ठा स्वच्छन्दतावादी रचनाकार का प्रथम कर्त्तव्य है। यही कारण है कि प्रसाद का संपूर्ण साहित्य का आधारबिंदु ही सौंदर्य और प्रेम है।

प्रसाद के काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि में जहाँ कहीं भी आग्रह, त्याग, और समर्पण से दीपित उनकी उज्ज्वल प्रेम भावना प्रकट हुई है वह बेजोड़ है। उनके संपूर्ण साहित्य को देखने से प्रतीत होता है कि सौंदर्य और प्रेम ही जैसे उनकी मुख्य प्रेरक शक्ति थे। कितनी ही कहानियों के नायक-नायिकाओं के

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

व्यक्तित्व में कवि के हृदय की प्रेम वेदना साकार हो उठी है। सौंदर्य को वे मात्र आंगिक मनोहारिता तक ही सीमित नहीं मानते थे, उसमें मानसिक सौष्ठव के साथ-साथ सभी मानवीय गुणों दया, त्याग, करुणा का भी विकास देखते हैं। पुरुष में सौंदर्य के साथ-साथ शक्ति, शील, दृढ़ता, साहस और गंभीरता को वे आवश्यक समझते थे, नारी सौंदर्य की पूर्णता के लिए उनकी दृष्टि में लज्जा, त्याग करुणा क्षमा आदि का बाह्य सौंदर्य के साथ समन्वित होना आवश्यक था। वस्तुतः मोहक और पवित्र सौंदर्य, मादक किंतु शिष्ट विलास, स्वच्छन्द किंतु मर्यादित प्रेम के विभिन्न रूपों का जैसा सजीव और भावमय चित्रण प्रसाद के साहित्य में हुआ है, वैसा हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

सौंदर्य और प्रेम के कोष यौवन की अभ्यर्थना में उन्होंने अनेक गीत गाए हैं। 'लहर' की अंतिम कविता, 'प्रलय की छाया' में मादक यौवन का जो चित्रण किया है, वह निश्चय ही सर्वोत्कृष्ट और अनुपम है। दूसरे स्थलों पर भी कहीं वे चंचल यौवन से क्षण भर रुक जाने का आग्रह करते हैं ?

मेरे जीवन के सुख निशीथ
जाते जाते रुक जाना। (लहर)

और कहीं मधुर लालसा व्यक्त करते हैं।

यौवन तेरी चंचल छाया।
क्षण भर बठ बैठ धूंट भर पी लूं
जो रस है तू लाया। (ध्रुवस्वामिनी)

उनका प्रत्येक प्रधान पात्र सौंदर्य का लक्ष्य है। नारी पात्रों में सौंदर्य की प्रतिष्ठा पुरुष पात्रों की अपेक्षा अधिक कौशल पूर्ण है। क्रूर-से-क्रूर, छल-प्रपंच में लिप्त नारियाँ भी सुकुमार सौंदर्य से सम्पन्न हैं और इनकी ओर कठोर-से-कठोर व्यक्तित्व वाले पात्र भी आकर्षित हैं। विजया (स्कंदगुप्त नाटक) के अग्निशिखा सदृश दीप्त सौंदर्य की ओर स्कन्दगुप्त का आकर्षण इस कथन का एक सशक्त उदाहरण है। अनंत देवी अपने सौंदर्य और यौवन के बल पर ही कुमारगुप्त को विलासी बना देती हैं और राज्य में विप्लव को आमंत्रित करती है। ध्रुवस्वामिनी का सौंदर्य ध्रुवस्वामिनी नाटक की आधारभूमि ही है। उसी के सौंदर्य से आकर्षित और उसकी प्राप्ति की इच्छा से शकराज रामगुप्त के शिविर के चारों ओर घेरा डालता है। उसी के सौंदर्य का अंकुर चन्द्रगुप्त के हृदय में भी विकसित है, जो उसकी मर्यादा रक्षा के लिए शक शिविर में जाने के लिए प्रस्तुत होता है। छलना

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(अजातशत्रु नाटक) अपने सौंदर्य के बल पर बिम्बसार को सत्ता त्याग तक के लिए विवश करती है।

पर सौन्दर्य और प्रेम का सर्वाधिक समुज्ज्वल रूप प्रसाद ने सत् पक्ष में प्रस्तुत किया है जहाँ नारी अपने सौन्दर्य के प्रति आकर्षित पुरुष चरित्र को अपने कर्त्तव्य में लगे रहने की प्रेरणा देती है। देवसेना (स्कंदगुप्त नाटक) ऐसा ही चरित्र है। वह स्कंद को कर्मक्षेत्र से विरत नहीं होने देती। स्कंद के प्रणय आमंत्रण को सिर्फ वह इसलिए अस्वीकार कर देती है कि कहीं स्कंद अकर्मण्य न बन जाय। वह दूर खड़ी रहकर स्कंद को कर्मक्षेत्र में डटे रहने की प्रेरणा देती है और अपने सौंदर्य एवं प्रेम को कभी विलास का उपादान नहीं बनने देती। ठीक यही स्थिति मालविका की है। वह चन्द्रगुप्त को कर्त्तव्य पथ से विरत नहीं होने देती और उसी की स्मृति में अपना बलिदान कर देती है।

यौवन और प्रेम की आकस्मिक अनुभूति को लेखक ने इसी नाटक में अत्यन्त नाटकीयता से उपस्थित किया है—

"अकस्मात जीवन कानन में, एक राका रजनी की छाया में छिपकर मधुर वसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल 'कौन?' कहकर सबको रोकने-टोकने लगता है, पुकारने लगता है। . . .फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू, भरी स्मृतियाँ मकरन्द सी उसमें छिपी रहती हैं।"[1]

और प्रेम के करुण पक्ष की अनुभूति का चित्रण कोमा के निम्न कथन में देखा जा सकता है :

"तोड़ डालूं पिता जी! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलार भरी वल्लरी, मेरे आँख बन्द कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गयी है। दे दूँ एक झटका उसकी हरी-भरी पत्तियाँ कुचल जायें और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे? ना ऐसी कठोर आज्ञा न दो।"[2]

सौन्दर्य और प्रेम का यह स्वरूप प्रसाद के उपन्यासों में भी उपस्थित है। 'कंकाल' में घंटी उन्मुक्त सौंदर्य और स्वच्छन्द प्रेम की प्रतीक है। उसमें यौवन का उद्दाम आवेग है। यमुना का सौंदर्य और प्रेम सत् पक्ष की ओर उन्मुख है। वस्तुतः यमुना का सौन्दर्य और प्रेम-पक्ष ही इस उपन्यास की आधार भूमि है।

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १९२।
२. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ४५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'तितली' में तितली जहाँ सौन्दर्य और प्रेम की आदर्श मूर्ति है, वहीं शैला उन्मुक्त सौन्दर्य एवं स्वच्छन्द प्रेम की प्रतिमूर्ति है।

सौन्दर्य का सूक्ष्म रेखांकन प्रसाद की कला की परिपूर्णता हैं। भावों की सुघरता, अंगों की कमनीयता और स्थिति परिवेश की चारुता से सम्मिश्रित ये स्थल अत्यन्त भव्य बन गए हैं। तितली प्रसाद की तन्मयता की चरम परिणति है—उसका रूपांकन कितना कमनीय हैं— "उसकी काली रजनी-सी उनींदी आँखें जैसे सदैव कोई गम्भीर स्वप्न देखती रहती हैं। लम्वा छरहरा अंग, गोरी-पतली उंगलियाँ, सहज उन्नत ललाट, कुछ खिंची हुई भौंहें और छोटा-सा पतले-पतले अधरों वाला मुख—साधारण कृषक बालिका से कुछ अलग अपनी सत्ता बता रहे थे।"[1]

प्रसाद की कहानियों में सौन्दर्य और प्रेम का समुज्ज्वल स्वरूप अधिक प्रकाशवान है। 'समुद्र संतरण' कहानी में यौवन में प्रिय से पहली वार मिलने, सौन्दर्य के संयोग से अंकुरित प्रणय की अनुभूति और उसमें आकुलता का चित्रण वड़े ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत हैं—

"सुदर्शन ने देखा सब सुन्दर हैं। आज तक जो प्रकृति उदास बनकर सामने आती थी, वह उसे हँसती हुई मोहिनी और मधुर सौन्दर्य से ओत-प्रोत दिखायी देने लगी। अपने में, और सब में फैली हुई उस सौन्दर्य की विभूति को देखकर सुदर्शन की तन्मयता उत्कंठा में वदल गयी। उसे उन्माद हो चला। इच्छा होती थी वह समुद्र बन जाय। उसकी उद्वेलित लहरों से चन्द्रमा की किरणें खेले और वह हँसा करे।"[2]

वस्तुतः सुदूर अतीत ('चित्र मंदिर') से लेकर अंग्रेजी काल ('गुंडा') तक तथा विभिन्न समस्याओं से आक्रांत जटिल वर्तमान ('घीसू', 'मधुआ', 'वेड़ी', 'नीरा,' 'विराम चिह्न') तक प्रसाद की रचना का क्षेत्र फैला है और इन सभी का नियामक तत्व है सौन्दर्य और प्रेम। प्रसाद ने परिस्थिति, वातावरण और देशकाल के अनुरूप इन्हें भिन्न-भिन्न स्वरूप प्रदान किया है, कहीं भी पुनरावृत्ति का आभास नहीं मिल पाता।

प्रसाद की प्रेम-भावना का अत्यधिक आकर्षक और समुज्ज्वल रूप हमें उनके साहित्य में वहाँ मिलता है जहाँ राष्ट्र-प्रेम और कर्त्तव्य-भावना के साथ-साथ वैयक्तिक प्रेम का भाव अंतर्द्वन्द्वात्मक स्थिति में प्रस्तुत किया गया है। 'स्कंदगुप्त',

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० ८५।
२. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह की समुद्र संतरण कहानी से, पृ० १०९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'चन्द्रगुप्त' आदि नाटकों में तथा 'मदन मृणालिनी', 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' 'सालवती,' 'आँधी', 'गुण्डा' आदि कहानियों में प्रसाद का यह स्वरूप प्रकाशित है। 'तितली' उपन्यास की प्रेम-भावना भी कर्त्तव्य की ओर प्रेरित है, इसीलिए यह उपन्यास अधिक आकर्षक बन पड़ा है।

(घ) कल्पनातत्व की प्रधानता

प्रसाद का संपूर्ण काव्य यथार्थ के साथ-साथ कल्पना के आवरण में लिपटा हुआ है। प्रसाद मूलतः कवि थे और कवि की सफलता का प्रमुख आधार उसकी कल्पनाशील भाव-प्रवणता होती है। प्रसाद के काव्य में कल्पना का चरम उत्कर्ष उपस्थित है। उनकी कल्पना-प्रवणता ने उनके काव्य को अविस्मरणीय बना दिया है, वह पाठक पर एक अमिट प्रभाव की सृष्टि करती है। कल्पना का यह चरम उत्कर्ष काव्येतर साहित्य में भी दिखायी देता है। नाटक, उपन्यास, कहानी सभी में कल्पना का समुज्ज्वल रूप उपस्थित हैं। पात्रों के निर्माण से लेकर घटनाओं के संयोजन तक में कल्पना का विलास देखा जा सकता हैं। प्रसाद की कल्पना का उत्कर्ष उनके ऐतिहासिक नाटकों में द्रष्टव्य है जहाँ उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं को साहित्यिक रूप प्रदान करने के लिए तत्कालीन परिस्थिति और वातावरण के चित्रण में कल्पना का सहारा लेकर उस काल का एक विश्वसनीय चित्र उपस्थित किया हैं। उन्होंने अपनी कल्पना-प्रवणता के सहारे रूढ़ चरित्रों को जीवँत चरित्रों के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया हैं। प्रसाद ने केवल उनका बाह्य रेखांकन ही नहीं किया है अपितु गहरे पैठ कर उनके अंतस् में चल रहे आन्दोलनों को प्रकाशित कर लोक-जीवन के समीप ला खड़ा कर दिया हैं। उन्होंने एक तरफ कल्पना के सहारे स्थूल चित्रण किया है, दूसरी तरफ उनका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया हैं। 'स्कंदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि नाटकों के रूपांकन में कल्पना का उत्कर्ष देखा जा सकता है। जहाँ एक तरफ लेखक अपनी कल्पना के सहारे उस युग का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सफल है, वहीं वह इस चित्र को प्रभावशाली बनाने के लिए अपनी कल्पना के सहारे तदनुकूल वातावरण की सृष्टि करता हैं। इसके साथ ही वह तदनुरूप पात्रों की सृष्टि में कल्पना का सहारा लेता है। 'स्कंदगुप्त', देवसेना', 'चन्द्रगुप्त', 'मालविका', 'अलका', 'सिंहरण,' 'चक्रपालित' आदि पात्र ऐतिहासिक अवश्य हैं पर प्रसाद के नाटकों में उपस्थित उनका स्वरूप पूर्ण कल्पनामय है। और कल्पना का यह योग उन्हें ऐतिहासिक वृत्त से दूर नहीं हटने देता।

कल्पना का चरम उत्कर्ष प्रसाद के उपन्यासों और कहानियों में द्रष्टव्य है जहाँ सब कुछ कल्पनामय ही है। पर कहीं भी पाठक को उसकी काल्पनिकता

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

का आभास नहीं होने पाता। वह इन्हें जगत में घटी यथार्थ घटना मानता है और उनसे अपनी अन्विति स्थापित करता है। वस्तुतः इन दोनों साहित्य रूपों में कल्पना के लिए अवकाश भी अधिक रहता है। 'कंकाल' में अपनी कल्पना प्रवणता के सहारे प्रसाद ने जिस यथार्थ संसार को हमारे सम्मुख रखा है, वह अविस्मरणीय वस्तु है। विजय, यमुना, मंगल, किशोरी आदि सभी कल्पना-जगत के चित्र है। वस्तुतः यहीं प्रसाद की कल्पना-शक्ति की परीक्षा होती है और एक सफल कल्पनाशील कलाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। कथ्य से लेकर, वातावरण, चरित्र, आदि सभी तो काल्पनिक है। पर सफलता वहाँ है जहाँ वह काल्पनिक होते हुए भी यथार्थ जगत से अलग नहीं होने पाता। 'तितली' में तितली का स्वरूप प्रसाद की सशक्त कल्पना-शक्ति का परिणाम है। उन्होंने अपनी कल्पना के सहारे ग्राम्य वातावरण का सजीव चित्र उपस्थित किया है। साथ ही वे विदेशी सभ्यता और जमींदारी प्रथा के चित्र प्रस्तुत कर उस परिप्रेक्ष्य में इन्द्रदेव जैसे परिस्थिति सापेक्ष चरित्र की सृष्टि करते हैं।

अपनी सशक्त कल्पना के सहारे प्रसाद 'गुण्डा' के संबंध में जन-सामान्य में फैली मान्यता को बदल देते हैं। वे यह सिद्ध कर देते हैं कि 'गुण्डा' एक घृणित चरित्र ही नहीं होता अपितु वह अपनी शान-और-आन पर मर मिटने वाला व्यक्तित्व होता है। उसके हृदय के भीतर भी कोमल भावनाओं का आगार होता है; प्रेम का बीज होता हे। आकाशदीप की चम्पा और पुरस्कार की मधूलिका के अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण में प्रसाद ने कल्पना का ही सहारा लिया है। प्रसाद की श्रेष्ठ कल्पना का ही प्रतिफल है कि ये चरित्र अविस्मरणीय बन गए हैं और हिन्दी जगत में इनका अपना शानी नहीं है। 'आँधी' कहानी की 'लैला' का मनो-अवैज्ञानिक चित्रण प्रसाद की कल्पना प्रवणता का सुन्दर उदाहरण है।

वस्तुतः प्रसाद ने अपनी कल्पना शक्ति का दो रूपों में प्रयोग किया है (१) एक तो विषयवस्तु की संरचना, तदनुकूल वातावरण और चरित्र सृष्टि में (२) उनकी कल्पना का दूसरा स्वरूप पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में दृष्टिगत होता है। प्रसाद की कल्पना-शक्ति का चरमोत्कर्ष इसी रूप में दिखायी देता है। स्कन्दगुप्त, देवसेना, चन्द्रगुप्त, मालविका, बिम्बसार, तितली, यमुना, चम्पा, मधूलिका और गुण्डा के अन्तस्-उद्घाटन में प्रसाद की कल्पना शक्ति का दर्शन मिल जाता है। सिकंदर, सिल्यूकस को परास्त करने वाला भारत का सम्राट चन्द्रगुप्त जैसा कर्मठ, वीर, साहसी योद्धा भी साधारण मानव की कमजोरियों से किस तरह त्रस्त है, इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"संघर्ष ! युद्ध देखना चाहो तो मेरा हृदय फाड़कर देखो, मालविका ! आशा और निराशा का युद्ध भावों और अभावों का द्वन्द्व। कोई कमी नहीं फिर भी न जाने कौन मेरी सम्पूर्ण सूची में रिक्त चिह्न लगा देता है। . . . मेरे हृदय में कुछ है कि नहीं, टटोलने से भी नहीं जान पड़ता।"[१]

बड़ी-से-बड़ी विपत्तियों में अडिग रहने वाली, अनेक अवरोधों को हँसते हुए पार करने वाली तितली अपने पुत्र के एक प्रश्न से अधीर हो उठती है और इस युद्ध में अपने को पराजित अनुभव करती है—

"नहीं ! अब मेरे लिए यह असम्भव है। इसे मैं कैसे अपनी बात समझा सकूँगी ! हे नाथ ! . . .ओह सम्भव है, यह मेरे जीवन का पुण्य मुझे ही पापिनी और कलंकिनी समझता हो तो क्या आश्चर्य। मैंने इतने धैर्य से इसीलिए संसार का सब अत्याचार सहा कि एक दिन वह आवेंगे, और मैं उनकी थाती उन्हें सौंपकर अपने दुःखपूर्ण जीवन से विश्राम लूँगी। किंतु अब नहीं। किंतु अब नहीं। छाती में झंझरियाँ बन गयी हैं। इस पीड़ा को कोई समझने वाला नहीं। किंतु अब मैं इसको नहीं संभाल सकती।"[२]

'गुण्डा' का निम्न चित्र प्रसाद की सशक्त कल्पना शक्ति का प्रतिफल है—

"नन्हकू सिंह ने ललकार कर चेतसिंह से कहा—आप क्या देखते हैं ? उतरिये डोंगी पर ?"—"उसके घावों से रक्त के फुहारे छूट रहे थे। उधर फाटक से तिलगें भीतर आने लगे थे। चेतसिंह ने खिड़की से उतरते हुए देखा, कि बीसों तिलंगों की संगीनों में वह अविचल खड़ा होकर तलवार चला रहा है। नन्हकू के चट्टान सदृश शरीर से गैरिक की तरह रक्त की धार बह रही है। गुंडे का एक-एक अंग कटकर वहीं गिरने लगा। वह काशी का गुंडा था।"[३]

(ङ) नवीन साँस्कृतिक चेतना

१९वीं शताब्दी के मध्य तक पश्चिम में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन अपने प्रबल रूप में जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित कर रहा था। भारत का जन-मानस भी इस प्रभाव से अछूता नहीं रह सका। भारतीयों के समक्ष प्रधान-समस्या थी अंग्रेजी दासता से मुक्ति की। इस काल के लेखक अपने साहित्य के माध्यम से जनता में नव-जागरण की चेतना का संचार कर रहे थे। एक ओर वे विदेशी सत्ता

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १६७।
२. प्रसाद : तितली, पृ० २६९।
३. प्रसाद : इन्द्रजाल संग्रह, पृ० ९७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

से जूझने का संदेश देते थे और दूसरी तरफ अपने स्वयं के रूढ़ संस्कारों, मान्यताओं परंपराओं आदि को तोड़ने की प्रेरणा। भारतेंदु से लेकर प्रसाद तक का साहित्य इस बात का साक्षी है। भारतेन्दु के समक्ष प्रधान समस्या थी भाषा माध्यम की। भारतेन्दु ने खड़ी बोली को अपने संदेश का माध्यम बनाया। और अनेक लेखकों को इस भाषा को ग्रहण करने की प्रेरणा दी। धीरे-धीरे खड़ी बोली ने अपना स्वरूप पा लिया। इसका श्रेय तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं को है जिनमें अनेक निबंध, कहानियाँ और धारावाहिक उपन्यास प्रकाशित हो रहे थे। इन लेखकों ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा, अनेक लेखों द्वारा उन्होंने सत्ता का ध्यान जनता की वास्तविक समस्या की ओर आर्कषित किया। प्राचीन परंपरा और रूढ़ियों का इस युग के लेखकों ने खुलकर विरोध किया। भारतेंदु और प्रताप नारायण मिश्र ने पारिवारिक और सामाजिक विरोध के बावजूद भी नाटक के अभिनय में भाग लिया। जनता को पारसी रंगमंच के आकर्षण से बचाया, हिन्दी भाषा का प्रचार किया और नवीन चेतना का संचार किया। भारतीयों को अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए प्रेरित किया, उनका ध्यान अपने गौरवमय अतीत की ओर आर्काषित किया और उन्हें अपमान का विरोध करने की शक्ति प्रदान की। नव-चेतना के इस युग में कर्म को महत्व दिया गया। भाग्य भरोसे बैंठे रहने की पद्धति की निंदा की गयी। कर्म के अनुसार साधारण असाधारण के निर्णय की घोषणा की गयी। यही कारण हैं कि अनेक लेखकों ने अपनी रचनाओं का नायक साधारण वर्ग के व्यक्ति को बनाया और कर्म की महत्ता द्वारा उसमें असाधारणता सिद्ध की। परलोक सुधारने की अपेक्षा इहलोक सुधारने की ओर ध्यान दिलाया गया। ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज आदि का भी साहित्यकारों के मन पर प्रभाव पड़ा और जाति-समस्या, विधवा-समस्या आदि युगीन ज्वलन्त समस्याओं का हल प्रस्तुत किया गया।

नवीन चेतना का यह प्रभाव भारतेंदु और द्विवेदी युगीन साहित्यकारों की रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता हैं। प्रसाद भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। उनका संपूर्ण साहित्य इस नवीन चेतना से अनुप्राणित हैं, चाहे वह नाटक हो या कहानी अथवा उपन्यास। परंपराओं, रूढ़ियों का विरोध, मान्यताओं का खण्डन और नवीन मान्यताओं के स्थापन से प्रसाद का संपूर्ण साहित्य आप्लावित है। 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' और 'अजातशत्रु' आदि नाटकों की कथावस्तु के संयोजन में नव जागरण की स्पष्ट छाप हैं। स्कन्दगुप्त में राष्ट्रप्रेम, व्यक्तिप्रेम से अधिक महत्वपूर्ण दर्शाया गया है। व्यक्तिगत स्वार्थ को पूर्ण तिलांजलि दी गयी है और राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य भाव को सर्वोपरि सिद्ध किया गया हैं।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

देवसेना सेना की सहायता के लिए गीत गा-गाकर धन-एकत्र करती है और व्यक्तिगत अपमान को तुच्छ समझती हैं। वंधुवर्मा और जयमाला द्वारा मालव त्याग की प्रेरक नवीन चेतना ही है, राज्य-सत्ता के प्रति उदासीन रहते हुए भी स्कन्दगुप्त राष्ट्रोद्धार के लिए एक सेनानी के रूप में अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर देता है। चन्द्रगुप्त का संपूर्ण रचनातंत्र ही भारतीय आदर्श से आपूर्ण है। संस्कृत नाट्य-शैली तथा अंग्रेजी नाट्य-परंपरा के विरुद्ध प्रसाद ने अजातशत्रु को इस नाटक का नायक बनाकर नवीन चेतना का प्रमाण प्रस्तुत किया है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की आधारभूमि ही वर्तमान युग की ज्वलंत समस्या—विधवा-विवाह—है। विधवा समस्या तत्कालीन युग में भारतीय हिन्दू समाज के माथे का कलंक थी। प्रसाद ने इसका हल प्रस्तुत कर अप्रतिभ साहस का परिचय दिया। उन्होंने परंपरा और रूढ़ियों को तोड़ा और धर्माधिकारी पुरोहित के ही मुख से विधवा विवाह के औचित्य को सिद्ध ही नहीं किया है अपितु विवाह परंपरा पर कठोर आघात किया तथा पति के जीवित रहते हुए भी नारी को उसके आधिपत्य से मुक्ति दिलायी हैं।

स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त (ध्रुवस्वामिनी नाटक) आदि सभी पात्र उच्च कुल से अवश्य सम्बद्ध है, पर प्रसाद ने उन्हें साधारण चरित्रों की श्रेणी में रखकर देखा है। उनमें मानवीय गुण-दोषों की अवतारणा की है, वे साधारण-वर्ग के चरित्र जैसे प्रतीत होते हैं, उनका कर्म उन्हें अवश्य अविस्मरणीय और असाधारण बना देता है। नारी चरित्रों के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। देवसेना, ध्रुवस्वामिनी, विजया, मालविका, अलका, मल्लिका छलना अनंतदेवी, आदि सभी नारी पात्र जहाँ जातीय स्तर पर अभिजात्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं, वहीं कर्मक्षेत्र में वे साधारण मानव-वर्ग में सम्मिलित हो जाते हैं। उनके कार्य ही उनके स्तर को निर्धारित करते हैं। चरित्र निर्माण में स्वच्छन्दता का सर्वाधिक प्रखर रूप प्रसाद के उपन्यासों और कहानियों में द्रष्टव्य है। एक साधारण कृषक बालिका तितली का जो आकर्षक स्वरूप प्रसाद ने अंकित किया है वह एक आभिजात्य कुल की नायिका में मिलना कठिन है। वह साहस, त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति हैं। वह साहस, प्रेम के क्षेत्र में वह अपना शानी नहीं रखती। वस्तुतः वह भारतीय आदर्श नारी की प्रतिकृति है, बड़ी-से-बड़ी आपदायें उसे अपने लक्ष्य से नहीं डिगा पातीं। एक तरफ वह कर्मक्षेत्र में एक वीर सेनानी के रूप में उपस्थित है, दूसरी तरफ आदर्श पतिपरायण गृहिणी का रूप भी उसमें वर्तमान है। उच्चकुल में उत्पन्न मधुवन पक्का श्रमिक बन जाता है। इसमें उसे अपमान की अनुभूति नहीं होती, अपितु वह उसे

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपना गौरव समझता है। युग की माँग से परिचित वह अपनी बहन से कहता है—

"बहन! वह सब रामकहानी के दिन बीत गए। काम करके खाने में लाज कैसी। किसी की चोरी करता हूँ या भीख माँगता हूँ?"

'कंकाल' में प्रसाद एकदम बदले रूप में दिखायी देते हैं। यहाँ आकर उन्होंने खुलकर परंपराओं का विरोध किया है और रूढ़ियों पर गहरा आघात किया। प्रसाद का यह उपन्यास निश्चय ही तत्कालीन धर्म के ठेकेदारों की आँख खोलने वाला सिद्ध हुआ है। उन्होंने उनके अत्याचारों, अनाचारों, पाखण्डों आदि का खुलकर भण्डाफोड़ किया। विजय के रूप में प्रसाद की स्वयं आत्मा मुखरित है। जो धर्म, के उन ठेकेदारों को खरी-खोटी सुनाता है जो धर्म का अधिकार कुछ खास वर्ग के लिए निश्चित कर रखते हैं। किशोरी के भण्डारे के दृश्य द्वारा प्रसाद ने धनी समाज पर तीखा व्यंग्य किया है—

"दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी जाती थीं। नीचे कुछ अछूत डोम और डोमनियाँ खड़ी थीं, जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डंडे थे जिससे वे कुत्तों को भगाते थे और आपस में मारपीट गाली-गलौज करते हुए उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे—पुश्त-दर-पुश्त के भूखे।

मालकिन झरोखे से अपने पुण्य का यह उत्सव देख रही थीं। और देख रही थी—एक राह की थकी हुई भूखी दुर्बल युवती भी। उसी भूख की, जिससे वह स्वयं अशक्त हो रही थी, यह बीभत्स लीला था। वह सोच रही थी—क्या संसार भर में पेट की ज्वाला, मनुष्य और पशुओं को एक ही समान सताती है? ये भी मनुष्य हैं और इसी धार्मिक भारत के मनुष्य हैं—जो कुत्तों के मुँह के टुकड़े भी छीनकर खाना चाहते हैं। भीतर जो पुण्य के नाम पर—धर्म के नाम पर गुलछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान! तुम अन्तर्यामी हो।"[१]

इस दृश्य से प्रभावित विजय का विद्रोही स्वर देखिए—"विजय ने मंगल से कहा—यही तो इस पुण्य धर्म का दृश्य है! क्यों मंगल! क्या और भी किसी देश में इसी प्रकार का धर्म संचय होता है? जिन्हें आवश्यकता नहीं, उनको बिठाकर आदर से भोजन कराया जाय, केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य-संचय का प्रमाण-पत्र देंगे, साक्षी देंगे और इन्हें, जिन्हें पेट ने सता रक्खा

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० ६२-६३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

है, जिनको भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर बीभत्स नृत्य कर रही है,—वे मनुष्य, कुत्तों के साथ जूठी पत्तलों के लिए लड़ें, यही तो तुम्हारे धर्म का उदाहरण है।"

इससे अधिक परम्परा का विरोध, पाखण्ड का भण्डाफोड़ कहाँ मिल सकता है। यही नहीं विजय का स्वर नव चेतना का स्वर है, नव युग की प्रेरणा ही उसके स्वर में मुखर है।

प्रसाद के इस उपन्यास का नायक विजय और नायिका यमुना दोनों ही जारज संतान हैं। इस प्रकार उपन्यास के नायक-नायिका संबंधी रूढ़ि को भी प्रसाद ने तोड़ा है।

युगीन चेतना का प्रभाव प्रसाद की कहानियों में भी अपने चरमोत्कर्ष रूप में उपस्थित है। एक तरफ घीसू, वेड़ी, मधुवा जैसी यथार्थ परक रचनाएँ हैं जिनमें समाज की असमान अर्थ व्यवस्था का माखौल उड़ाया गया है, उसका नग्न पर विश्वसनीय चित्र उपस्थित किया गया है। इन कहानियों में वस्तु विधान से लेकर पात्रचयन तक सर्वत्र नव जागरण का प्रभाव परिलक्षित होता है। अतीत के कल्पना जगत में विचरने वाला लेखक यहाँ यथार्थ भूमि पर खड़ा दिखायी देता है। पेट की भूख बेटे के पैरों में वेड़ी डालने के लिए किस तरह मनुष्य को विवश कर देती है, इसका चित्र प्रसाद की 'बेड़ी' कहानी में देखा जा सकता है। 'मधुआ' एक ऐसे शरावी की कहानी है जो सबसे अलग सब कुछ खोकर केवल शराब पीने के लिए इधर-उधर हाथ पैर मार लेता है, उसे किसी की चिंता नहीं है। पर बालक मधुआ के कष्ट को वह नहीं सह पाता, उसकी भूख को वह नहीं देख पाता और शराब के लिए पाए एक रूपए का उपयोग वह बालक मधुआ की तृप्ति के लिए करता है, और इससे उसे असीम आत्म संतोष की अनुभूति होती है। दूसरी तरफ इसी कहानी का एक पक्ष और है। जहाँ भोजन की कमी नहीं, पर वे अपने सिवा दूसरों को मनुष्य ही नहीं समझते। 'पुरस्कार' कहानी के माध्यम से प्रसाद ने एक बार पुनः व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा राष्ट्र हित को सर्वोपरि सिद्ध किया है। सर्वस्व छिन जाने पर भी वह राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य को विस्मृत नहीं कर पाती। व्यक्तिगत प्रेम और राष्ट्रप्रेम का द्वन्द उसके अंतस् को आन्दोलित कर देता है। कुछ क्षण वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती है पर राष्ट्र-प्रेम की विजय होती है। फिर भी वह व्यक्तिगत प्रेम को तिलाँजलि नहीं दे पाती। अपना कर्त्तव्य पूरा हो जाने पर वह भी प्रेमी जैसी स्थिति का पुरस्कार प्राप्त करना चाहती है। यही स्थिति 'आकाशदीप' के चंपा की है।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(च) अतीत का अनुराग

अतीत के प्रति विशेष अनुराग का भाव स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख विशेषता है। वर्तमान से विमुख होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कलाकार पुरातन की ओर आकर्षित होगा ही। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य की आधार-भूमि ही अतीत है। उन्होंने अंधकाराच्छन्न स्वर्णिम अतीत के पृष्ठों को प्रकाशित कर भारतीय गौरव और मान-मर्यादा को बढ़ाया है। वस्तुतः 'प्रसाद भारतीय संस्कृति के सौन्दर्य पर मुग्ध थे। स्वभाव से चिन्ताशील और कल्पनाप्रिय होने के कारण वे उसी युग में रहते थे। उन्होंने अतीत को अपनी कर्मभूमि बनाया और उसका विश्वसनीय चित्र उपस्थित किया। उन्होंने पुराणों, वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों तथा इतिहास का अध्ययन कर अपनी रचना को ठोस आधार भूमि प्रदान की। उन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों के प्राक्कथन में अपनी खोज का पूर्ण विवरण दिया, जिससे अतीत के प्रति इनके अनुराग तथा उसके प्रति इनके अंतस् का मानवीय भाव ही व्यक्त होता है। अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, राज्यश्री, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, स्कंदगुप्त आदि नाटकों में उनका अतीत प्रेम द्रष्टव्य है। यहाँ उन्होंने उस काल से मात्र वस्तु ही ग्रहण नहीं की अपितु उसी के अनुरूप चरित्रों की सृष्टि की और उन्हें विश्वसनीय आधार भूमि पर खड़ा करने के लिए तदनुरूप वातावरण की सृष्टि भी की। स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, हर्षवर्द्धन, चन्द्रगुप्त (द्वितीय) आदि ऐतिहासिक पात्र हैं, उनके गौरव से कौन परिचित न होगा। प्रसाद ने उन्हें वर्तमान सन्दर्भों में प्रस्तुत कर युगीन आन्दोलन को एक सही दिशा देने का प्रयत्न किया। उसे एक नया संदर्भ दिया। वस्तुतः उन्होंने अतीत के धरातल पर वर्त्तमान का हल प्रस्तुत किया।

प्रसाद की कहानियाँ भी उनके अतीत प्रेम की उदाहरण हैं। आकाशदीप, दासी, पुरस्कार, तानसेन, सिकन्दर की शपथ, चित्तौर उद्धार, अशोक, गुलाम आदि कहानियाँ अतीत की आधारभूमि पर ही निर्मित हैं। इनमें प्रथम तीन हिन्दी कहानी संसार की सर्वोत्कृष्ट रचना हैं। अतीत की धरती पर उन्होंने अत्यन्त मानवीय, यथार्थ और वर्तमान को चित्रित किया है।

प्रसाद के अधूरे उपन्यास 'इरावती' की आधार भूमि भी स्वर्णिम अतीत ही है।

(छ) राष्ट्रीयता

साहित्य के माध्यम से जन-साधारण में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना जागरित करना साहित्यकार का प्रथम पुनीत दायित्व होता है। प्रसाद ने इस दायित्व

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

को बखूबी निभाया है। उनकी हर रचनाओं में राष्ट्र-प्रेम की नवीन भावना की झलक मिल जाती है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में उन्होंने अपने काल की ज्वलंत समस्या—हिन्दू-मुस्लिम द्वेष-का, जातीय संघर्ष का हल अतीत काल के पटल पर प्रस्तुत किया है। नाग और आर्य जातियाँ एक दूसरे के खून की प्यासी हैं। प्रसाद ने इन दोनों जातियों के बीच प्रणय संबंध स्थापित करके प्रतीकात्मक पद्धति से आधुनिक भारत की जाति समस्या का समाधान प्रस्तुत किया। ऋषिपुत्र आस्तीक का चरित्र और संदेश महात्मा गांधी के चरित्र और संदेश की स्मृति जागरित करता हैं। उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम और दया का भाव उत्पन्न करता है, संगठित होकर उन्हें राष्ट्रहित के लिए प्रणत होने का संदेश देता हैं। अजातशत्रु की मल्लिका बुद्ध की प्रतिमूर्ति हैं। वह पतिहंता प्रसेनजित की सेवा करके यह सिद्ध कर देती है कि व्यक्तिगत स्वार्थ की अपेक्षा राष्ट्रहित सर्वोपरि है। विद्रोह की भावना से दग्ध भाई कारायण को वह राष्ट्र कर्त्तव्य के प्रति सचेत करती है—"ठहरो, मैं तुमसे एक वात पूछना चाहती हूँ। क्या तुम इस युद्ध में नहीं गए थे? क्या तुमने अपने हाथों से जान बूझकर कोशल को पराजित होने नहीं दिया? क्या सच्चे सैनिक के समान ही तुम इस रण-क्षेत्र में खड़े थे, और तव भी कोशल-नरेश की यह दुर्दशा हुई।" चन्द्रगुप्त में यह राष्ट्रप्रेम और अधिक समुज्ज्वल रूप में उपस्थित है। मालव के समर्पण में राष्ट्रप्रेम का ही भाव है। उन्हें मालूम है कि यदि विदेशी शक्ति का सामना करना है तो हमें एक होना होगा।

अलका राष्ट्रप्रेम की अग्नि स्फुलिंग है, वह सिकंदर को अपने राज्य में से पथ प्रदान करने का विरोध करती है और विरोध भी उसे अपने पिता और भाई का करना होता है। वह वीरता, साहस और धैर्य की मूर्ति है जो राष्ट्रप्रेम में आपूर्ण निमग्न है। राष्ट्र रक्षा के लिए वह अपना सर्वस्व त्याग कर दर-दर की ठोंकरें खाती है, अकेले यवनों के प्रत्यावर्तन के लिए कृत-संकल्प होती है। वह अपने पिता और भाई को राष्ट्र विरोधी कृत्य से विरत करना चाहती है पर सफल नहीं हो पाती।

चन्द्रगुप्त और चाणक्य को सिल्यूकस के प्रति आभार व्यक्त करते हुए देख कर उसके मन में आशंका के बीज अंकुरित होते हैं। मालविका राष्ट्र-सेवा में ही अपना सर्वस्व बलिदान कर देती है। सिंहरण राष्ट्र का एक वीर, साहसी योद्धा है जो आजीवन रण-संग्राम को अपनी विश्राम स्थली बनाता है। चन्द्रगुप्त एक कर्मठ, कर्त्तव्यनिष्ठ सेनानी की भाँति राष्ट्र रक्षा के लिए सन्नद्ध है। गुरु चाणक्य और साथी सिंहरण के उससे असंतुष्ट होकर चले जाने

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

और सिल्यूकस के आक्रमण की सूचना मिलने पर उसका कथन[1] उसके हृदय में उपस्थित राष्ट्र के प्रति असीम प्रेम का प्रमाण है।

चाणक्य तो गाँधी की प्रतिमूर्ति ही हैं जो सब कुछ त्याग कर राष्ट्र रक्षा में आजीवन लगे रहते हैं। राष्ट्र के प्रति प्रेम भाव जगाकर उसके गौरव की स्मृति कराकर वे मालव को चंद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार करवाते हैं। पर्वतेश्वर को वे चन्द्रगुप्त का साथ देने के लिए प्रतिश्रुत करते हैं। राक्षस से उनका निम्न कथन उनके राष्ट्र प्रेम का प्रतीक है—"सच है बौद्ध आमात्य! परन्तु यवन आक्रमणकारी बौद्ध और ब्राह्मण का भेद न रक्खेंगे।"

स्कन्दगुप्त में भी राष्ट्रप्रेम की भावना अपने चरमोत्कर्ष रूप में उपस्थित है। देवसेना राष्ट्र की रक्षा हेतु सेना तैयार करने के लिए गाने गा-गाकर धन एकत्रित करती है। वह राष्ट्र रक्षा में ही अपने प्रेम का बलिदान कर देती है। स्कंद से विवाह कर वह उसे अकर्मण्य नहीं बनाना चाहती। वह सदा उसमें राष्ट्र प्रेम के अंकुर को हरा-भरा रखती है, राष्ट्र प्रेम की सुषुप्त भावनाओं को जागरित करती है। स्कंद कर्मठ, वीर, धैर्यवान और साहसी युवक है जो राष्ट्रोद्धार में अपने संपूर्ण जीवन की आहुति कर देता है। संपूर्ण राष्ट्र निष्कंटक बनाकर अपने विरोधी भाई पुरगुप्त के लिए छोड़ देता है। वस्तुतः स्कंद की संपूर्ण राष्ट्र-सेवा स्वार्थ विहीन कार्य है, उसके मन में राज्य-सत्ता के प्रति कोई आकर्षण नहीं है, फिर भी वह अपनी धरती को पदाक्रांत नहीं देखना चाहता और उसे निष्कंटक बनाने के लिए पूरे जीवन एक साधारण सैनिक की भाँति युद्ध में लगा रहता है, उसे अनेक विफलताएँ भी मिलती हैं, किंतु उसे इनकी चिंता नहीं, अंततः सफलता उसका वरण करती है। पृथ्वीसेन और महाप्रतिहार राष्ट्र-शक्ति को विघटित होने से बचाने के लिए अपना बलिदान कर देते हैं।

प्रसाद का यह राष्ट्र-प्रेम उनके उपन्यास, कहानियों और निबंधों में भी प्रत्यक्ष है। 'तितली' में वे इंगलैण्ड की अपेक्षा भारत की महनीयता प्रतिपादित करते हैं। 'दासी', 'आकाशदीप', 'पुरस्कार' आदि कहानियाँ राष्ट्र-प्रेम की प्रतीक हैं। 'पुरस्कार' की मधूलिका राष्ट्रप्रेम के समक्ष अपने व्यक्तिगत प्रेम को तिलाँजलि दे देती है और अपने प्रेमी अरुण को बन्दी बनवा देती है। निबंधों में प्रसाद का यह प्रेम संस्कृति-प्रेम के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। भारतीय साहित्य पर अनेक पाश्चात्य आरोपों का निराकरण कर वे रहस्यवाद, यथार्थवाद, छायावाद आदि विभिन्न वादों की आधारभूमि संस्कृत साहित्य में खोज निकालते हैं।

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० ३८५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

वस्तुतः प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। प्रसाद के समक्ष देशोद्धार की समस्या थी। अंग्रेजों के विरोध में भारतीय जनता को खड़ा करने का दायित्व था जिसे प्रसाद ने अपने साहित्य के माध्यम से अच्छी तरह निभाया। भारतीयों में अपने अतीत गौरव का भाव जागरित कर उन्हें भी गौरवान्वित किया, उन्हें अपनी महिमा, वीरता, साहस और क्षमा भावना का परिचय कराकर उनका नवीन संस्कार किया। इसलिए राष्ट्रप्रेम के संदर्भ में प्रसाद का प्रदेय अविस्मरणीय है।

(ज) प्रकृति प्रेम

प्रसाद का संपूर्ण साहित्य उनके प्रकृति प्रेम का उदाहरण है। प्रसाद ने आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में प्रकृति का प्रयोग किया है। नाटक, कहानी उपन्यास आदि सभी रचनाओं में प्रकृति का विविध चित्र देखा जा सकता है। 'आकाशदीप' का एक चित्र द्रष्टव्य है—"तारक खचित नील अम्बर और समुद्र के अवकाश में पवन उधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था।" इन पंक्तियों में प्रसाद ने वातावरण की भयानकता चित्रित की है।

वस्तुतः प्रसाद ने कहानियों में प्रकृति का उपयोग वातावरण का विश्वसनीय चित्र प्रस्तुत करने के लिए किया है। "रजनी के बालों से बिखरे हुए मोती बटोरने के लिए प्राची के प्रांगण में उषा आई और इधर यमुना उपवन में फूल चुनने के लिए पहुँची। प्रभात की फीकी चाँदनी में बचे हुए एक-दो नक्षत्र अपने को दक्षिण पवन के झोंको में विलीन कर देना चाहते हैं। कुन्द के फूल, थाले के श्यामल अंचल पर कसीदा बनाने लगे थे। गंगा के मुक्त वक्षस्थल पर से घूमती हुई, मन्दिरों के खुलने की, घण्टों की प्रतिध्वनि, प्रभात की शान्त निस्तब्धता में एक संगीत की झनकार उत्पन्न कर रही थी। अन्धकार और आलोक की सीमा बनी हुई युवती के रूप को अस्त होनेवाला पीला चन्द्रमा और लाली फेंकनेवाली उषा, अभी स्पष्ट न दिखला सकी थी कि वह अपनी डाली, फूलों से भर चुकी और उस कड़ी सरदी में भी यमुना मालती-कुंज की पत्थर की चौकी पर बैठी हुई, दूर से आते हुए शहनाई के मधुर स्वर में अपनी हृदयतंत्री मिला रही थी।"[1]

दासी कहानी के निम्न अंश में प्रकृति अवलंबन से, उसी के साम्य द्वारा प्रतीक रूप में प्रसाद ने इरावती के अन्तस् का चित्र खींचा है—"बसन्त की

---

१. प्रसाद : कंकाल, पृ० ७७।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

चाँदनी रात अपनी मतवाली उज्ज्वलता में महल के मीनारों और गुम्बदों तथा वृक्षों में धीरे-धीरे झुक रहा था। रावी की ओर एक संगमर्रमर की दालान में खाली से बिछी थी। जरी के परदे ऊपर की ओर दंधे थे। दालान की सीढ़ी पर बैठी हुई इरावती रावी का प्रवाह देखते-देखते सोने लगी थी।"[१]

'आकाशदीप', 'समुद्र संतरण', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'बनजारा' और 'बिसाती' आदि कहानियों में प्रकृति के चित्रण में प्रसाद की तन्मयता के उदाहरण मिल जाते हैं। प्रसाद ने मुख्यतः दो स्वरूपों में प्रकृति को ग्रहण किया हैं। एक तो घटनानुरूप वातावरण की सृष्टि के लिए जिससे पाठक के मन में रचना की यथार्थता के प्रति विश्वास का भाव जागे, उसे कहीं भी संदेह न रह जाय। इस रूप में कहीं प्रकृति की कोमलता प्रेरणा-शक्ति, और उसके उद्दीपन स्वरूप का चित्र प्रस्तुत हैं तो कहीं उसकी भयानकता चित्रित हैं। प्रकृति चित्रण का दूसरा उपयोग हैं पात्रों के चरित्र-चित्रण में। प्रसाद ने प्रायः प्रकृति रूप से अपने मानवीय पात्रों की स्थिति का साम्य स्थापित किया हैं। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों का प्रकाशित रूप उन्होंने प्रकृति में देखा है। प्रसाद के प्रकृति चित्रण का यह स्वरूप उनकी रचनाओं का सर्वोत्तम आकर्षक अंश है।

यथार्थ बोध

प्रसाद स्वच्छन्दतावादी कलाकार हैं। स्वच्छन्दतावादी कलाकार की दृष्टि कल्पना जगत में अधिक भ्रमण करती हैं, पर प्रसाद कल्पनालोक में विचरण करने पर भी यथार्थ लोक से बहुत दूर नहीं जा सके हैं। उनके साहित्य में यथार्थ अनुभूति का अभाव नहीं है। नाटक, उपन्यास, कहानी सभी जगह उनकी इस अनुभूति का परिचय मिल जाता है। प्रसाद यथार्थवाद की सीमा से परिचित थे उसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विचार करते हुए उन्होंने कहा है—"उसमें स्वभावतः दुःख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति आवश्यक है। . . . वेदना से प्रेरित होकर जन साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।"[२] प्रसाद ने अपनी इस परिभाषा को अपने साहित्य में चरितार्थ किया हैं। नाटकों में उन्होंने वेदना पूरित चित्र अवश्य प्रस्तुत किए हैं पर वे व्यक्ति परक हैं उनमें जन-सामान्य का प्रतिनिधित्व नहीं है। देवसेना की करुणार्द्र मूर्ति का चित्र यथार्थवादी चित्रण नहीं माना जा

१. प्रसाद : आंधी संग्रह, पृ० ७०।
२. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० ११९-२०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सकता। उसे जीवन में कोई अभाव नहीं है पर प्रेम-जगत का अभाव उसे करुणा विगलित कर देता है। ठीक यही स्थिति मालविका की है।

यथार्थ परक रचना-सामर्थ्य का प्रथम परिचय हमें उनके 'कंकाल' उपन्यास में मिलता है। हिन्दी उपन्यास जगत में प्रसाद की यह प्रथम यथार्थवादी कृति है। अपने इस उपन्यास के माध्यम से प्रसाद ने उपन्यास लेखकों के समक्ष एक अनु-करणीय आदर्श प्रस्तुत किया। मध्यवर्गी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचारों, दुराचारों तथा उनकी कमजोरियों को ठीक उसी रूप में रेखांकित करना 'कंकाल' में प्रसाद का लक्ष्य है। उच्चवर्गीय समाज पर 'कंकाल' एक करारा व्यंग्य है जो उसकी आवृत्त विकृतियों, कमजोरियों को उघाड़-उघाड़ कर उन पर अट्टहास करता है। आदर्श च्युत, सदाचार की आड़ लेकर शोषण को प्रश्रय देने वाले धार्मिक-ठेकेदारों के प्रति इसमें सशक्त विद्रोह का स्वर मुखर है। प्रयाग, काशी, अयोध्या, वृन्दावन, मथुरा और गंगासागर जैसे तीर्थ स्थानों में होने वाले पापाचारों की कलई खोल कर रख दी गयी हैं। तारा का गुलेनार के रूप में व्यतीत जीवन, बाल विधवा घंटी, विजय और यमुना के जन्म की कथा आदि सभी इसके प्रमाण हैं। देव सदृश्य पूज्य, महात्मा देवनिरंजन स्वयं पापाचार में लिप्त हैं और विजय तथा यमुना किशोरी और विधवा रामा से उत्पन्न उसकी जारज सतानें हैं।

मंगल और तारा की कथा तथा निरंजन और किशोरी एवं निरंजन और रामा की कथा के माध्यम से प्रसाद मानव को यथार्थ जगत पर रखकर परखने की पद्धति में पूर्ण सफल दिखायी देते हैं। प्रसाद ने अपने 'यथार्थवाद' निबंध में यथार्थवाद की अन्य विशेषताओं के साथ असाधारण चरित्र से साधारण चरित्र के चुनाव के प्रति झुकाव को भी एक विशेषता माना है।[1] विजय, मंगल, माला, यमुना, घंटी आदि इस उपन्यास के अनेक चरित्र इस बात के साक्षी हैं। इन चरित्रों के माँ-बाप का प्रारंभ में पता नहीं लगता। वे या तो जारज संतानें हैं या निम्न-वर्गीय चरित्र। इस तरह से प्रसाद ने यथार्थवाद की इस शर्त का भी पालन अपने इस उपन्यास में किया है और इन चरित्रों के माध्यम से उन्होंने यथार्थ जगत से पाठक का सत्कार कराया है।

सामाजिक विरूपताओं और आर्थिक असमानता का भी प्रसाद ने बड़ा यथार्थपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है। एक तरफ मंगल एक गरीब युवक है, न उसे रहने का ठिकाना है, न खाने का और दूसरी तरफ विजय, एक अमीर की संतान है, जिसे किसी प्रकार का अभाव नहीं है और दर-दर की ठोकरें खानेवाली यमुना

---

१. प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १२०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अत्यन्त निरीह प्राणी है जो अपनी क्षुधा-पूर्ति के लिए हर-तरह के श्रम के लिए प्रस्तुत है। धर्म के ठेकेदारों द्वारा दिए जाने वाले भण्डारे का भी अत्यन्त यथार्थ चित्रण है, जिसके माध्यम से पाप-पल रहे हैं। यश और धर्म अर्जन के लिए किशोरी द्वारा दिए गए भण्डारे का एक दृश्य द्रष्टव्य है—

"दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकड़ों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी जाती थी। नीचे कुछ अछूत डोम डोमनियाँ खड़ी थीं, जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डंडे थे—जिनसे वे कुत्तों को हटाते थे और आपस में गाली गलौज, मारपीट करते हुए उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे—वे पुश्त-दर पुश्त के भूखे।"[१]

इससे अधिक सामाजिक आर्थिक विषमता का चित्र कौन प्रस्तुत कर सकता है। भूख से व्याकुल मानव की प्रतिद्वन्द्विता कुत्तों से। और इस पर विजय का व्यंग्य और तीव्र बना देता है।

तितली में यथार्थवाद की झलक है पर यह आदर्श की ओर उन्मुख है। तितली का कर्म संग्राम में धैर्य के साथ अडिग खड़ा रहना, मधुवन का पलायन, चौबे तहसीलदार और महन्त के कृत्य आदि सभी चित्र यथार्थ की भूमि पर उकेरे गए हैं। ग्रामीण चित्र भी अत्यन्त यथार्थपरक हैं। रामदीन, रामजस आदि के कार्यों द्वारा उन्होंने ग्रामीण परिवेश रूपायित किया है। राजकुमारी और चौबे के प्रसग द्वारा यौवन के उद्वेलन का चित्र प्रस्तुत है जो पूर्ण विश्वसनीय प्रतीत होता है।

प्रसाद की कहानियों में उनका यथार्थ रूप अत्यन्त समुज्ज्वल रूप में उपस्थित है। उनकी कहानियों के अधिकांश पात्र साधारण-जगत से चुने गए हैं। छोटा जादूगर, नूरी, गुंडा, भिखारिन, बनजारा, चूड़ीवाली, बिसाती, गूदड़ साईं, दुखिया, छैला, घीसू, मधुआ, आदि सभी इसी प्रकार के पात्र हैं। मधुवा, घीसू, बेड़ी, छोटा जादूगर, गुंडा, भिखारिन, बनजारा, नूरी, बिसाती, गूदड़ साईं, आँधी आदि श्रेष्ठ यथार्थपरक रचनाएँ हैं। इन कहानियों की विषयवस्तु से लेकर चरित्र, संवाद आदि सभी में यथार्थ का चरमोत्कर्ष द्रष्टव्य है। मधुवा उस शराबी की गाथा है, जो एक बालक की करुण स्थिति से प्रभावित होकर पुनः कर्मक्षेत्र की ओर उन्मुक्त होता है। वस्तुतः प्रसाद ने इस कहानी के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि भूख से बिलबिलाते बालक की स्थिति से एक शराबी में परिवर्त्तन हो सकता है किन्तु उच्चवर्गीय समाज के लिए भूख का कोई महत्व नहीं है। घीसू, विधवा के प्रति होने वाली अमानवीय अत्याचार से अपने को अलग नहीं रख पाता और अंततः

---

१. प्रसाद: कंकाल, पृ० ६२।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

अपना सब कुछ खो देता है। वेड़ी उस वर्ग की करुण कहानी है जहाँ मानव अपनी विवशताओं के कारण मानवता खो बैठता है पिता अपने पुत्र के संग पुत्रवत व्यवहार भी नहीं कर पाता। भिखमंगे सूरदास ने अपने पुत्र को इसलिए बेड़ी पहना रखी है कि वह पुनः भाग न सके और उसके व्यवसाय में कोई बाधा न आए।

मधुआ, घीसू, बेड़ी, नीरा आदि कहानियों में समाज की अर्थ-व्यवस्था की असमानता से पीड़ित वर्ग की समस्याओं का चित्रण और उनके प्रति सहानुभूति जागृत करने का प्रयत्न है।

शिल्पगत वैशिष्ट्य

प्रसाद के गद्य का समग्र आकलन तब तक पूरा नहीं होगा जब तक उनके गद्य-शिल्प के प्रमुख वैशिष्ट्यों पर विचार न कर लिया जाय। वैसे तो रचना की हर प्रमुख विशेषताओं का विवेचन यथावसर प्रस्तुत है, किंतु कुछ प्रमुख और उनके शिल्प की नियामक विशेषताओं पर पुनः विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा। इस संदर्भ में निम्न विशेषताओं को लिया जा सकता है—

(१) सूक्ष्म एवं जटिल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति
(२) चित्रात्मकता
(३) व्यंजकता
(४) लयात्मकता

(१) सूक्ष्म एवं जटिल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति

प्रसाद पाश्चात्य शैली से प्रभावित कलाकार थे। पाश्चात्य पद्धति पर इन्होंने अपने चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। प्रसाद की इस क्रिया ने उनके पात्रों के अंतस् में चल रहे आन्दोलन को रूपायित कर उन्हें जन-साधारण की भूमि प्रदान की है। उच्चकुलोत्पन्न होकर भी ये पात्र सामान्य जन सदृश्य दिखायी देते हैं जिनमें मानवीय गुण और दोष दोनों का समावेश है। वस्तुतः मानव मन की सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति साधारण कलाकार के बूते की बात नहीं रहती, प्रसाद जैसा रचनाकार ही इस दिशा में सफलता प्राप्त कर सकता है। प्रसाद की इस सामर्थ्य ने प्रसाद-साहित्य को हिन्दी साहित्य के शीर्ष पर खड़ा कर दिया। नाटक, उपन्यास, कहानी आदि सभी विधाओं में उनकी इन विशेषताओं को देखा जा सकता है।

नाटकों में यह स्वगत कथन के रूप में प्रस्तुत है। बाहर से स्कंदगुप्त दुर्धर्ष योद्धा वीर युवक है पर भीतर से वह कितना टूट रहा है, इसका परिचय इन पंक्तियों से मिल जाता है—

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"बौद्धों का निर्वाण, योगियों की समाधि और पागलों की सी संपूर्ण विस्मृति मुझे एक साथ चाहिए। चेतना कहती है कि तू राजा है और उत्तर में जैसे कोई कहता है कि तू खिलौना है—उसी खिलवाड़ी बटपत्रशायी बालक के हाथों का खिलौना है। तेरा मुकुट-श्रमजीवी की टोकरी से भी तुच्छ है।"[1]

और भी देखें—"हमने अंतर की प्रेरणा से शस्त्र द्वारा जो निष्ठुरता की थी, वह इसी पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए। परंतु इस नंदन की वसन्त श्री, इस अमरावती की शची, स्वर्ग की लक्ष्मी तुम चली जाओ—ऐसा मैं किस मुँह से कहूँ (कुछ ठहरकर सोचते हुए) और किस वज्र कठोर हृदय से तुम्हें रोकूं ? देवसेना ! देवसेना ! ! तुम जाओ ! हतभाग्य स्कंदगुप्त अकेला स्कंद, ओह ! !"[2]

देवसेना स्कंदगुप्त के प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है, पर उसका अंतस् उसे कितना कोसता है—"हृदय की कोमल कल्पना ! सो जा ! जीवन में जिसकी संभावना नहीं, जिसे द्वार पर आए हुए लौटा दिया था, उसके लिए पुकार मचाना क्या तेरे लिए कोई अच्छी बात है ?"[3]

उपर्युक्त उद्धरणों में एक तरफ अनेक समरों का विजेता, हार कर भी पराजय न स्वीकार करने वाला दुर्धर्ष योद्धा अपने पराजित हृदय के साथ उपस्थित है। और दूसरी तरफ त्याग को ही अपना धर्म मानने वाली देवसेना भी अपने अंतस् की पुकार को अस्वीकार नहीं कर पाती।

ठीक यही स्थिति चंद्रगुप्त की भी है। वह मालविका से कहता है कि युद्ध और संघर्ष देखना हो तो मेरे हृदय में देखो।[4] निष्ठुर चाणक्य के मन में कोमल भाव हो सकता है, वह भी साधारण मानव की दुर्बलताओं से पीड़ित हो सकता है, इसका परिचय कल्याणी से व्यक्त किए गए उसके भावों से मिलता है—"क्यों करे, सुवासिनी, तुम राक्षस के साथ सुखी जीवन बिताओगी, यदि इतनी भी मुझे आशा होती . . .सुवासिनी ! वह स्वप्न टूट गया—इस विजन बालुका सिंध में एक सुधा की लहर दौड़-पड़ी थी, किंतु तुम्हारे एक भ्रू भंग ने उसे लौटा लिया। मैं कंगाल हूँ।"[5]

जटिल एवं सूक्ष्म संवेदनाओं के चित्रण का यह कौशल ध्रुवस्वामिनी नाटक

---

१. प्रसाद : स्कन्दगुप्त, पृ० १२३।
२. वही, पृ० १४८।
३. वही, पृ० १४७।
४. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १६७।
५. वही, पृ० १८०।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में भी देखा जा सकता है। चन्द्रगुप्त के उद्‌गार उसके अंतस् में चल रहे आन्दोलन को खोल कर रख देते हैं।[1]

प्रसाद की इस विशेषता का दर्शन उनके उपन्यासों में भी मिलता है। 'कंकाल' के मंगल, विजय, यमुना और निरंजन के आत्मपरीक्षण में यह कला अपने चरमोत्कर्ष पर है। 'तितली' की तितली कर्मक्षेत्र में पराजय नहीं स्वीकार करती और एक कर्मठ सेनानी की भाँति धैर्य और साहस से कर्म पथ पर अग्रसर होती रहती है। पर दिनोंदिन वह भी भीतर से टूट रही है, उसके भीतर एक आन्दोलन अंकुरित हो रहा है[2], ठीक यही स्थिति मधुवन की भी है।[3]

प्रसाद की कहानियों में भी उनके इस कौशल को देखा जा सकता है। 'पुरस्कार' और 'आकाशदीप' कहानी अपने इसी वैशिष्ट्य के कारण आज हिन्दी जगत की सर्वोत्कृष्ट कहानी मानी जाती है। 'पुरस्कार' की मधूलिका का अन्तर्द्वन्द्व प्रसाद ने बड़े कौशल से मुखरित किया है। व्यक्तिगत प्रेम उसे अरुण का साथ देने की प्रेरणा देता है और राष्ट्रप्रेम उसे राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व निर्वाह के लिए प्रेरित करती है। इस अन्तर्द्वन्द्व में पड़ी वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाती है।

आकाशदीप की चंपा बुद्धगुप्त से प्यार भी करती है और घृणा भी। उसे यह विश्वास है कि उसके पिता की हत्या बुद्धगुप्त ने की इसलिए वह उसे प्यार कर कभी आत्म समर्पण नहीं कर पाती। प्रेमी और पितृहंता में किसे चुने, किसे छोड़ें इस अन्तर्द्वन्द्व में उसका चरित्र महनीय बन गया है।

अन्तर्द्वन्द्व के उद्‌घाटन की यह कला प्रसाद की अन्य कहानियों में भी देखी जा सकती है। उनका यह कौशल उनकी कहानियों की अमिट स्मृति पाठक के मन पर छोड़ता है।

(२) चित्रात्मकता

चित्रात्मकता भाषा शैली की एक प्रमुख विशेषता होती है। प्रसाद के संपूर्ण गद्य में अनेक अविस्मरणीय चित्र देखे जा सकते हैं। पात्रों के चित्र निर्माण से लेकर वातावरण के यथार्थ अंकन में इनकी यह कुशलता देखी जा सकती है। बन्धु वर्मा के शब्दों में स्कंद का निम्न चित्र देखा जा सकता है।

"उदार वीर हृदय, देवोपम सौन्दर्य, इस आर्यावर्त्त का एकमात्र आशा स्थल इस युवराज का विशाल मस्तक कैसी वक्र लिपियों से अंकित है। अन्तःकरण

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० ५७।
२. प्रसाद : तितली, पृ० २६६, ६९।
३. वही : पृ० २५६।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

में तीव्र अभिमान के साथ विराग है। आँखों में एक जीवन पूर्ण ज्योति है। भविष्य के साथ इसका युद्ध होगा, देखूं कौन विजयी होता है।"[1]

प्रसाद के चित्र निर्माण का कौशल अपने चरमोत्कर्ष रूप में उनके उपन्यासों और कहानियों में प्रस्तुत है। 'कंकाल' का निम्न उदाहरण इसका साक्षी है—

'साधुओं का भजन-कोलाहल शान्त हो गया था। निरतव्वता रजनी के मधुर क्रोड़ में जाग रही थी। निशीथ के नक्षत्र, गंगा के मुकुर में अपना प्रतिविंव देख रहे थे। शीत पवन का झोंका सवको आलिंगन करता हुआ विरक्त के समान भाग रहा था। महात्मा के हृदय में हलचल थी। वह निष्पाप हृदय ब्रह्मचारी दुश्चिंता से मलिन, शिविर छोड़कर कम्वल डाले, वहुत दूर गंगा की जलधारा के समीप खड़ा होकर अपने चिर संचित पुण्यों को पुकारने लगा।"[2]

इन पंक्तियों में ब्रह्मचारी निरंजन का अन्तर्द्वन्द्वात्मक रूप चित्र प्रस्तुत है। उसके समक्ष एक तरफ कर्त्तव्य है और दूसरी तरफ उसका स्वयं का व्यक्तित्व पथ।

इसी उपन्यास में आयी 'चाची' का एक रूप चित्र द्रष्टव्य है—"चाची के मुंह पर उस समय वड़ा विचित्र भाव था। विलास भरी आँखें, मचलती हुई हँसी देखकर स्वयं मंगल को संकोच होने लगा।"[3]

प्रसाद ने इन पंक्तियों द्वारा कुटनी स्त्रियों जैसा चाची का अत्यन्त यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

तितली की तितली प्रसाद की तन्मयता की चरम परिणति है। उसका रूपांकन कितना कमनीय है : "उसकी काली रजनी-सी उनींदी आँखें जैसे सदैव कोई गम्भीर स्वप्न देखती रहती हैं। लम्वा छरहरा-अंग, गोरी-पतली उंगलियाँ, सहज उन्नत ललाट, कुछ खिंची हुई भौंहें और छोटा-सा पतले-पतले अधरों वाला मुख—साधारण कृषक-बालिका से कुछ अलग अपनी सत्ता बता रहे थे। कानों के ऊपर से ही घूँघट था, जिससे लटें निकल पड़ती थी। उसकी चौड़ी किनारे की धोती का चम्पई रंग उसके शरीर में घुला जा रहा था। वह संध्या के निरभ्र गगन में विकसित होने वाली—अपने ही मधुर आलोक से तुष्ट—एक छोटी-सी तारिका थी।"[4]

---

१. प्रसाद : स्कंदगुप्त, पृ० ५१।
२. प्रसाद : कंकाल, पृ० १०।
३. वही, पृ० ४६।
४. प्रसाद : तितली, पृ० ८५।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

प्रसाद ने अनेक आशंकाओं से आवृत्त मन के साथ विवाह-वेदी पर बैठी तितली का एक और मनोहारी रूप प्रस्तुत किया है--"और तितली की दशा, ठीक गांव के समीप रेलवे-लाइन के तार को पकड़े हुए उस बालक-सी थी, जिसके सामने से डाक गाड़ी भक-भक करती हुई निकल जाती है। सैकड़ों सिर खिड़कियों से निकले रहते हैं पर पहचान में एक भी नहीं आते, न तो उनकी आकृति या वर्ण रेखाओं का ही पता चलता है। वह अपनी सारी विडम्बना को हटाकर अपनी दृढ़ता में खड़ा रहने का प्रयत्न करने लगी थी।"[1]

चित्रात्मकता का कौशल प्रसाद की कहानियों में भी अपने चरमोत्कर्ष पर उपस्थित है।

एक शराबी का रूपांकन प्रसाद की लेखनी पाकर कितना यथार्थ हो गया है--"सात दिन से एक बूंद भी गले न उतरी थी। भला मैं कैसे मुंह दिखा सकता था। और जब बारह बजे धूप निकली, तो फिर लाचारी थी। उठा, हाथ-मुंह धोने में जो दुःख हुआ, सरकार वह क्या कहने की बात है! पास में पैसे बचे थे। चना चबाने से दाँत भाग रहे थे। कट-कटी लग रही थी। पराठेवाले के यहाँ पहुंचा, धीरे-धीरे खाता रहा और अपने को सेंकता भी रहा। फिर गोमती किनारे चला गया। घूमते-घूमते अंधेरा हो गया, बूंदें पड़ने लगीं तब कहीं भाग के आपके पास आ गया।"[2]

वेड़ी के वेड़ी में जकड़े वालक का एक चित्र द्रष्टव्य है :

"उसने ठनकते हुए कहा--नहीं, आज मुझे पैसा दो, मैं कचालू खाऊँगा, वह देखो उस पटरी पर बिक रहा है। वालक के मुंह और आँख में पानी भरा था। दुर्भाग्य से वुड्ढा उसे पैसा नहीं दे सकता था। वह न देने के लिए हठ करता ही रहा, परन्तु वालक की ही विजय हुई। वह पैसा लेकर सड़क की उस पटरी पर चला। उसके वेड़ी से जकड़े हुए पैर पैंतरा काट कर चल रहे थे। जैसे युद्ध-विजय के लिए।"[3]

उपर्युक्त पंक्तियों में वालक की तीव्र इच्छा शक्ति, उसके मचलने, रूठने और उसकी स्थिति का अत्यन्त हृदयस्पर्शी अंकन है।

'पुरस्कार' की मधूलिका के कौमार्य-सौंदर्य अंकन में प्रसाद की लेखनी का चमत्कार देखिए--"वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेय-वसन उसके शरीर

---

१. प्रसाद : तितली, पृ० ११८।

२. प्रसाद : आंधी संग्रह, पृ० ४६।

३. वही, पृ० ९१।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने सूखे अलकों को। कृषक वालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणों की कमी न थी, वे सब बरौनियों में गुंथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कुराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता नहीं की। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे— विस्मय से, कुतूहल से। और अरुण देख रहा था कृषक कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य। कितनी सरल चितवन।"[1]

इन पंक्तियों में एक तरफ उसके मनोहारी सौन्दर्य का अंकन है और दूसरी ओर उस पर सम्मान और लज्जा का आवरण।

'स्वर्ग के खण्डहर में' मीना का गान उसका जो स्वरूप उपस्थित करता है वह अत्यन्त आकर्षक और मनोहारी बन पड़ा है। प्रेम क्षेत्र में थकी हारी बुलबुल सदृश्य वह कुछ क्षणों के लिए किसी डाली का सहारा चाहती हैं जिस पर वैठकर क्षण भर विश्राम कर सके।[2]

'हिमालय का पथिक' में किन्नरी का रूपांकन अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है।[3] 'वैरागी' में गोधूलि का एक रूप चित्र द्रष्टव्य है—

"वैरागी का ध्यान टूटा। उसने देखा, सचमुच मलिन-वसना गोधूलि उसके आश्रम में आश्रय माँग रही हैं। अंचल छिन्न बालों की लटें फटे हुए कम्वल के समान मांसल वक्ष और स्कंध को ढंकना चाहती थीं। गैरिक वसन जीर्ण और मलिन। सौन्दर्य-विकृत आँखें कह रही थीं कि, उन्होंने उमंग की रातें जगते हुए विताई हैं। वैरागी अकस्मात् आँधी के झोंके में पड़े हुए वृक्ष के समान तिलमिला गया।"[4]

प्रकृति का सहारा लेकर एक नारी का जो रूप प्रस्तुत किया गया है, वह अविस्मरणीय हैं। जिस प्रकार गोधूलि अपना आश्रय खोजती हुई अपने आगमन से सभी को सचेत कर देती है, उसी प्रकार नारी का यौवन उसका रूप अपनी उपस्थिति से योगी की समाधि भंग कर देती हैं।

'चूड़ीवाली' की नायिका चूड़ीवाली के रूपांकन में प्रसाद के हृदय की तन्मयता प्रमाणित है :

---

१. प्रसाद : आंधी संग्रह, पृ० ४४।
२. प्रसाद : आकाशदीप संग्रह, पृ० २६०।
३. वही, पृ० ६०।
४. वही, पृ० ११४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"वह पच्चीस वर्ष की एक गोरी छरहरी स्त्री थी। उसकी कलाई सचमुच चूड़ी पहनाने के लिए ढली थी। पान से लाल पतले-पतले ओठ, दो तीन वक्रताओं में अपना रहस्य छिपाए हुए थे। उन्हें देखने का मन करता, देखने पर उन सलोने अधरों से कुछ बोलवाने का भी जी चाहता। बोलने पर हँसाने की इच्छा होती और उस हँसी में शैशव का अल्हड़पन, यौवन की तरावट और प्रौढ़ा की सी गंभीरता, बिजली के समान लड़ जाती।"[1]

और भी देखें—"कुलवधू बनने की अभिलाषा हृदय में और दाम्पत्य सुख का स्वर्गीय स्वप्न उसकी आँखों में समाया था।"[2]

प्रसाद की रूपांकन की यह विशेषता उनकी प्रौढ़ कहानियों में अत्यन्त सशक्त रूप से उपस्थित है। प्रारंभिक कहानियों में इसका प्रारंभिक रूप ही उपलब्ध होता है, वहाँ उसका चरम उत्कर्ष नहीं मिल पाता। रूप चित्रण के माध्यम से प्रसाद ने जहाँ एक तरफ चरित्र-चित्रण में सहारा लिया है, वहीं दूसरी ओर परिस्थिति और वातावरण को भी ये चित्रण प्रकाशवान बनाते हैं।

(३) व्यंजनात्मकता

लेखक की व्यंजना शक्ति भाषा को गाम्भीर्य तथा स्थायित्व प्रदान करती है। उसका प्रभाव पाठक के मानस पटल पर अविस्मरणीय होता है। प्रसाद की भाषा में इस गुण को सर्वत्र देखा जा सकता है। अपनी व्यंजना शक्ति के सहारे ही प्रसाद ने थोड़े से शब्दों में गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति कर दी है। भाषा का यह चमत्कार, उनके नाटक, उपन्यास, कहानियों तथा निबंधों में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए स्कन्दगुप्त का निम्न अंश प्रस्तुत है—

"भटार्क : महादेवी के द्वार पर।

शर्वनाग : वहाँ मेरा क्या कर्त्तव्य होगा ?

भटार्क : कोई न तो भीतर जाने पावे और न भीतर से बाहर आने पावे।

शर्वनाग : (चौंककर) इसका तात्पर्य ?

भटार्क (गम्भीरता से) : तुमको महाबलाधिकृत की आज्ञा पालन करनी चाहिए।

शर्वनाग : तब भी क्या स्वयं महादेवी पर नियंत्रण रखना होगा ?

भटार्क : हाँ

---

१. प्रसाद : आकाशदीप कहानी संग्रह, पृ० १२७।

२. वही, पृ० १२८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

शर्वनाग : ऐसा"[१]

उपर्युक्त उद्धरण में कुछ इने-गिने शब्दों के प्रयोग द्वारा प्रसाद ने गूढ़ भावों की अभिव्यक्ति की हैं। शर्वनाग आशंकित हैं और भटार्क दृढ़। और भी देखें——

"विजया : मैं अपराधिनी हूँ।

मातृगुप्त : परन्तु तुम्हारा और भी कोई परिचय हैं ?

विजय : यही कि मैं बन्दी होने की अभिलाषिनी हूँ।

देवसेना : सम्राट ! विजया मेरी सखी हैं।

विजया : परंतु मैंने भटार्क का वरण किया हैं।

जयमाला : विजया !

विजया : कर चुकी देवी।

देवसेना : उसके लिए दूसरा उपाय न था राजाधिराज ! प्रतिहिंसा मनुष्य को इतना नीचे गिरा सकती है ! परन्तु विजया तूने शीघ्रता की।

स्कंदगुप्त : परंतु विजया, तुमने यह क्या किया ?"[२]

इन पंक्तियों में जहाँ एक तरफ विजया के कृत्य पर जयमाला आश्चर्य और क्रोध व्यक्त करती हैं, वहीं विजया अपने निर्णय में अपने को गौरवान्वित अनुभव करती है। देवसेना उसकी मनोदशा से परिचित अपनी सहानुभूति व्यक्त करती है। स्कंद द्वारा कहे गए कुछ शब्द उसके हृदय में विजया के प्रति पल रहे आकर्षण को मूर्तिमान कर देते हैं।

व्यंजना का यह कौशल 'चन्द्रगुप्त' में भी देखा जा सकता है।

"शकटार : बच्ची थी, पर न जाने कहाँ है ? एक बालिका अपनी माता की स्मृति——सुवासिनी ! पर अब कहाँ है, कौन जाने।

चाणक्य : क्या कहा ? सुवासिनी ?"[३]

चाणक्य के तीन शब्दों में ही प्रसाद ने उसके भीतर पल रहे सुवासिनी की स्मृति को प्रकाशित कर दिया है। साथ ही यह भी सिद्ध कर दिया है कि वह एक क्रूरकर्मा, कठोर-कर्मा व्यक्तित्व ही नहीं हैं अपितु उसके भीतर भी कोमल भावनाओं का आगार है।

'ध्रुवस्वामिनी' में ध्रुवस्वामिनी से प्रतिहारी द्वारा रामगुप्त के संबंध में पूछे जाने पर ध्रुवदेवी का निम्न उत्तर जहां उसकी मानसिक स्थिति का परिचायक है वहीं रामगुप्त की विलास लीला का भी संकेत मिल जाता है।

---

१. प्रसाद : स्कंदगुप्त, पृ० ३०।
२. वही, पृ० ७७।
३. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १४४।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

ध्रुवस्वामिनी : (व्यंग्य से मुस्कराती हुई) मेरे अंचल में तो छिपे नहीं हैं। देखो किसी कुंज में ढूंढ़ो।" और प्रतिहारी को रामगुप्त द्वारा दिया गया निम्न उत्तर भी रामगुप्त की वासनात्मक वृत्ति और उसकी क्लीवता के साक्षी हैं :

"रामगुप्त : दोनों ओर से घिरा रहने में शिविर और भी सुरक्षित है। मूर्ख चुप रह।

रामगुप्त : (हृदय पर हाथ रखकर) युद्ध तो यहाँ भी चल रहा है, देखता नहीं, जगत की अनुपम सुन्दरी मुझसे स्नेह नहीं करती और मैं हूँ इस देश का राजाधिराज।"[१]

प्रसाद की व्यंजना शक्ति का चमत्कार उनके उपन्यासों में भी द्रष्टव्य है। 'कंकाल' का निम्न अंश द्रष्टव्य है : "मालकिन झरोखे से अपने पुण्य का यह उत्सव देख रही थी। और देख रही थी——एक राह की थकी हुई भूखी दुर्बल युवती भी। उसी भूख की, जिससे वह स्वयं अशक्त हो रही थी, यह बीभत्स लीला थी, वह सोच रही थी——क्या संसार भर में पेट की ज्वाला, मनुष्य और पशुओं को एक ही समान सताती है? ये भी मनुष्य हैं और इसी धार्मिक भारत के मनुष्य हैं—जो कुत्तों के मुंह के टुकड़े भी छीनकर खाना चाहते हैं। भीतर जो पुण्य के नाम पर धर्म के नाम पर,——गुलछर्रे उड़ रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है, यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान्! तुम अन्तर्यामी हो।"[२]

और इसी सन्दर्भ में विजय का कथन देखिए——"क्या और भी किसी देश में इसी प्रकार का धर्म-संचय होता है? जिन्हें आवश्यकता नहीं, उनको बिठाकर आदर से भोजन कराया जाय, केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य-संचय का प्रमाण पत्र देंगे, साक्षी देंगे और इन्हें, जिन्हें पेट ने सता रक्खा है, जिनको भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर बीभत्स नृत्य कर रही है वे मनुष्य, कुत्तों के साथ जूठी पत्तलों के लिए लड़ें, यही तो तुम्हारे धर्म का उदाहरण है।"[३]

विजय अपने इस कथन द्वारा जहाँ दीन-हीन गरीबों की स्थिति का यथार्थ परक चित्र प्रस्तुत करता है वहीं वह धर्म के इस ढोंग पर, इस कृत्य द्वारा पुण्य संचय की वृत्ति पर आघात भी करता है।

---

१. प्रसाद : ध्रुवस्वामिनी, पृ० १२।
२. प्रसाद : कंकाल, पृ० ६३।
३. वही, पृ० ६३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

'गुण्डा' कहानी का एक अंश प्रसाद की प्रौढ़ व्यंजना शक्ति के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं : 'नन्हकू सिंह की बात सुनते ही मलूकी, जो अभी गाँजे की चिलम पर रखने के लिए अंगारा चूर कर रहा था, घबराकर उठ खड़ा हुआ। वह सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ चढ़ गया।. . .उसे चोट भी लगी। पर नन्हकू सिंह की भृकुटि देखने की शक्ति उसमें कहाँ।"[१]

गुण्डा के रूप में प्रसिद्ध नन्हकू सिंह के आतंक की व्यंजना इन पंक्तियों में मुखर है।

व्यंजना का यह कौशल 'आकाशदीप' कहानी में अपने चरमोत्कर्ष रूप में प्रस्तुत हैं।

"चम्पा ने पूछा क्या यह सच हैं?"

यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है। चम्पा कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाए हूँ।"

"चुप रहो महानाविक ! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चम्पा ! वह एक दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती ! बुद्धगुप्त वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय। आह ! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते।"[२]

उपर्युक्त उद्धरण से जहाँ चंपा के हृदय में चल रहे अंतर्द्वन्द्व की व्यंजना होती है वहीं उसकी करुणा-विगलित मूर्ति भी प्रतिबिम्वित होती है। दूसरी तरफ बुद्धगुप्त प्रेम में पराजित व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रसाद ने व्यंजना - कौशल का उपयोग प्रायः कथानक को आकर्षक बनाने, चरित्रों को प्रभावशाली बनाने और यथार्थ वातावरण की सृष्टि के लिए किया है। व्यंजना का चरम उत्कर्ष उनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में उपलब्ध है। प्रसाद की इसी शक्ति ने उनकी गद्य रचनाओं को हिन्दी साहित्य की अविस्मरणीय संपत्ति बना दी है।

---

१. प्रसाद : इन्द्रजाल कहानी संग्रह, पृ० ८६।
२. प्रसाद : आकाशदीप कहानी, पृ० १९।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

(४) लयात्मकता

प्रसाद मूलतः कवि हैं, इसलिए उनका संपूर्ण साहित्य उनकी कवि भावना से ओत-प्रोत है। प्रसाद की कविताओं की लयात्मकता का प्रभाव उनके गद्य साहित्य में अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अंश गद्य न होकर गीत हैं। प्रसाद ने गद्य-गीतों की भी रचना की थी, उनके इसी कौशल की छटा उनकी गद्य-शैली पर है।

'चन्द्रगुप्त' का एक अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है।

"जाओ प्रियतम ! सुखी जीवन बिताने के लिए, और मैं रहती हूँ दुखी जीवन का अन्त करने के लिए। जीवन एक प्रश्न है और मरण है उसका अटल उत्तर। ओह, आज प्राणों में कितनी मादकता है। मैं. . .कहाँ हूँ ? कहाँ ? स्मृति तू मेरी तरह सो जा ! अनुराग, तू रक्त से भी रंगीन बन जा।"[१]

चन्द्रगुप्त नाटक का ही एक और अंश इस कला के उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है—

"अकस्मात् जीवन-कानन में राका-रजनी की छाया में छिप कर मधुर बसन्त घुस आता है। शरीर की सब क्यारियाँ हरी-भरी हो जाती हैं। सौन्दर्य का कोकिल "कौन ?" कहकर सबको रोकने-टोकने लगता है, पुकारने लगता है। राजकुमारी ! फिर उसी में प्रेम का मुकुल लग जाता है, आँसू-भरी स्मृतियाँ मकरन्द-सी उसमें छिपी रहती हैं।"[२]

'स्कन्दगुप्त' के निम्न अंश में प्रसाद ने कवित्व को ही सब भावों का नियंता बनाया है :

"क्यों ? वही तो मेरे भूखे हृदय का आहार है। कवित्व-वर्णमय चित्र है, जो स्वर्गीय भावपूर्ण संगीत गाया करता है। अन्धकार का आलोक से, असत् का सत् से जड़ का चेतन से और बाह्य-जगत् का अन्तर्जगत से सम्बन्ध कौन कराती है ? कविता ही न।"

प्रसाद के इस वैशिष्ट्य का चमत्कार उनके उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। कहानियों में तो उनकी भाषा इस चमत्कार से पूर्ण रूप से आवृत्त है। 'समुद्र सन्तरण', 'आकाशदीप', 'स्वर्ग के खण्डहर में', 'बनजारा' आदि कहानियों में उनका यह वैशिष्ट्य अपने चरम उत्कर्ष पर उपस्थित है। 'आकाशदीप' का एक अंश यहाँ प्रस्तुत है :

---

१. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, पृ० १६९।
२. वही, पृ० १८८।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

"तारक खचित नील अम्बर और समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकार से मिल कर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों से विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल कर, फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुंच गई। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्ला कर कहा—'आँधी।'"[1]

'बनजारा' के एक अंश में प्रसाद की कवित्वपूर्ण भावाभिव्यक्ति देखी जा सकती है—"हाँ लौट जाओ, जब तक ओस की बूंदों से ठंडी धूल तुम्हारे पैरों में लगे उतने ही समय में अपना पथ समाप्त कर लो।"[2]

उन गद्यात्मक अंशों में प्रसाद की लयात्मकता अधिक प्रकाशवान है जहाँ उन्होंने चरित्रों के द्वन्द्वात्मक भावनामय चित्र अंकित किए हैं। वहाँ प्रसाद पूर्ण कवि के रूप में उपस्थित हैं, उनकी कल्पना की उड़ान, भावों, शैली आदि सभी में द्रष्टव्य है। प्रसाद के इस कौशल से कहीं-कहीं क्लिष्टता भी आ गई है पर परिस्थिति और वातावरण के परिप्रेक्ष्य में वे अपना भाव सुगमता-पूर्वक व्यक्त कर देते हैं। उनके ग्रहण में कोई कठिनाई नहीं अनुभूत होती है।

प्रसाद के इस कौशल का चरमोत्कर्ष प्रकृति चित्रण में देखा जा सकता है। वहाँ प्रसाद की भाव-प्रवणता, और उनके कोमल हृदय का भी हमें परिचय मिलता है। प्रसाद के इस कौशल से एक तरफ उनकी भाव-प्रवणता का हमें परिचय मिलता है और दूसरी तरफ उनकी भाषा निर्माण शक्ति का।

परवर्ती गद्य-साहित्य पर प्रसाद का प्रभाव

प्रसाद ने हिन्दी गद्य साहित्य के विविध रूपों का विकास किया जिनमें नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध विधाएं प्रमुख हैं। प्रसाद का हिन्दी नाटक साहित्य में योगदान अविस्मरणीय है। पर प्रसाद के पश्चात् उनकी शैली पर नाट्य रचना करने वाले लेखकों का अभाव-सा-ही है। प्रसाद की क्लिष्ट भाषा, उनका नितांत नवीन नाट्य कौशल और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण ही वस्तुतः इस पथ में बाधक हैं। दूसरे युग की मांग ने भी प्रसाद जैसे नाटकों के स्थान पर एकांकी नाटकों की रचना को अधिक बल प्रदान किया।

उपन्यास क्षेत्र में उन्होंने हिन्दी उपन्यास साहित्य को नया पथ प्रदान किया। यथार्थवादी उपन्यासों के प्रणेता के रूप में वे 'कंकाल' के साथ हमारे समक्ष सबसे

---

१. प्रसाद : आकाशदीप, पृ० १०।
२. प्रसाद : बनजरा, पृ० १२३।

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

पहले उपस्थित हुए। और वहीं से यथार्थपरक रचनाओं का प्रारंभ होता है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में उन्होंने 'इरावती' जैसे अधूरे उपन्यास की रचना की जो निश्चय ही भावी लेखकों के लिए पथ प्रदर्शक सिद्ध हुई है। वृन्दावनलाल वर्मा, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ऐतिहासिक उपन्यासकारों के उपन्यास इसी दिशा के प्रमाण हैं। यह सत्य हैं कि 'तितली' के रूप में प्रस्तुत उनके ग्रामीण जीवन को भावी लेखक अपनी रचना की आधार भूमि नहीं बना सके। इस दिशा में लेखकों ने प्रेमचन्द का आदर्श ग्रहण किया।

कहानियों में प्रसाद का प्रदेय अत्यधिक मूल्यवान और अविस्मरणीय है। प्रसाद की भावात्मक कहानियों को अपना आदर्श मानकर लिखने वाले लेखकों में राय कृष्णदास, विनोदशंकर, व्यास, चण्डीप्रसाद हृययेश के नाम विशेष उल्लेख्य हैं।

निबंध क्षेत्र में भी प्रसाद अकेले ही अपने प्रतिनिधि हैं। उनके जैसे शास्त्रीय, सैद्धान्तिक और गवेषणात्मक निबंधों के लेखकों का अभाव है। उन जैसी मौलिकता, और भारतीय संस्कृति का चरम उत्कर्ष तो किसी निबंधकार में नहीं दिखायी देता।

स्पष्ट है कि कतिपय विधाओं को छोड़कर परवर्ती साहित्य पर अन्यत्र प्रसाद का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। पर इस कारण हम उनके प्रदेय का अवमूल्यन नहीं कर सकते। वस्तुतः प्रसाद के रूप में आधुनिक साहित्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप उपस्थित है। पर उस पद्धति को आगे न बढ़ा पाने की अक्षमता का दोष परवर्ती साहित्यकारों की क्षमता शक्ति है न कि प्रसाद का।

भारतीय राजदूतावास ⊙ ⊙ काठमांडौ

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

सहायक ग्रंथ-सूची

प्रसाद की गद्य कृतियाँ

नाटक

१. अग्निमित्र (अपूर्ण)
२. अजातशत्रु
३. एक घूंट
४. कामना
५. चन्द्रगुप्त
६. ध्रुवस्वामिनी
७. राज्यश्री
८. जनमेजय का नागयज्ञ
९. स्कंदगुप्त
१०. विशाख
११. चित्राधार की प्रारंभिक नाट्य रचनाएं

कहानियाँ (संग्रह)

१. आकाशदीप
२. आँधी
३. इन्द्रजाल
४. छाया
५. प्रतिध्वनि

उपन्यास

१. इरावती (अपूर्ण)
२. कंकाल
३. तितली

निबंध

१. काव्य और कला तथा अन्य निबंध
२. चित्राधार
३. संपादकीय और प्राक्कथन

प्रसाद के गद्य-साहित्य पर लिखे गए आलोचनात्मक ग्रंथ

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
२. आधुनिक हिन्दी साहित्य—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
३. आधुनिक साहित्य—डॉ० रामरतन भटनागर
४. आधुनिक हिन्दी नाटक—डॉ० नगेन्द्र
५. आधुनिक हिन्दी नाटकों पर आंग्ल नाटकों का प्रभाव—डॉ० उपेन्द्रनारायण सिंह
६. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डॉ० श्रीकृष्ण लाल
७. इक्कीस कहानियाँ—श्री रायकृष्णदास

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

८. कहानी का रचना विधान—डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
९. कहानी कला का विकास—डॉ० श्रीपति शर्मा
१०. जयशंकर प्रसाद—आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
११. जयशंकर प्रसाद : वास्तु और कला—डॉ० रामेश्वर खण्डेलवाल
१२. नाट्य समीक्षा—डॉ० दशरथ ओझा
१३. नया साहित्य : नए प्रश्न—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
१४. प्रसाद जी की कला—डॉ० गुलाब राय
१५. प्रसाद का कथा साहित्य—श्री मार्कण्डेय सिंह
१६. प्रसाद का गद्य—डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित
१७. प्रसाद के उपन्यास और कहानियाँ—सुश्री सुशीला देवी, विमला देवी
१८. प्रसाद का जीवन दर्शन : कला और कृतित्व
१९. प्रसाद की नाट्य कला—प्रो० शिलीमुख
२०. प्रसाद के नाटकों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवेचन—डॉ० जगदीशचन्द्र जोशी
२१. प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
२२. प्रसाद और उनका साहित्य—श्री विनोदशंकर व्यास
२३. प्रसाद का जीवन और साहित्य—डॉ० रामरतन भटनागर
२४. भारतेंदुकालीन नाटक साहित्य—डॉ० गोपीनाथ तिवारी
२५. विचार और अनुभूति—डॉ० नगेन्द्र
२६. विचार और विश्लेषण—डॉ० नगेन्द्र
२७. विचार और विमर्श—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
२८. विचार और वितर्क—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
२९. विवेचना—श्री इलाचन्द्र जोशी
३०. हमारे साहित्य निर्माता—श्री शांतिप्रिय द्विवेदी
३१. हिन्दी आलोचना : उद्भव और विकास—डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र
३२. हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी
३३. हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन—डॉ० बुद्धदत्त शर्मा
३४. हिन्दी उपन्यास साहित्य —डॉ० ब्रजरत्नदास
३५. हिन्दी एकांकी : उद्भव और विकास—डॉ० महेन्द्र
३६. हिन्दी उपन्यास—डॉ० रामदरश मिश्र
३७. हिन्दी उपन्यास—सुश्री सुषमा धवन
३८. हिन्दी गद्य शैली का विकास—डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

३९. हिन्दी वाङमय : बीसवीं शती—सं० डॉ० नगेन्द्र
४०. हिन्दी साहित्य : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
४१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४२. हिन्दी कहानियाँ—डॉ० श्रीकृष्णलाल
४३. हिन्दी कहानी और कहानीकार—प्रो० वासुदेव
४४. हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय—श्री उपेन्द्रनाथ अश्क
४५. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास—डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल
४६. हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ—श्री कालिदास कपूर
४७. हिन्दी गद्य काव्य—डॉ० कमलेश
४८. हिन्दी के आलोचक—डॉ० नामवर सिंह
४९. हिन्दी नाटक का आलोचनात्मक अध्ययन—डॉ० वेदपाल खन्ना
५०. हिन्दी नाटककार—श्री जयनाथ नलिन
५१. हिन्दी गद्य साहित्य—डॉ० ब्रजरत्नदास
५२. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
५३. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास—सं० डॉ० विनयमोहन शर्मा
५४. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—डॉ० शिवदानसिंह चौहान
५५. हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास—डॉ० भगीरथ मिश्र
५६. हिन्दी कथा साहित्य—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय
५७. हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन—डॉ० शांतिगोपाल पुरोहित
५८. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव—श्रीपति शर्मा
५९. हिन्दी नाटक की रूपरेखा—प्रो० दशरथ ओझा
६०. हिन्दी नाट्य साहित्य का विकास—आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र
६१. हिन्दी नाटक—डॉ० बच्चन सिंह
६२. हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डॉ० दशरथ ओझा
६३. हिन्दी नाटक पर पाश्चात्य प्रभाव—डॉ० विश्वनाथ मिश्र
६४. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—श्री सोमनाथ गुप्त
६५. हिन्दी नाटक साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—श्री वेदपाल खन्ना

अन्य सहायक ग्रंथ

१. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धांत—डॉ० सुरेशचन्द्र गुप्त
२. काव्य में रहस्यवाद—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३. काव्य के रूप—डॉ० गुलाबराय

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

४. काव्यशास्त्र—डॉ० भगीरथ मिश्र
५. गद्य-काव्य : उद्भव और विकास—डॉ० अष्टभुजाप्रसाद पांडेय
६. गीतिका (निराला) की भूमिका—निराला
७. चिंतामणि—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
८. देवरानी जेठानी की कहानी
९. प्रसाद का काव्य—डॉ० प्रेमशंकर
१०. भारतेन्दु ग्रंथावली—सं० ब्रजरत्नदास
११. भाग्यवती परिचय—डॉ० विजयशंकर मल्ल
१२. प्रेमचन्द-पूर्व के कथाकार और उनका युग—डॉ० लक्ष्मणसिंह विष्ट
१३. भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य—डॉ० वीरेन्द्र कुमार शुक्ल
१४. रस मीमांसा—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
१५. साहित्य सहचर—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
१६. साहित्यालोचन—डॉ० श्यामसुन्दरदास
१७. साहित्यावलोकन—डॉ० विनयमोहन शर्मा
१८. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० भगीरथ मिश्र

डा. डिल्ली रमण रेड्डी
कल्याण रेड्डी ... पुस्तकालय

संस्कृत ग्रंथ

नाट्य शास्त्र—भरत
साहित्य दर्पण
ध्वन्यालोक
काव्य प्रकाश

पत्र-पत्रिकाएं

इंदु, जागरण, हंस, सरस्वती, सुधा, माधुरी, नागरी प्रचारिणी सभा पत्रिका, संगम, आलोचना, अनुशीलन, आलोचक, सम्मेलन-पत्रिका, मर्यादा, विशाल भारत, ज्ञानोदय, प्रसाद आदि।

अंग्रेजी के ग्रंथ

दि आर्ट एण्ड बिजनेस ऑफ स्टोरी राइटिंग—वाटर बी० पिटकिन
नोट्स ऑन राइटिंग अ नावेल—एलिजावेथ वावेन
प्रावलेम ऑफ स्टाइल—मेरी
प्रावलेम ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म—आई० ए० रिचर्ड्स
मॉडर्न इंगलिश ड्रामा—रोनाल्ड
एक्सपेरीमेंट इन ऑटोबायग्राफी—एच० जी० वेल्स
राइटर्स ऑन राइटिंग—सं० वाटर एलेन
क्रिटिसिज्म एण्ड फिक्शन—हावेल्स

⊙⊙⊙

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai

Digitization by Arya Samaj Charitable Foundation, Chennai